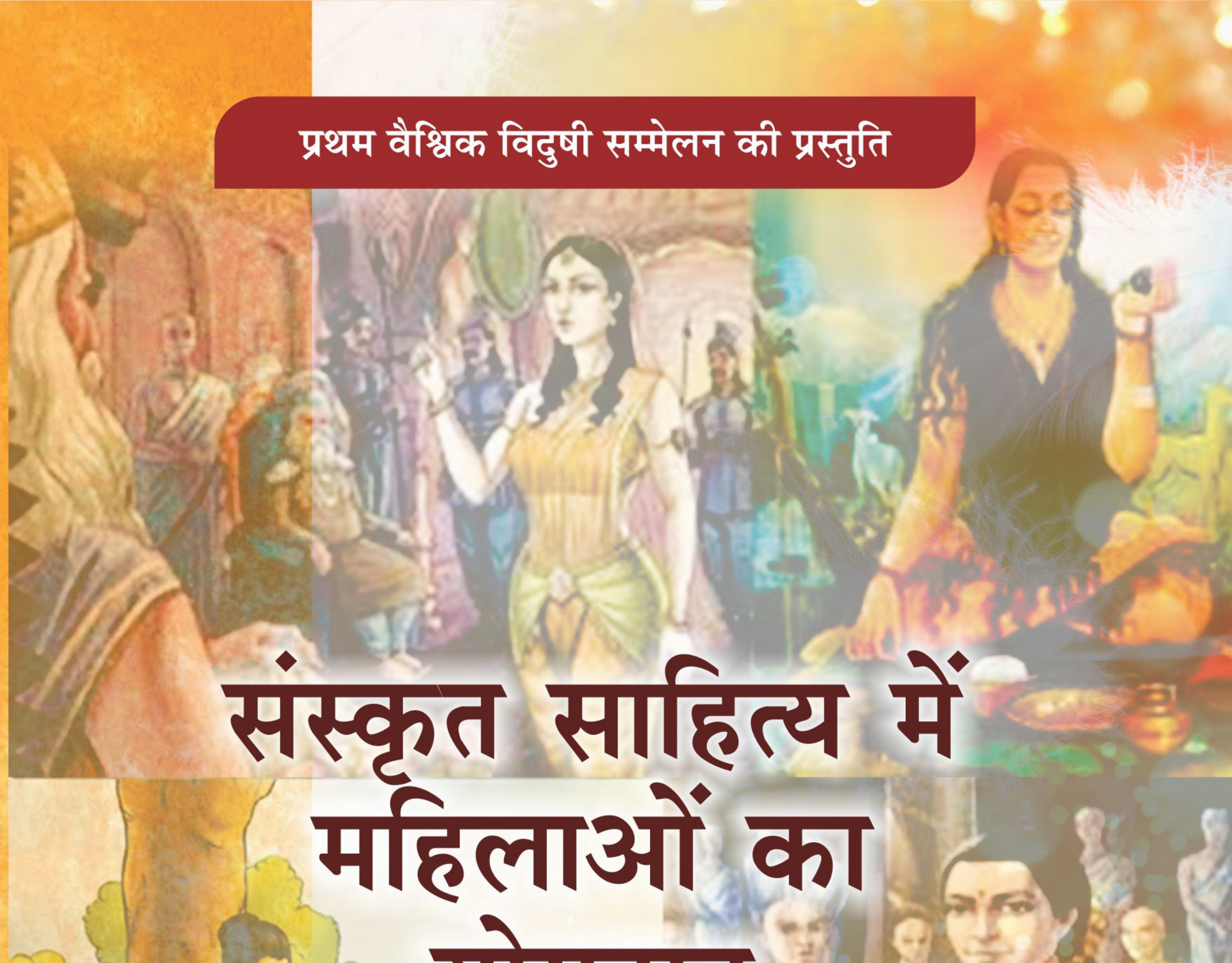

प्रथम वैश्विक विदुषी सम्मेलन की प्रस्तुति

संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान अनसुनी गाथाएँ

Voice Unveiled: Celebrating Women in Sanskrit Literature

प्रधान सम्पादक

प्रो. हरप्रीत कौर, डॉ. बिन्दिया त्रिवेदी

सम्पादक

डॉ. राजेश कुमार मिश्र, डॉ. कल्पना शर्मा

सह-सम्पादक

डॉ. सुचित्रा भारती

GLOBAL SANSKRIT FORUM

वैश्विक संस्कृत मञ्च

यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान अनसुनी गाथाएँ

अमृतब्रह्म प्रकाशन
Amritbrahma Prakashan
प्रयागराज

संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान : अनसुनी गाथाएँ

प्रधान सम्पादक

प्रो. हरप्रीत कौर

डॉ. बिन्दया त्रिवेदी

सम्पादक

डॉ. राजेश कुमार मिश्र

डॉ. कल्पना शर्मा

सह-सम्पादक

डॉ. सुचित्रा भारती

प्रकाशक

अमृतब्रह्म प्रकाशन

प्रयागराज

ISBN: 978-81-973364-0-9

प्रकाशक

अमृतब्रह्म प्रकाशन

63/59, मोरी, दारागंज, प्रयागराज – 211006

सम्पर्क +91-9450407739, 8840451764

Email: amritbrahmaprakashan@gmail.com

संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान : अनसुनी गाथाएँ

प्रधान सम्पादक

प्रो. हरप्रीत कौर

डॉ. बिन्दिया त्रिवेदी

सम्पादक

डॉ. राजेश कुमार मिश्र

डॉ. कल्पना शर्मा

सह-सम्पादक

डॉ. सुचित्रा भारती

© सर्वाधिकार सुरक्षित : ग्लोबल संस्कृत फोरम

प्रथम संस्करण : 2024

मूल्य : 899/-

The responsibility for facts stated, opinion expressed or conclusion reached and plagiarism, if any, in this book is entirely that of Author. The publisher/Editors/Editorial Board bears no responsibility for them whatsoever.

मुद्रक

Infinity Imaging Systems, नई दिल्ली

प्रो.बिष्णुपदमहापात्रः

आचार्यः, न्यायविभागः, अद्वैतवेदान्तविभागाध्यक्षश्च

श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयः

(केन्द्रीयविश्वविद्यालयः)

नवदेहली-११..१६

शुभाशंसा

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥

ऋग्वेदादिषुतावत् कन्यानां शिक्षाया व्यवस्था सम्प्राप्यते। पुत्रवत् तासामपि उपनयनादिसंस्कारा भवन्तिस्म। वेदाध्ययनेऽपि तासामधिकारोऽङ्गीक्रियते स्म। गृहस्थजीवन-संबद्धविषयेषु तासां योग्यत्वम् अभीष्टमासीत्। वैदुष्यमासाद्य ता यज्ञादिकर्मणि, विद्याविवादे, मन्त्रदर्शनकर्मण्यपि च प्रावर्तन्त। ऋग्वेदे बहव्यो मन्त्रदर्शिका ऋषिकाः स्मर्यन्ते। तत्र काश्चन ऋषिकाः सन्ति- श्रद्धा कामायनी, शची, यमी, इन्द्राणी, अदितिः, जुहूर्ब्रह्मजाया, अपाला, आत्रेयी, शश्वती, आंगिरसी, विश्ववारा, लोपामुद्रा, रोमशा ब्रह्मवादिनी, घोषा, उर्वशी, सूर्या, सावित्री, गोधा, सिकता, निवावरी-प्रभृतयः। मन्त्रदर्शनेन तासां गौरवं वैदुष्यम् आदर्शरूपत्वञ्चसम्प्रत्यपिपरिदृश्यतेपरिलक्ष्यते च।

ब्राह्मणादिषु ग्रन्थेष्वपि स्त्रीणांवैशिष्ट्यविषयिणीचर्चासमुपलभ्यते। तत्र नारीविषये काश्चन विशिष्टता निर्दिश्यन्ते। तत्र स्त्री सावित्रीरूपेण गौरवास्पदं प्रतिपाद्यते। स्त्रीणां पतिरेव गतिः। पतिवत्मानुसरणं तासां कर्तव्यम्। ताः कोमलाङ्गत्वाद् अबलाः। नच तास्ताडनीयाः। तथाहि-स्त्री सावित्री। जे. उ. ब्रा. ४-२७-१७। पतयो ह्येव स्त्रियै प्रतिष्ठा। श. ब्रा. २-६-२-१४। तस्मात् स्त्रियः पुंसोऽनुवर्मानो भावुकाः। शत. १३-२-२-४। अवीर्या वै स्त्री। शत. २-५-२-३६। न वै स्त्रियं घ्नन्ति। शत. ११-४-३-२।

स्त्री पत्युरर्धाङ्गी। अतएव साऽर्धाङ्गिनीशब्देन व्यवह्रियते। पत्नीमन्तरेण न यज्ञस्य पूर्णत्वं स्वीक्रियते। वैदिकविवाहस्याविच्छेद्यत्वं च प्रतिपाद्यते। जाया गार्हपत्योऽग्निः। जाययेव मानवस्य पूर्णत्वं सञ्जायते।वरुण्यं वा एतत् स्त्री करोति यदन्यस्य सत्यन्येन चरति। शत. २-५-२-२.। अथो अर्धो वा एष आत्मनः, यत् पत्नी। तैत्ति. ग्रा. ३-३-३-५। अयज्ञो वा एषः। योऽपत्नीकः। तैत्ति. २-२-२-६। सा होवाच-यस्मै मां पिताऽदात्, नैवाहं तं जीवन्तं हास्यामीति। शत. ४-१-५-९। जाया गार्हपत्योऽग्निः। ऐत. ब्रा. ८-२४। यावद् जायां न विन्दते नैव तावत् प्रजायते, असर्वो हि तावद् भवति।शत. ५-२-१-१.।

तथा च यत्र योषितां समादरस्तत्रैव सर्वक्रियाणां साफल्यम्, तदभावे तु सर्वकृत्यानां निष्फलत्वमितिनिश्चप्रचंवक्तुंशक्यते। अतएव नारीणां भूषणाच्छादनादिभिः सत्कृत्यैः सततमेव सत्क्रिया विधेया इतितन्त्रयुक्तिः। तत्रनारीणांमहत्त्वंवैशिष्ट्यं च परिलक्ष्यवैश्विकसंस्कृतमञ्चेन **"संस्कृतसाहित्य में महिलाओं का योगदान अनसुनीगाथाएँ"** ग्रन्थकुसुमाञ्जलिः प्रकाश्यते इतिमोमुद्यतेमे मनः। एतदर्थं सम्पादकेभ्यश्च भूरिशः धन्यवादाः शुभाशीर्वादाश्च प्रदीयन्ते। अनेन संस्कृतजगतिनारीणां वैशिष्ट्यसमुद्घाटनाय एतेषां सम्पादकानां शरीर-वाग्-बुद्धि-मनांसिसततं सुस्थतामेकरूपतां च प्राप्नुयुरिति भगवन्तं विश्वनाथं सम्प्रार्थ्यविरमामीतिशम्।

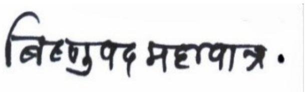

प्रो.बिष्णुपदमहापात्रः आचार्यः, न्यायविभागः

अद्वैतवेदान्तविभागाध्यक्षश्च श्री.ला.ब.शा.रा.सं.विश्वविद्यालयः

प्रधान सम्पादकीय

अकादमिक जगत् और विशेष रूप से संस्कृत प्रेमियों के समक्ष-2024 में आयोजित सम्मेलन को पुस्तकीय रूप में प्रस्तुत करते हुए बहुत खुशी हो रही है। एक भाषा के रूप में संस्कृत हमारी अमूल्य विरासत का भण्डार है। माता सुंदरी महिला महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली के संस्कृत-विभाग की यह ऐतिहासिक सम्मेलन महाविद्यालय में देश-विदेश से आए प्रतिनिधिगण बड़ी प्रतिबद्धता के साथ संस्कृत के संरक्षण और संवर्धन में नए क्षितिज की खोज के उद्देश्य से एकत्र हुए। सम्मेलन का विषय **"संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान अनसुनी गाथाएं"** (Voices Unveiled: Celebrating Women in Sanskrit Literature) **अत्यंत रोचक है**। वेद, उपनिषद्, पुराण, रामायण, महाभारत आदि प्रतिष्ठित शास्त्रीय ग्रन्थों से विदुषी स्त्रियों के अनसुने-अनकहे चरित्र पर प्रकाश डालते हुए विद्वानों ने संस्कृत साहित्य के स्त्रीयोगदान को पूर्णतया अनावरित किया। वैदिक ऋषिकाओं मैत्रेयी, गार्गी, लोपामुद्रा,अपाला,घोषा आदि, कवयित्री अवन्तिसुंदरी,विजयांका,विकटनितम्बा, पण्डिता क्षमाराव आदि, महिला स्वतंत्रता सेनानी, राजपरिवारों की दूतियां, बौद्ध दर्शन की थेरीगाथा, राज प्रशासन की सुचारू गतिशीलता में गणिका, हर दृष्टि से संस्कृत सम्बद्ध स्त्री विमर्श पर विचार किया गया।

इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य भारत और विदेश के विद्वानों के बीच विचारों के परिवर्तन के लिए मञ्च प्रदान करना था। सम्मेलन के विषय में यह भी चर्चा की गई कि विभिन्न क्षेत्रों में महिलाओं की स्थिति क्या है? सम्मेलन को संस्कृत के विद्वानों से भारत एवं विदेश द्वारा बहुत उत्साहजनक प्रतिक्रिया मिली। ऑनलाईन तथा ऑफलाईन दोनों माध्यमों से विद्वान इस सम्मेलन में जुड़े। संस्कृत समाराधकों के लिए यह एक ऐसा मञ्च रहा जहां संस्कृत साहित्य के स्त्री विमर्श रूपरेखा तैयार हुई और आज पुस्तक के आकार में हमारे समक्ष है। यह पुस्तक अनुसंधान कर्ताओं के वैचारिक बल संवर्धन के लिए यह एक सकारात्मक दृष्टि प्रदान करेगी।

हरप्रीत कौर

(प्रो० हरप्रीत कौर)

प्राचार्या, माता सुंदरी महिला महाविद्यालय

दिल्ली विश्वविद्यालय

सम्पादकीय

'भारतस्य प्रतिष्ठा द्वे संस्कृत संस्कृतिश्च' संस्कृत के क्षेत्र में कार्य करना यज्ञ करने के समकक्ष है। विद्वानों के प्रति आभार ज्ञापित करते हुए पुलकित हृदय से यज्ञ की सम्पन्नता का फल यह पुस्तक संस्कृत समाराधकों को समर्पित कर रहा हूँ।

"संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान: अनसुनी गाथाएं" इस विषय पर माता सुंदरी महिला महाविद्यालय एवं वैश्विक संस्कृत मञ्च के संयुक्त तत्त्वावधान में २१-२२,मार्च २०२४, को द्विदिवसीय अन्ताराष्ट्रिय संगोष्ठी प्रथम वैश्विक विदुषी सम्मेलन-2024 का आयोजन किया गया। संस्कृत प्रेमियों के लिए यह हर्ष का विषय है कि देश-विदेश से प्रतिष्ठित विद्वानों ने इसमें प्रतिभाग लिया। उनके द्वारा प्रस्तुत शोध-पत्रों का यह संकलन पुस्तक रूप में हमारे समक्ष है। इस पुस्तक में संस्कृत साहित्य के विविध पहलुओं पर बहुमूल्य लेख, शोधपत्र और विचार संकलित हैं। शोधपत्र अंग्रेजी, हिंदी और संस्कृत में लिखे गए हैं तथा इनमें प्रख्यात विद्वानों का योगदान है। संगोष्ठीऑनलाईन तथा ऑफलाईन दोनों माध्यमों से सम्पन्न हुई। महाविद्यालय में लन्दन से साक्षात् पधारी मिस लूसी गेस्ट ने संस्कृत की उपयोगिता पर अपने विचार प्रकट करते हुए वर्तमान परिदृश्य में संस्कृत को अलौकिक शक्ति सम्पन्न सर्वाधिक प्रायोगिक भाषा बताया। श्रीलाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. मुरली मनोहर पाठक जी ने संगोष्ठी में पधारे विद्वानों को सम्बोधित करते हुए संस्कृत एवं संस्कृति के अद्भुत सामंजस्य को भारत की उन्नति का एक उपादान कारण के रूप में स्थापित किया। सांसद श्रीमती सोनल मानसिंह ने महाभारत से दृष्टांत देते हुए संस्कृत साहित्य में महिलाओं की स्थिति पर विचार प्रकट किए। श्रीमति मीनाक्षी लेखी ने संस्कृत साहित्य में स्त्री संचेतना की सुंदर व्याख्या प्रस्तुत की। संगोष्ठी के सफल आयोजन की प्रतीक यह पुस्तक अध्येताओं की ज्ञान पिपासा की शांति हेतु प्रस्तुत है।

राजेशकुमार

(डॉ. राजेश कुमार मिश्र)

महासचिव,वैश्विक संस्कृत मञ्च एवं सहायक आचार्य, संस्कृत विभाग

नव नालन्दा महाविहार, संस्कृति मंत्रालय

भारत सरकार

सम्पादकीय

"संस्कृत साहित्य में महिलाओं का योगदान: अनसुनी गाथाएं", विषय की दृष्टि से इस पर दो प्रकार से विचार किया जा सकता है। प्रथम संस्कृत साहित्य में महिलाओं की क्या भूमिका रही। द्वितीय संस्कृत साहित्य की ऐसी स्त्रियों को प्रकाश में लाना जिनका योगदान अनसुना रहा है। अपाला, घोषा, मैत्रेयी, गार्गी आदि ऋषिकाएं सर्व विदित हैं। विज्जिका, अवन्तिका, विकटनितम्बा आदि अल्पख्याति प्राप्त कवयित्रियों के योगदान पर भी विचार किया गया। संगोष्ठी में उपस्थित देश विदेश से आए हुए विद्वानों ने दोनों ही प्रकार से शोध पत्र प्रस्तुत किया अपने अद्भुत अनमोल अद्वितीय विचारों को अभिव्यक्त किया। संगोष्ठी की संयोजिका की भूमिका में दायित्व का निर्वहन उत्तम अनुभूति रहा। देश- विदेश के प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थानों से विद्वानों ने इसमें उत्साह से प्रतिभाग लिया। सभी के वैचारिक तथ्यों का संकलन इस पुस्तक के माध्यम से आज हमारे समक्ष है यह अत्यंत हर्ष की बात है कि यह संगोष्ठी केवल वाचिक प्रस्तुति न रही अपितु पुस्तकाकार में हमारे समक्ष है। आशा है कि यह कृति युवा विद्वानों को गहन शोध के लिए अभिरुचि विकसित करने के लिए प्रेरित करेगी।

(डॉ. कल्पना शर्मा)
सहायकाचार्या, संस्कृत विभाग
माता सुंदरी महिला महाविद्यालय
दिल्ली विश्वविद्यालय

विषयसूची

क्र.	विषय	लेखक/लेखिका	पृ.सं.
1	अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भारतीय संस्कृति	श्रीमती नलिनी सिंह	13
2	धर्मशास्त्र, स्मृतियों एवं पुराणों में महिलायें	अनुपम पटेल	19
3	महिलानां गैर्वाणी महत्ता (CONTRIBUTION OF WOMEN IN SANSKRIT LITERATURE)	Dr. K.V.R.B. VARA LAKSHMI	27
4	CONTRIBUTION OF PAṆḌITA KṢAMĀ RĀV TO SANSKRIT LITERATURE	Arya A Varma	33
5	अर्वाचीन संस्कृत नाटकों में नारी शक्ति का अवदान	डा0 नीलम	43
6	ब्रह्मवादिनी गार्गीः दार्षनिक चिंतन	प्रियंका रस्तोगी	52
7	Contribution of Women in Different Social Institutions in Vedic and Contemporary Time: A Sociological Analysis	Mrs. Dhruva Rushabh Trivedi	58
8	वैदिक साहित्य में स्त्री-विमर्श	अमिता वर्मा	64
9	डॉ. लीना रस्तोगी व्यक्तित्व कृतीत्व	दिव्यानी अनमोलवार (शुंकलवार)	77
10	The Vedic Vision depicted in the views of Prof. Shashiprabha Kumar	Dr. Ranjan Lata	91
11	कालिदास रचित ग्रन्थों में स्त्रियों का स्थान	DR. DIPTI KUMARI	110
12	“डॉ.हर्षदेव माधव वीरचित 'बुभुक्षितः काकः' पुस्तक का समीक्षण”	जया सुनील मुंघाटे	121
13	पदम पुराण में प्रतिपादित स्त्री विमर्श : एक अवधारणा आधुनिक परिप्रेक्ष्य के विशेष संदर्भ म	मंजु कुमारी	133
14	संस्कृत साहित्य के संवर्धन में महिलाओं की भूमिका	नूर सहगल	142
15	संस्कृत साहित्य के संवर्धन में महिलाओं का योगदान	रिचा माथुर	149

16	वैदिक साहित्य में स्त्री विमश	डॉ ऋषिका वर्मा	159
17	राष्ट्रीय चारित्र्य निर्मिती में नारी का योगदान	डॉ. शुचिता ला. दलाल	165
18	Women and Jainism: A special reference to Jinasena's *Ādipurāṇa*	Hetal M. Kamdar	174
19	WOMEN IN VEDIC LITERATURE	Dr. Sistla Sailaja	183
20	वैदिक काल में स्त्रीविमर्श	डॉ. चन्द्र भूषण	192
21	नागपूरविदुषि श्रीमती दुर्गाताई पारखी	डॉ. अबोली व्यास	207
22	रघुवंश में नारी विमर्श	Dr. Nirmla Devi,	213
23	रामायण काव्य में सीता का पातिव्रत्य धर्म	डॉ० सरोज कुमारी	222
24	वाल्मीकिरामायणे प्रतिपादितं सीतायाः स्वरूपं	डॉ(श्रीमती)भवानी रामचन्द्रन्	231
25	"मधुराम्लम् अभिनव कृतियाँ"	डॉ. उर्वशी सी. पटेल	240
26	वैदिक साहित्य में नारी	Dr.Amisha Harshalbhai Dave	249
27	वैदिक साहित्य में स्त्रियों की परिस्थिति	Kapil Kumar Sharma	259
28	संस्कृत वाग्गेयकारिणां परिचयः तासां योगदानञ्च	रा राजलक्ष्मी	269
29	संस्कृत साहित्य में नारी का स्थान	डॉ. गौरी चावला	281
30	स्मृति ग्रंथों में नारी	डॉ० तरुलता वी० पटेल	288
31	अथर्ववेद में पृथ्वी देवी की स्तुति	डॉ. सुरेखा पटेल	304
32	वैदिक साहित्य में नारी	Dr.Amisha Harshalbhai Dave	315
33	नागपूरविदुषि श्रीमती दुर्गाताई पारखी	डॉ. अबोली व्यास	324
34	वैदिक काल में स्त्रीविमर्श	डॉ. चन्द्र भूषण	330

35	प्राचीन नारी संस्कृति के संदर्भ में वर्तमान नारी - चेतना की अवधारणा	डॉ सुधा पाण्डेय	345
36	उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य में महिलासशक्तिकरण की अवधारणा	डॉ० चंद्रप्रभा गंगवार	359
37	संस्कृत वाङ्मय में महिलाओं की स्थिती	लीना पांडे	366
38	गंगादेवीकृत 'मधुराविजयम्' महाकाव्य का ऐतिहासिक महत्त्व	मधुरा प्रमोद किरपेकर	375
39	वाल्मीकि रामायण में नारियाँ	डॉ. पूर्णिमा सिंह राना	385
40	वैदिक साहित्य में नारी - एक अनुशीलन		398
41	महाकाव्यों में नारी की दिव्यता	मेघना हर्षवर्धन भट्ट	409
42	CONFLICT BETWEEN LOVE AND RESPONSIBILITY IN VĀSAVADATTA - A STUDY BASED ON *SVAPNAVĀSAVADATTA* OF BHĀSA	DR. SAPNA O P	420
43	वेदों में वर्णित प्रमुख ऋषिकाओं का विश्लेषण	जानी वन्दना यज्ञप्रकाश	431

अभिज्ञानशाकुन्तलम् में भारतीय संस्कृति

श्रीमती नलिनी सिंह
शोधार्थी, (संस्कृत विभाग)
शा. हमीदिया कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय, भोपाल (म.प्र.)
मो. 7747972680/9302858672
ईमेल- singhnalini308@gmail.com

संस्कृत-साहित्य के उपवन में कालिदास का समागम एक ऐसे वसन्तदूत के रूप में माना गया है, जिसके कारण उस उपवन का कोना-कोना पुष्पित हो उठा। उन्होंने संस्कृत भाषा को वाणी दी, नई साज-सज्जा, नए भाव, नई दिशाएँ, नए विचार और नई-नई पद्धतियाँ दी। वे संस्कृत के सबसे बड़े कवि और नाटककार माने जाते हैं। कालिदास के सम्बन्ध में महाकवि गेटे के भावों को विश्वकवि टैगोर के शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता हैं, ''स्वर्ग और मर्त्य का जो यह मिलन है, उसे कालिदास ने सहज ही सम्पादित कर लिया है। उन्होंने फूल को सहज भाव से फल में परिणत कर लिया है, मर्त्य की सीमा को उन्होंने इस प्रकार स्वर्ग के साथ मिला दिया है कि बीच का व्यवहार किसी को दृष्टिगोचर नहीं होता।

नाटकों के क्षेत्र में महाकवि ने 'मालविकाग्निमित्रम्' 'विक्रमोर्वषीयम्' और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' इन तीन कृतियों का प्रणयन किया। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' उनकी अंतिम कृति है, किन्तु उसकी गणना आज विश्व साहित्य की पहली कृतियों में की जाती है। प्रेम और सौहार्द्र का ऐसा सरल हृदयग्राही एवं मर्मस्पर्षी चित्रण अन्यत्र देखने को नहीं मिलता। उसमें ओज के साथ मनोज्ञता और लघुत्व के साथ ही भाव-प्रांजलता का अद्भुत समन्वय विद्यमान है।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की गणना संसार की श्रेष्ठतम कृतियों में की जाती है, कालिदास का इसे 'सर्वस्व' कहा गया है। जर्मनी के महाकवि गेटे 'शकुन्तला' को पढ़कर इतने हर्ष-विभोर हुए कि इसकी प्रशंसा में उसने एक कविता ही रच डाली-

वासन्तं कुसुमं फलच्च युगपद् ग्रीष्मस्य सर्वं च यद्
यच्चान्यन्मनसो रसायनमतः सन्तर्पणं मोहनम्।
एकीभूतमभूतपूर्वमथवा स्वर्लोकभूलोकयो
रैष्वर्यं यदि वाच्छसि प्रिय सखे शाकुन्तलं सेव्यताम्।।

अर्थात्- यदि यौवन-वसंत के पुष्प-सौरभ और प्रौढ़-ग्रीष्म के मधुर फल का एक साथ परिपाक देखना हो, यदि अंतःकरण को अमृत के समान तृप्त और मुग्ध करने वाली वस्तु का अवलोकन करना हो और यदि स्वर्गीय सुषमा और पार्थिव ऐश्वर्य के सम्मिलन की झाँकी देखना हो तो, अभिज्ञानशाकुन्तलम् का अनुषीलन करो।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् की श्रेष्ठता के विषय में दो मत नहीं है। आलोचक विद्वानों ने लिखा है-

''काव्येषु नाटकं रम्यं रम्या तत्र शकुन्तला।
तत्रापि च चतुर्थोऽङ्कीकस्तत्र श्लोक चतुष्टयम्।।

काव्यों में नाटक सबसे श्रेष्ठ है, नाटकों में अभिज्ञान शाकुन्तलम्। उसमें भी चौथा अंक और चौथे अंक में भी चार श्लोक। पश्चिमी विद्वानों ने भी इसे अतिउत्तम नाटक माना है। इस नाटक में सात अंक है। पहले अंक में हस्तिनापुर का राजा दुष्यन्त आखेट करने के लिए वन में जाता है और संयोगवष महर्षि कण्व के आश्रम में शकुन्तला से साक्षात्कार करता है। उसकी जन्मकथा सुन उसके हृदय में शकुन्तला के लिए अनुराग उत्पन्न होता है। द्वितीय अंक में ऋषियों की प्रार्थना पर आश्रम की रक्षा करने के लिए वह स्वयं वही रह जाता है। तृतीय अंक में राजा और शाकुन्तला का

समागम है। चतुर्थ अंक में कण्व तीर्थ यात्रा से लौटकर आश्रम में आते हैं और शाकुन्तला को गर्भवती जान गौतमी तथा शारद्वत और शार्ङ्गख नामक दो शिष्यों के साथ हस्तिनापुर भेजते है। शाकुन्तला का आश्रम से जाने का दृष्य बड़ा ही करूणोत्पादक है। यह चतुर्थ अंक शाकुन्तला में सबसे अच्छा समझा जाता है। पंचम अंक में शाकुन्तला हस्तिनापुर पहुँचती है, परन्तु दुर्वासा के अभिशाप के कारण राजा उसे पहचानता नहीं है। इस प्रत्याख्यान के बाद ऋषियों के चले जाने पर शकुन्तला को कोई दिव्य ज्योति आकाश में उड़ा ले जाती है और मरीचि के आश्रम में वह अपनी माता मेनका के साथ निवास करती है। षष्ठ अंक में राजा की नामांकित अंगूठी मछुए के पास से राजा को मिलती है। उसे देखते ही दुष्यन्त को शकुन्तला की स्मृति हो जाती है, वह अपनी प्रियतमा के प्रत्यागमन से अत्यंत विह्वल हो उठता है। अन्त में इन्द्र की सहायता करने के लिए स्वर्गलोक में जाता है। सप्तम अंक में दुष्यन्त विजय प्राप्त कर स्वर्ग से लौटता है और मरीचि आश्रम में अपने पुत्र तथा प्रियतमा का साक्षात्कार करता है। इस प्रकार शाकुन्तला के प्रथम चार अंको को 'भोगभूमि' बीच के दो अंको को 'दण्डभूमि' और अंतिम अंक को 'सिद्धभूमि' कहा गया है।

साधारण सी पौराणिक कथा को कालिदास ने अपनी अद्भुत कल्पना शक्ति द्वारा अनुपम नाटकीय रूप दे दिया है। कण्य ऋषि ऋषि की तीर्थयात्रा, दुर्वासा का शाप, अंगूठी की कल्पना आदि कालिदास की अद्भुत नाट्यकुशलता के परिणाम हैं, जिन्होंने कथानक को रोचक बनाया है, अपितु नायक नायिका के चरित्र की रक्षा भी की है। कालिदास की इस अनुपम कृति में उनकी नाट्य प्रतिभा, कल्पना प्रचुरता, भाषा-लालित्य, रस परिपाक तथा मानव मनोविकारों का मार्मिक चित्रण अत्यधिक विशद् रूप में हुआ है। शब्दों का सुकुमार विन्यास, छन्दों का स्वर माधुर्य, सूक्ष्म व्यंजनावृत्ति

आदि गुणों के कारण शाकुन्तलम् संस्कृत साहित्य की ही नहीं अपितु विश्व साहित्य की अनुपम नाट्यकृति है।

अपने काव्यों की भाँति ही कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में आश्रमों की संस्कृति का यषोगान किया है। नगरों की भौतिकता, विलासिता व सामंतीय समाज की स्त्रैणता के प्रतिरोध में उन्होंने आश्रमों के अपरिग्रह, स्वावलंबन, तेजस्विता और निःस्पृहता को महत्व दिया है। जब विदूषक हँसी-हँसी में दुष्यन्त से आश्रम के मुनियों से कर वसूलने की बात कहता है, तो राजा तुरन्त उसे झिड़ककर कहते है- ''राजा को अन्य लोगों से जो धन के रूप में शुल्क मिलता है, वह तो नष्ट हो जाता है, मुनिजन अपनी तपस्या के द्वारा उसे जो पुण्य प्रदान करते हैं। वह अक्षय हो जाता है। दुष्यन्त आश्रम में प्रवेश करने के पहले अपना राजसी वेश व अस्त्र त्याग देता है। अपने सेनापति से भी वह कहता है कि सैनिक आश्रम में विघ्न न करें, क्योंकि तपोवन में भले ही शांति छायी रहती हो, पर इसके भीतर ऐसा तेज छिपा हुआ है, जो जला सकता है।

कालिदास की भावना तथा राजा के कर्त्तव्य को कालिदास ने अभिज्ञानशाकुन्तलम् में बड़े मार्मिक रूप में अभिव्यक्त किया है। शाकुन्तल ऋषि कुमार राजा को देखकर कहते है कि यह राजा ही मुनि हैं, मुनि आश्रम में निवास करते हैं, तो यह गृहस्थाश्रम में प्रतिष्ठित है, मुनि तप करते हैं, यह प्रजा की रक्षा का तप करता है, मुनियों का यष स्वर्ग तक फैला हुआ है, तो इसका यश भी। केवल अंतर यही है कि यह केवल ऋषि नहीं, राजर्षि है।

कालिदास ने अपने नाटकों में भारतीय गृहिणी के आदर्श और माहात्म्य को स्थापित किया है। शाकुंतल के अंतिम अंक में ऋषि शाकुन्तला को समझाते हुए कहते हैं- बेटी अपने सहधर्मचारी के लिए रोष मत करना, क्योंकि शाप के कारण इसकी स्मृति रूँध गयी

थी, उससे इसने तुझे ठुकरा दिया। अब तो अपने भरतार पर तेरा ही पूरा स्वामित्व है- भर्तृपत्यमिति प्रभुता तवैव। पति और पत्नि को एक-दूसरे के अधीन, एक दूसरे के वश में रहना चाहिए- कालिदास दाम्पत्य के इस स्पृहणीय आदर्श को प्रतिष्ठित कर रहे हैं। इसके साथ ही नारी की तेजस्विता के प्रशंसक है।

शाकुन्तल का चित्रपट अत्यन्त व्यापक तथा समृद्ध है। एक नव-प्रस्फुटित-यौवन प्रकृति-किशोरी है जो आश्रमत्थ लता वीरूधों की सेवा-परिचर्या करती है। यह कथानक का आरम्भ बिन्दु है। वह किषोरी अन्नतः राजमहिषी बन जाती है- यह कथानक का पर्यवसान बिन्दु है। किन्तु, इन दोनों बिन्दुओं को मिलाने वाली रेखा अत्यन्त कुटिल हो गयी है और इस कौटिल्य की आड़ में कवि को अपने प्रबुद्ध संवित् के समग्र स्वरूपों की विवृत्ति का मनोरम संयोग प्राप्त हुआ है। सौन्दर्य की पवित्रता एवं मादकता, प्रेम की निष्चलता एवं विवषता, प्रकृतिजन्य सरलता एवं मुग्धता ऋषिकुल की उदारता एवं दयालुता, महर्षि कण्व का आदर्श, वात्सल्य, दुर्वासा का निर्ममदण्ड, वासना की मांसलता का प्रक्षालन तथा आत्मा का सुषान्त निर्मलीकरण, रोमांस के आसव एवं संस्कृति के पीयूष का मंगलमय संमिलन, प्रेयस एवं निःश्रयस का मनोग्राही ग्रन्थिबन्धन- इन सभी उपादानों को एक साथ मिश्रित कर कालिदास ने 'शाकुंतल' में जो 'प्रपानक रस तैयार किया है, वह भारतीय संस्कृति एवं जीवन के लिए नितान्त मूल्यवान है।

यद्यपि कालिदास भारतीय संस्कृति के पूर्ण संरक्षक है। त्याग, तपस्या तथा तपोवन भारतीय संस्कृति के त्रिरत्न है। 'तने व्यक्तेन भुज्जीथाः' कालिदास के नाटकों का प्रभावशाली सन्देश है। तपस्या के बाद दुष्यन्त शकुन्तला का परिणय इत्यादि ऐसे आदर्श है जिनकी उपासना आज भी मानवों को कल्याण की अंतिम कोटि तक पहुँचाने के लिए पर्याप्त है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास- वाचस्पति गैरोला, पृ.681-682
2. महाकवि कालिदास की नाट्य रचनाओं का शास्त्रीय अध्ययन-डॉ. जयकृष्ण प्रसाद खंडेलवाल, पृ.14
3. अभिज्ञानशाकुन्तलम्- डॉ. शिवबालक द्विवेदी, पृ.22
4. संस्कृत सुकवि समीक्षा- आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.73
5. कालिदास साहित्य के पौराणिक संदर्भ (स्त्रोतमूलक अध्ययन)- डॉ. आशा श्रीवास्तव, पृ.17
6. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास- डॉ. राधावल्लभ-त्रिपाठी, पृ.179
7. महाकवि कालिदास- रमाशंकर तिवारी, पृ.149
8. अभिज्ञानशाकुन्तलम्- आचार्य पं. शिवप्रसाद द्विवेदी, पृ.08

धर्मशास्त्र, स्मृतियों एवं पुराणों में महिलायें

अनुपम पटेल
शोधच्छात्र, संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग,
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

शोधसार – किसी भी समाज या सभ्यता की विशेषताओं की जानकारी उसके नारी के प्रति किये गए व्यवहारों से प्राप्त होती है। सृष्टि की मेरुदण्ड नारी को विश्व के सभी राष्ट्रों की संस्कृति का आधार माना गया है। प्राचीन काल से ही भारतीय समाज में नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। आर्य पुरुष ने सदा ही नारी को अपनी अर्धांगिनी स्वीकार किया है। धर्मशास्त्रों, इतिहासों और पुराणों में पातिव्रत्य के प्रभाव से त्रिकालदर्शना, सिद्धिसंपन्ना अनेक नारियों के उदाहरण मिलते हैं। **यथा** – सती सावित्री, देवी सीता, अहिल्या, अनुसुइया, अरुन्धती, सुलोचना, तारा, गार्गी, मैत्रेयी, द्रौपदी, गांधारी इत्यादि। इतिहास साक्षी है कि हमने जब-जब स्त्रियों पर अत्याचार किया है, तब-तब समाज अवनति के गर्त में गया है। यदि हम राष्ट्र, समाज और परिवार की उन्नति की कामना करते हैं तो स्त्रियों को आदर देना अनिवार्य है। **मनु** कहते हैं कि - जिस घर में स्त्रियों का सत्कार नहीं होता वह उनके शाप से नष्ट हो जाता है। “**जामयो यानि गेहानि शपन्त्यऽतिपूजिता: । तानि कृत्याहतानीव विनश्यन्ति समन्तत: ॥**”[1] प्रस्तुत शोध-पत्र में धर्मशास्त्रों, स्मृतियों एवं पुराणों में वर्णित स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था, संपत्ति अधिकार संबंधी नियम, स्त्रियों की स्थिति आदि से संबंधित अनेक विषयों पर विचार किया गया है।

वेद भारतीय संस्कृति के अक्षय आधार हैं और मानव मात्र के लिए सनातन संदेशों के भण्डार हैं। वेदों में नारी की स्थिति अत्यंत

---

[1] मनुस्मृति (3.58).

उच्च, गरिमामयी और पूजायोग्य तथा गौरवपूर्ण है। वैदिक नारी विभिन्न श्रेष्ठ गुणों से विभूषित, कर्तव्यपरायण, स्नेह और सम्मान की पात्र एवं गरिमामयी है। वेदों में नारी को जितनी गौरवास्पद स्थिति प्राप्त है उतनी संसार के किसी अन्य धर्मग्रंथो में नहीं प्राप्त होती। वेद में पत्नी को पति के समकक्ष रखा गया है। जिस प्रकार पत्नी के लिए पति आदर और सम्मान का पात्र है उसी प्रकार पति के लिए पत्नी। वेद में नारी को **'देवी'** कहा गया है। वेद में नारी को पति के तुल्य माना गया है और कहा गया है कि वस्तुत: पत्नी ही घर है – **जाया इद् अस्तम्** ।[1]

पुराण भारत तथा भारतीय संस्कृति की सर्वोत्कृष्ट निधि हैं। ये अनन्त ज्ञान-राशि के भण्डार हैं। पुराण भारतीय जीवन–साहित्य का रत्ननिर्मित अमूल्य श्रृंगार है। नारी ही अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ने वाली श्रृंखला है। जो हमारे शैक्षणिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, धार्मिक और दार्शनिक जीवन को स्वच्छ दर्पण के समान प्रतिबिंबित करती है। अनादि काल से नारी मनुष्यता के इतिहास की प्रधान नायिका रही है क्योंकि वह महाप्रकृति की सर्जन शक्ति की प्रतीक है।

मार्कण्डेय पुराण में देवताओं के अंश से भगवती महादेवी का प्राकट्य और जगत्माता शक्ति स्वरूपा के द्वारा चण्ड, मुण्ड, धूम्रलोचन, रक्तबीज, शुम्भ, निशुम्भ सेनापतियों सहित महिषासुर वध का वृत्तान्त भी विशेष उल्लेखनीय है। **"तथा महासिना देव्या शिरश्छित्त्वा निपातित: । ततो हाहाकृतं सर्वं दैत्यसैन्यं ननाश तत् ॥"**[2] नारी पर ही सृष्टि निर्भर है।

पुराण काल में नारी शिक्षा का बाहुल्य था। मत्स्य पुराण में दिति ने इंद्र का वध करने में समर्थ पुत्र की प्राप्ति के लिए कठोर

---

[1] ऋग्वेद (3.53.4).

[2] मार्कण्डेय पुराण, देवी माहात्म्य (3.42).

तपस्या कर धार्मिक शिक्षा का परिचय दिया था। **"ततो निहतपुत्राभूत् दितिर्वरमयाचत् । भर्तारं कश्यपं देवं पुत्रमन्यं महाबलम् ॥"**[1] पुराणकाल में परिवार एवं समाज में कन्याओं का महत्वपूर्ण स्थान एवं सम्मान होता था। मांगलिक कार्यों में जैसे – राज्याभिषेक, विवाह, अतिथि सत्कार, धार्मिकानुष्ठान (नवरात्रि) में कन्या की उपस्थिति शुभ मानी जाती थी। यज्ञादि में भाग लेकर स्त्री पुरुष को पुण्य का भागीदार बनाने में सहयोगी बनती थी। धर्म एवं संस्कृति की रक्षा का श्रेय सामान्यतया स्त्रियों का ही था क्योंकि पूजा, पाठ, व्रत, दान आदि अधिकतर स्त्रियां ही करती थी ऐसा सामान्यतः विश्वास था।

वामन पुराण में ब्राह्मण कन्या का दर्शन मंगल माना गया है – **"मृद्गोमयं स्वस्तिकमक्षतानि। लाजामधु ब्राह्मणकन्यकां च ॥"**[2]

मनु कहते हैं कि जिस कुल में स्त्री अपने पति से और पति अपनी स्त्री से संतुष्ट रहता है, उस कुल में अवश्य कल्याण होता है । **"सन्तुष्टो भार्यया भर्ता भर्त्रा भार्या तथैव च । यस्मिन्नेव कुले नित्यं कल्याणं तत्र वै ध्रुवम् ॥"**[3]

मनुस्मृति में पुत्र और पुत्री को एक समान कहा गया है पुत्री के होने पर दूसरा कोई व्यक्ति धन नहीं ले सकता।

"यथैवात्मा तथा पुत्रः पुत्रेण दुहिता समा । तस्यामात्मनि तिष्ठन्त्यां कथमन्यो धनं हरेत् ॥"[4]

मनुस्मृति में कहा गया है कि यदि घर में नवविवाहित स्त्री है, कन्या है या रोगी और गर्भवती महिला है तो उनको बिना विचार

---

[1] मत्स्य पुराण (146.25).

[2] वामन पुराण (14.36).

[3] मनुस्मृति (3.60).

[4] मनुस्मृति (9.130).

किये पहले ही भोजन करा देना चाहिए। **"सुवासिनी: कुमारीश्च रोगिणो गर्भिणीस्तथा। अतिथिभ्योऽग्र एवैतान् भोजयेदविचारयन् ॥"**[1]

पिता, भाई, पति और देवर को स्त्रियों का सत्कार और आभूषण आदि से उनको भूषित करना चाहिए। इससे बड़ा शुभ फल होता है। **"पितृभिभ्रातृभिश्चैता: पतिभिर्देवरैस्तथा। पूज्या भूषयितव्यीश्च बहुकल्याणमीप्सुभि: ॥**[2]

याज्ञवल्क्य स्मृति में स्त्रीधन का विभाजन बताते हुए कहा गया है कि–

"पितृमातृपतिभ्रातृदत्तमध्यग्न्युपागतम्।
आधि वेदनिकाद्यं च स्त्रीधनं ॥"[3]

पिता, माता, पति, भाई के द्वारा दिया हुआ विवाह के समय अग्नि के समक्ष माथुर आदि के द्वारा दिया हुआ, दूसरे विवाह के समय पहली पत्नी को दिया हुआ तथा दाय, क्रय, विभाग, परिग्रह और अधिगम के द्वारा प्राप्त धन को स्त्रीधन कहा जाता था। मनुस्मृतिकार (९.१९४) ने भी छह प्रकार के स्त्रीधन माने हैं। कात्यायन छह से अधिक प्रकार के स्त्रीधन बताते हैं।

श्रीमद्भागवत पुराण के नवम स्कन्ध में यज्ञ के आरम्भ में ही केवल दूध पीकर रहनेवाली वैवस्वत मनु की धर्मपत्नी श्रद्धा ने अपने होता के पास जाकर प्रणाम पूर्वक कन्या की याचना की थी।

तत्र श्रद्धा मनो: पत्नी होतारं समयाचत।
दुहित्रर्थं उपागम्य प्रणिपत्य पयोव्रता ॥[4]

इला नामक कन्या इसी यज्ञ से उत्पन्न हुई थी।

---

[1] मनुस्मृति (3.114).

[2] मनुस्मृति (3.55).

[3] याज्ञवल्क्य स्मृति (2.143).

[4] श्रीमद्भागवत पुराण (9.1.14).

मनुस्मृति का एक प्रसिद्ध श्लोक है – **“यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला: क्रिया: ॥[1]”** अर्थात् जिस कुल में स्त्रियों का सत्कार किया जाता है उस कुल पर देवता प्रसन्न रहते हैं, और जहां स्त्रियों का आदर नहीं होता वहां सभी धर्म कर्म निष्फल हो जाते हैं।

जिस कुल में स्त्रियां शोक में अर्थात् अप्रसन्न रहती हैं वह कुल शीघ्र ही बिगड़ जाता है और जहां स्त्रियां प्रसन्न रहती हैं वह कुल सदैव वह बढ़ता है अर्थात् यश को प्राप्त करता है। **“शोचन्ति जामयोयत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम् । न शोचयन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा ॥”[2]**

भविष्य पुराण के सप्तम अध्याय में पुरुष को भार्या के बिना अर्ध पुरुष कहा गया है - **पुमानर्द्धपुमाँस्तावद् यावद् भार्या न विन्दति ।[3]**

मनुस्मृति में कहा गया है कि पुरुष को कभी भी अपनी स्त्रियों को स्वतंत्र नहीं होने देना चाहिए, जो स्त्रियां नाच–गान इत्यादि में आसक्त हों उनको भी अपने वश में रखना चाहिए। स्त्री की बालकपन में पिता, युवावस्था में पति और बुढ़ापे में पुत्र को रक्षा करनी चाहिए।

“अस्वतंत्रा: स्त्रिय: कार्या: पुरुषै: स्वैर्दिवानिशम्। विषयेषु च सज्जन्त्य: संस्थाप्या आत्मनो वशे ॥”[4] ”पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥”[5]

---

[1] मनुस्मृति (3.56).

[2] मनुस्मृति (3.57).

[3] भविष्य पुराण, सप्तम अध्याय

[4] मनुस्मृति (9.2).

[5] मनुस्मृति (9.3).

बृहद्धर्म पुराण में भार्या को पुरुष का सबसे बड़ा मित्र माना गया है । **नास्ति भार्यासमं मित्रम् ।**[1]

धन संग्रह, खर्च, सफाई, धर्म, रसोई और घर को संभालने में स्त्री निपुण मानी गई है। **"अर्थस्य संग्रहे चैनां व्यये चैव नियोजयेत् । शौचे धर्मेऽन्नपक्त्यां च पारिणाह्यस्य वैक्षणे ॥"**[2]

मनुस्मृतिकार कहते हैं कि मद्यपान, दुर्जनसंग, पति से वियोग, घूमना, सोना, दूसरे के घर रहना ये छः स्त्री में दूषण होते हैं। **"पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्। स्वप्नोऽन्यगेहवासश्च नारी संदूषणानि षट् ॥"**[3]

स्कन्द पुराण में नारी को सबसे बड़ा मार्गदर्शक कहा गया है – **नरं नारी प्रोद्धरति मज्जन्तं भववारिधि ।**[4]

मनुस्मृतिकाल में स्त्रियों के जातकर्मादि संस्कार बिना मन्त्रों के होते थे – **नास्ति स्त्रीणां क्रिया मन्त्रैरिति धर्मो व्यवस्थितः ।**[5]

मनुस्मृतिकार कहते हैं कि स्त्रियों में और लक्ष्मी में कोई भेद नहीं है, दोनों समान हैं - **"स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोक्ति कश्चन ।"**[6] संतान पैदा करना, उनका लालन-पालन, अतिथि, मित्र आदि का आदर सत्कार भोजन निर्वाह आदि कार्य स्त्री से ही हो सकता है। **"उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम् । प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीविन्धनम् ॥"**[7]

जो स्त्री मन, वाणी और शरीर को वश में रखकर पति के अनुकूल रहती है वह पतिलोक को पाती है और जगत् में 'साध्वी'

---

[1] बृहद्धर्मपुराण , पूर्वखण्ड (2.4).

[2] मनुस्मृति (9.11).

[3] मनुस्मृति (9.13).

[4] स्कन्दपुराण , कुमारिकाखण्ड.

[5] मनुस्मृति (9.18).

[6] मनुस्मृति (9.26).

[7] मनुस्मृति (9.27).

कही जाती है और पति के विरुद्ध करने से लोक में निंदा पाती है तथा सियार की योनि में जन्म लेती है और बुरे रोगों से दु:खी होती है।

"पतिं या नाभिचरति मनोवाग्देहसंयता।
स भर्तृलोकानान्पोति सद्भि: साध्वीति चोच्यते ॥"[1]
"व्याभिचारात्तु भर्तु: स्त्री लोके प्राप्नोति निन्द्यताम्।
श्रृगालयोनिं चाप्नोति पापरोगैश्च पीड्यते ॥"[2]

बृहस्पति स्मृति में पुत्रहीन मृत व्यक्ति की संपत्ति पर उसकी पत्नी का अधिकार दिया गया है। पत्नी के अभाव में उसकी पुत्री को अधिकारी माना गया है।[3]

याज्ञवल्क्य स्मृति में बताया गया है कि यदि पिता नहीं है तो सभी भाई अपना–अपना चौथाई भाग प्रदान कर बहन का विवाह इत्यादि संपन्न करें - **भगिन्यश्च निजादंशाद्दत्त्वांशं तु तुरीयकम्** ।[4]

कन्या के विवाह में व्यय के संबंध में **नारद स्मृति** में कहा गया है कि पिता को अपने जीवन–काल में अपनी संपत्ति के विभाजन में अविवाहित कन्याओं को भी भाग देना चाहिए।

"या तस्य दुहिता तस्या पित्रयोशो मतः।
आसंस्कारात् हरेद् भाग परतो विभ्रयात्पति ॥"[5]

नारी को पुरुषों के समान ही सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा शैक्षणिक अधिकार प्राप्त थे। पुराणों से ज्ञात होता है कि सभी पुरुष स्त्रियों का निश्चित रूप से श्रद्धा व आदर की भावना रखते थे तथा अपने कर्तव्य का पालन करते थे। लगभग सभी अधिकार स्त्रियों

---

[1] मनुस्मृति (9.29).

[2] मनुस्मृति (9.30).

[3] बृहस्पति स्मृति (25.55)

[4] याज्ञवल्क्य स्मृति (2.124).

[5] नारद स्मृति

को, पुरुषों के समान ही प्राप्त थे। मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से वर्णित है कि जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता निवास करते हैं । महाभारत में माता का स्थान पिता से भी ऊँचा बताया गया है। ऋग्वेद में तो पत्नी को ही घर कहा गया है। निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्राचीन सभी तथ्यों का समीक्षात्मक अध्ययन किया जाए ताकि उन प्रचीन धारणाओं को वर्तमान समय में उपयोगी बनाया जा सके।

संदर्भग्रंथ सूची -

- ऋग्वेद संहिता, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर, 1965.
- नारदस्मृतिः, व्याख्याकार, डॉ. ब्रजकिशोर स्वाई, चौखम्भा विद्या भवन, संस्करण, 2004.
- बृहद्धर्मपुराण (पूर्वखण्ड), (भाष्य.) एस. एन. खण्डेलवाल, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, 2014.
- भविष्य महापुराण, (अनु.) पं. बाबूराम उपाध्याय, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग, 2012.
- मनुस्मृति, व्याख्याकार, रामेश्वर भट्ट, दिल्ली, चौखंबा संस्कृत प्रतिष्ठान पु. मु. संस्करण 2011.
- मत्स्यपुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2076.
- मार्कण्डेय पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2074.
- याज्ञवल्क्यस्मृति, व्याख्याकार, पंडित दुर्गाधर वाचस्पति (मिताक्षरासंवलितम्) संपादक, शशिनाथ झा, नई दिल्ली, विद्या भवन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, 2002.
- वामन पुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2074.
- स्कन्दपुराण, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2073.
- श्रीमद्भागवत महापुराण, महर्षि वेदव्यास प्रणीत, गीताप्रेस गोरखपुर, संवत् 2071.

महिलानां गैर्वाणी महत्ता

(CONTRIBUTION OF WOMEN IN SANSKRIT LITERATURE)

Dr. K.V.R.B. VARA LAKSHMI
HOD OF SANSKRIT
SRI Y.N.M COLLEGE
NARSAPUR – W.G.Dist., A.P.
varalakshmikvrb@gmail.com
Cell : 9393392619

उपोद्घातः :-

श्रुतिस्मृतिपुराणेतिहासादिषु स्त्रीणां समुचितस्थानं वर्तते। तैत्तरीयोपनिषदि शिक्षावल्यां स्नातकोपदेशे "मातृदेवोभव"[1] इत्युक्तम्। "न मातुः परदैवतम्" **"यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्तेतत्रदेवताः"**[2] **"मातागुरुतराभूमेः"**[3] इत्यादीनि वाक्यानि स्त्रीणां समुन्नतस्थान प्रतिपादकान्येव भवन्ति। पवित्रभारतदेशेऽस्मिन् बहवः पतिव्रताः ऋषिपत्नयः साध्वीमणयः विदुषीमणयश्च सञ्जाताः। अत एव प्राचीनकाले **"अहल्याद्रौपदीसीता तारामण्डोदरीतथा। पञ्चकन्यास्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्"**इति। एतासां साध्वीमणीनां नामस्मरण एव महापातक विनाशकारणं इति स्त्रीणां महोन्नतस्थान प्रदायकत्वं गोचरति। पवित्र भारतदेशोऽयं वेदभूमिः कर्मभूमिश्च। देशेस्मिन् सञ्जातः अद्वैतमतसंस्थापकः श्रीशङ्करभगवत्पादाचार्यः "शिवश्शक्त्यायुक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्[4] इति सौन्दर्यलहर्यां,

---

1.तैत्तरीयोपनिषद् –शिक्षावल्ली-अनु-११

2. मनुस्मृतिः-अ-३-श्लो-१०

3.श्रीमन्महाभारतम्-वन-श्लो-६०

4. सौन्दर्यलहरी-श्लो-१

"कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"[1] इति देवीस्तुत्यां च अकथयत्। अनेन स्त्री शक्तेः उत्कृष्टता विशिष्टता च ज्ञायते।

अपि च "पुरुषवत्योषितोऽपिकवयो भवेयुः संस्कारोह्यात्मनिसमवैति। नस्त्रैणं पौरुषं वा विभागमपेक्षते[2] इति राजशेखरोक्तिः। अनेन न केवलं पुरुषाः एव नार्यः अपि कवयः भवन्ति इति सारस्वतस्य लिङ्गविवक्षा नास्ति इति केवलं आत्मनिष्टैव भवतीति ज्ञायते। पूर्वकाले गार्गी, मैत्रेयी, उभयभारती इत्यादि विदुषीमणयः संस्कृतसाहित्यस्य अमूल्यरत्नानीव प्रकाशन्ते।

संस्कृतसाहित्ये स्वल्पसंख्याकाः कवयित्र्यः वर्तन्ते। तथापि ताः काव्यनिर्माण दीक्षाकौशलेन कवितापटुत्वेन, वर्णनाचमत्कृतिना आशुकविताधुरन्दरत्वेन गद्यरचना गाम्भीर्येण चम्पूरचनाविन्यासेन च विलसन्ते। एतासु गङ्गादेवी, तिरुमलाम्बा, रामभद्राम्बा, मधुरवाणी चेति सुप्रसिद्धाः।

विषयः :-

संस्कृतकाव्यनिर्माणकर्त्री गङ्गादेवी सा वीरकम्परायचरितमिति चारित्रककाव्यं अरचयत्। अस्य काव्यस्य मधुराविजयमिति नामान्तरमस्ति। गङ्गादेव्या विरचितम् मधुराविजयं तिरुवान्कुरु पुरातत्त्वशोधकैः १९१६ तमे वर्षे मुद्रितम्। श्रीताडेपल्लि राघवनारायणशास्त्रि महोदायः पुस्तकमेतत् आन्ध्रभाषायां चम्पूरूपेण अनूदितवान्। वीरकम्परायचरितम् चारित्रकांशसमन्वितं काव्यम्। सामान्यतः सुप्रसिद्ध श्रीमद्रामायण महाभारतादिषु इतिवृत्तं स्वीकृत्य काव्यरचना दृश्यते। परन्तु सर्वतन्तस्वतन्त्रा, प्रज्ञासमन्विता, समकालीना सा स्ववंशस्य चरितं पतेः पराक्रमादि विषयसमन्वितं दिग्विजययात्रां च वीरकम्परायचरितमिति काव्यरूपेण अरचयत्। अस्याः कालः चतुर्दशशताब्दः। सा कम्परायस्य धर्मपत्नी, साक्षात्

1. देवीस्तुतिः-श्लो-१

2. काव्यमीमांसा राजशेखरः-अ-२०-पु.-२२६

सरस्वती स्वरूपिणी भूत्वा नवसर्गात्मिकं वीरकम्परायचरितं अरचयत्। तत् महाकाव्यलक्षण समन्वितं चन्द्रोदयादि अष्टादशवर्णनयुक्तं च भाति। काव्येऽस्मिन् प्रथमद्वितीय सर्गद्वये उपजातिः तृतीयसर्गे वंशस्थ, चतुर्थसर्गे अनुष्टुप्, पञ्चमसर्गे द्रुतविलम्बितं, षष्टसर्गे पुष्पिताग्रं चेति छन्दो वैविध्यं दृश्यते।

प्रथमसर्गे देवताप्रार्थना, कविस्तुतिः, कुकविनिन्दा, विजयनगरवर्णनं, द्वितीयसर्गे विजयनगरसंस्थापकस्य बुक्करायपुत्राणां वर्णनं, तृतीयसर्गे कुमारकम्परायं प्रति बुक्करायकृत हितोपदेशं, चतुर्थसर्गे कम्पराय दिग्विजययात्रा वर्णनं, पञ्चमसर्गे काञ्चीपुर्यां प्रावृड्काल शीताकालवर्णनं, षष्टसर्गे कुमारकम्पराय जीवितक्रमवर्णनं, सप्तमसर्गे गङ्गादेवीकम्परायययोः सम्भाषणादिकं, अष्टमसर्गे प्रत्यक्षीभूत देवताया रिपुसंहारक खड्गदानं इत्येते विषयाः सुष्ठु कथिताः। मधुराविजये प्रतिसर्गान्ते भविष्यसर्गविषयप्रस्तावनेन श्लोकाः दृश्यन्ते। प्रायशः सर्गान्तिमश्लोके सर्गान्तर्गतविषय प्रतिपादकत्वं दृश्यते। किन्तु गङ्गादेव्या विरचिते मधुराविजये भविष्यस्सर्ग प्रस्तावनेन विनूत्नपन्था अवलम्बिता।

वीरकम्परायचरितम् वैदर्भीरीति समन्वितं, मृदुमधुरभावयुक्तं, सुलभसुन्दर शैलीयुक्तं च भाति। गङ्गादेवी काव्येस्मिन् कविकुलगुरुं कालिदासं अनुसृत्य उपमालङ्कारप्रयोगमित्थं अकरोत्।

“स सेनां महतीं कर्षन् पूर्वसागरगामिनीम्।
बभौ हर जटाभ्रष्टां गङ्गामिव भगीरथः ॥[1]

इति श्लोके महाकविः कालिदासः रघोः जैत्रयात्रां अवर्णयत्। श्लोकेऽस्मिन् पूर्वसमुद्रपर्यप्तां सेनां आनीय गच्छन्तं रघुं ईश्वरजटाजूटपतितां गङ्गां आनीय गच्छन्तं भगीरथ इव भाति इत्यवर्णयत्। गङादेवी वीरकम्परायचरिते ससेनां वीरकम्परायं एवं अवर्णयत्।

1.वीरकम्परायचरितम्-स-४-श्लो-३२-पृ-१९

"स नयन् महतीं सेनां व्यरु च द्वीर कुञ्जरः।
पयोदमाला माकर्षन् पौरस्त्य इव मारुतः॥ इति

वीरकम्परायः सेनां आनीय गच्छन् मेघमाला समन्वितः पूर्ववायुरिव भाति इत्यवर्णयत्।

"तार्किकाः बहवस्सन्ति शाब्दिकाश्च सहस्रशः।
विरलाः कवयोलोके सरलालाप पेशालाः॥"[1]

इति श्लोके "नानृषिः कुरुते काव्यम्" इत्युक्तिं समर्थयित्वा लोके तार्किकाः वैय्याकरणाश्च बहवः सन्तीति कवयः विरला चेति कथितम्।

"वेलापथे तस्य विभोर्गजानां कर्णानिवै केतक गर्भरेणुः
प्रसारितस्तत्र पयः पयोधिं अकल्पयन्तं लवणाम्बुराशिम्॥

इति श्लोकः तस्याः कल्पनाचातुर्याः एकं उदाहरणं भवति। रघुनाथरायगजसमूहः समुद्रतीरे गच्छन्ति। तत्र गजकर्णप्रसारित केतकगर्भरेणुभिः क्षीरसमुद्रः लवणसमुद्रः अभवदिति अभूतकल्पनां अकरोत्।

"तस्मदीयमिदं काव्यं विबुधा श्रोतुमर्हति।
मधुराविजयं नाम चरितं कम्पभूपतेः॥"[2]

इति श्लोके तया विरचितं काव्यं पण्डिताः श्रोतुमर्हति इत्युक्तवती। तं सन्तः श्रोतुमर्हति सदसहव्यक्ति हेतवः इति रघुवंश कालिदासोक्तिं ज्ञापयति।

मधुराविजयेकम्पूभूपतेः स्वप्ने मधुरानगराधिदेवतायाः साक्षात्कारः अभूत्। विषयोऽयं आदिकाव्ये रामायणे त्रिजटस्वप्न वृत्तान्तं अनुकरोति। एवं गङ्गादेवी "सरसोदारपदांसरस्वतीम्"[3]इत्युक्त्वा स्व वैदुष्यं प्राकटयत्।

---

1. तत्रैव-श्लो-२२-पृ-१८
2. तत्रैव-श्लो-२५-पृ.-२१
3. वीरकम्परायचरितम्-सर्ग-७-पृ.-३०३

दानं पाणे श्रुतेस्सूक्तं” इति श्लोके गङ्गादेवी हस्तस्य दानमलङ्कारं इति श्रवणस्य सूक्तिः अलङ्कारमिति अवर्णयत्। अयं श्लोकः भर्तृहरि महाकवि विरचितं **“श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्नतु कङ्कणेन”**[1] इति श्लोकं ज्ञापयति। कर्णः धर्मशास्त्रश्रवणेनैव प्रकाशते सुवर्णालङ्कारेण न बिभाति। तथैव पाणिः सत्पात्रदानेन विभाति। न कङ्कणैः इति भर्तृहरिमहाकविना यदुक्तं तथैव भावसहितं वीरकम्परायवर्णनं अकरोत्।

एवमेव तिरुमलाम्बा (१२९-१५४२) **“वरदाम्बिकापरिणयमिति”** चम्पूकाव्यं, रामभद्राम्बा रघुनाथाभ्युदयमिति (१२ सर्गाः) द्वादशसर्गात्मकं काव्यं, मधुरवाणी रामायणसारसंग्रहमिति काव्यं च अरचयत्।

उपसंहारः

संस्कृतसाहित्ये चारित्रक काव्यानि विरलानि। तथापि एताः विदुषीमणयः कह्लण, बाणभट्टयोरिव समकालीन चारित्रकांशान् सहृदयाह्लादकत्वेन सुमनोहरकाव्यरूपेण विरचय्य संस्कृतभाषा सरस्वत्याः अलङ्काराः भवन्ति। सहृदयानां पाठकानां हृदि सदा वसन्ति।

उपयुक्तग्रन्थसूची :-

1. मनुस्मृतिः-श्रीवेङ्कटेश्वर बुक् डिपो-विजयवाडा-२०११
2. History of Sanskrit Literature-मल्लादि सूर्यनारायणशास्त्री-वि.आर् पब्लिकेशन्स्-चेन्नै-१९९६
3. तैत्तरीयोपनिषत्-श्रीशङ्करभगवत्पादः-मोतीलाल् बेनारसीदास्, वाराणसी-२००६
4. सोन्दर्यलहरी-श्रीशङ्करभगवत्पादः-वाविल्लरामस्वामिशास्त्रि-सन्स्-चेन्नै-१९६४
5. काव्यमीमांसा-संस्कृतभाषा प्रचारसमिती-हैदराबाद्-१९९५

1. भर्तृहरिसुभाषितानि-परोपकारपद्धतिः-श्लो-६२, पृ.-८७

6. मधुराविजयम्-The Oriental Power Press, Tenali-1996
7. संस्कृत साहित्य चरित्र-मुदिगोण्ड गोपालरेड्डि, मुदिगोण्ड सुजातारेड्डी-पोट्टिश्रीरामुलु तेलुगु विश्वविद्यालयः-हैदराबाद्-२०१४
8. श्रीमन्महाभारतम्-वेदव्यासः-चौखाम्बा संस्कृत संस्थान् पब्लिकेशन्स्-वाराणसी-२००३
9. वैय्याकरणसिद्धान्त कौमुदी-भट्टोजी दीक्षितः-चौखाम्बा संस्कृत संस्थान् पब्लिकेशन्स्-वाराणसी-२००४
10. श्रीमद्भगवद्गीता-वेदव्यासः-चौखाम्बा संस्कृत संस्थान् पब्लिकेशन्स्-वाराणसी
11. भर्तृहरिसुभाषितानि-जे.पि. पब्लिकेशन्स्-विजयवाडा-२००६

CONTRIBUTION OF PAṆḌITA KṢAMĀ RĀV TO SANSKRIT LITERATURE

Arya A Varma
Research Scholar, Department of Sanskrit, Maharaja's College (Govt. Autonomous), Ernakulam, Kerala – 682011
E-Mail ID: reshmirvarma2013@gmail.com
Contact No: +91 8301922935

Ever since the beginning of Sanskrit Literature, we come across various female authors - be it the Vedic women Gārggī, Maitreyī etc. who propounded about the supreme soul or the poetesses like Gaṅgādevī, Tirumalāmbā, Madhuravāṇī etc. Paṇḍita Kṣamā Rāv is one such personality of the twentieth century, whose name is worth mentioning when it comes to modern writings in Sanskrit.

Paṇḍita Kṣamā Rāv is known in Sanskrit as a character writer, playwright and prose-poet. She was also the first to handle the modern type of short story in Sanskrit. The stream of pride is reflected in the stories of Paṇḍita Kṣamā Rāv. Some others have their themes based on the independence struggle. Some of the narratives in her stories in her prose stories relate to the prevailing social circumstances and some depict the plight and tragedy of women stricken by the social stereotypes or the exploited class. Her force of diction and style of composing poems too deserve a great place in Sanskrit literature. We come to know all these through the powerful writings of Paṇḍita Kṣamā, the importance of nationalism, patriotism and women empowerment. This research paper is an attempt to introduce the life and works of Paṇḍita Kṣamā Rāv and their relevance in the modern context.

Keywords: Paṇḍita Kṣamā Rāv, Indian Independence, Modern Sanskrit Literature, Female authors, Mahākāvya, Modern Sanskrit Dramas, Biography

INTRODUCTION

Ever since the beginning of Sanskrit Literature, we come across various female authors - be it the Vedic women Gārggī, Maitreyī etc. who propound about the supreme soul or the poetesses like Gaṅgādevī, Tirumalāmbā, Madhuravāṇī etc.

Paṇḍita Kṣamā Rāv is one such personality of the twentieth century, whose name is worth mentioning when it comes to modern writings in Sanskrit.

BIOGRAPHY OF PAṆḌITA KṢAMĀ RĀV

Paṇḍita Kṣamā Rāv is known in Sanskrit as a character writer, playwright and prose-poet. She was also the first to handle the modern type of short story in Sanskrit. She was born on 4th of June in 1890 to a family with scholastic base in Maharashtra. Her father was Paṇḍit Śaṅkar Pāṇḍuraṅga, who was a great Vedic scholar and researcher, who devoted his entire lifetime in learning about ancient Indian literature and culture. Her mother was Uṣābāī, a very thoughtful and sensible woman who encouraged her to pursue her literary interests. Even though the surname 'Paṇḍita' was acquired naturally by legacy, her literary pursuits made it even deserving. Kṣamā was one among the eight children in her family. It is evident that Śaṅkar Pāṇḍuraṅga's interest and scholarship in Sanskrit language were inherited by Kṣamā Rāv. On account of her interest in Sanskrit language, she learnt the same under R.G. Bhandarkar and P V Kane.

Kṣamā Rāv was brilliant in studies, especially languages. Her father Paṇḍit Śaṅkar Pāṇḍuraṅga passed away when she was very young. With the help of her uncle Sitaram Paṇḍit, Kṣamā stayed at Rajkot, to receive her formal education. She spent most of her early days there. Apart from that, she also had severe financial constraints, which made her classmates regard her as poor and needy. Even in this situation, Kṣamā passed her matriculation with top scores in English and Sanskrit. Later, she joined the Wilson College in Bombay. Her mentors were the revered scholars like Mahāmahopādhyāya Bharatratna P V Kane and Vidyālaṅkāra Nagappa Śāstrī. Unfortunately, her studies were interrupted due to the constraints imposed upon women by the society regarding acquiring higher education. Even after the death of her father, it was Kṣamā's mother Uṣābāī, who ensured that her children were educated and planned for the same at their home. L R Pangarkar, the well-known researcher and biographer taught Sanskrit to Kṣamā Rāv and her siblings. She was so brilliant that she could grasp everything taught quickly. She was married to Dr. Raghavendra Rāv. Dr. Raghavendra was a well - known physician at that time. It was after her marriage, her name was changed to Kṣamā Rāv. After marriage, her life changed dramatically as Dr. Rāv, who stood among the scholars and

developed a progressive way of thinking, appointed a Sastri and facilitated her education at home. Along with her husband, Kṣamā got opportunities to visit various parts of India as well as other nations, which paved way to the widening of her knowledge. As a result, she became well versed in Italian and French languages. Thus, Kṣamā Rāv was a multilingualist. The Indian languages known to her were Marathi, Sanskrit and Gujarati. Apart from these, she was also a sportsperson. As a pursuit for empowering women by providing education, Paṇḍit Śaṅkar Pāṇḍuraṅga established a girl's school with the help of Justice Ranade and others.

It was the persuing of independence struggle in the nation while Kṣamā was pursuing her education. She took part in the freedom struggle led by Mahatma Gandhi. Thus, Kṣamā is also remembered by everyone as a freedom fighter too. She has got the opportunity to visit the Sabarmati Ashram. The life and ideals of Mahatma Gandhi are detailed mostly in her works. It was Kṣamā, who introduced a new genre to Sanskrit literature, through her work Śaṅkarajīvanākhyānam, which is a biography of her father. She also wrote many stories in verse - form.

Paṇḍita Kṣamā Rāv wrote primarily in English from 1920 to 1930. Her compositions are also available in Marathi. Influenced by the prevalence of the Satyagraha Movement, she began to write in Sanskrit language. The following are her works:

- Śrījñāneśvaracaritam
- Śaṅkarajīvanākhyānam
- Rāmadāsacaritam
- Tukarāmacaritam
- Mīrālaharī
- Satyāgrahagītā
- Uttarasatyāgrahagītā
- Svarājyavijayaḥ
- Kaṭuvipākaḥ
- Mahāśmaśānam

- Kathāmuktāvalī
- Kathāpañcakam
- Grāmajyotiḥh
- Vicitrapariṣadyātrā

Among these, she translated and published the works Śrījñāneśvaracaritam, Śaṅkarajīvanākhyānam, Rāmadāsacaritam, Tukarāmacaritam and Mīrālaharī.

It was Kṣamā Rāv who introduced new themes and genres in Sanskrit literature. The stream of pride is reflected in the stories of Paṇḍita Kṣamā Rāv. These stories which enhance the pride of the nation are described using Anuṣṭup verses in Kathāpañcakam. Some of the narratives in her stories in her prose stories relate to the prevailing social circumstances and some depict the plight and tragedy of women stricken by the social stereotypes or the exploited class. Most of her stories are sober. Some others have their themes based on the independence struggle. The stories written by Kṣamā Rāv based on the prevailing social environment prove to be good examples for modern short stories. It contains a variety of themes and the style of writing is pure and beautiful. Paṇḍita Kṣamā Rāv was awarded the title "Saraswati Chandrika" in 1942.

ŚRĪJÑĀNEŚVARACARITAM

This is a Mahākāvya or an epic poem based on the life and teachings of the Maratha Saint Jñāneśvara, 13th century poet, philosopher and Yogi of the Nāth Vaiṣṇava tradition. This work opened up a new way of composing epic poems having Sants as the hero, apart from the conventional types of heroes. The work comprises of eight cantos. Saint Jñāneśvara worked against the evil practices and prevailing violence in the society. His pursuits regarding the same are depicted in the work. The work emphasis on the importance of Vedantic - way of renunciation and encourages the readers to renounce enjoyments.

ŚAṄKARAJĪVANĀKHYĀNAM

This is a biographical work based on the life of Paṇḍit Śaṅkar Pāṇḍuraṅga, the father of Paṇḍita Kṣamā Rāv. This work contains 17 chapters called 'Ullasa'. The following titles of each Ullāsa depict each of the episodes in the life of

Paṇḍit Śaṅkar Pāṇḍuraṅga -

- Bālyavarṇanam
  Lokasaṅkaṭanivāraṇam
- Vidyārambhavarṇanam
  Śankaraprakṛtivarṇanam
- Vidyābhyāsaḥ
Rajaprakopasamutyāpanam
- Vidyāsamāptivarṇanam
  Cintāsantānavarṇanam
- Kāvyasaṁśodhanam
  Śyāmalagirinivāsaḥ
- Śrutipraśaṁsanam
  Vyākhyānavilāsaḥ
- Dvitīyapāṇigrahaṇam
  Samājapariṣkaraṇam
- Pracīnalekhagaveṣaṇam
  Sudhāmapurinivasaḥ
- Dīpanirvāṇam

In the preface of the work, Sri Nrisimh Kelkar made a poignant remark that it was Paṇḍita Kṣamā Rāv, who introduced the new genre of biography to

Sanskrit Literature.

RĀMADĀSACARITAM

This work in thirteen cantos is based on the life of Samartha Rāmadāsa, the Hindu saint and poet. The first canto describes the birth of Saint Rāmadāsa, born as Gaṅgādhara, the son of Sūryājipant and Reṇūdevī. Saint Rāmadāsa here is portrayed as an incarnation of Lord Hanumān. The brilliant future that is ahead of him is also predicted. The second canto tells about his childhood exploits, rest of boyhood and youth and finally the death of Sūryājipant. The third canto depicts the never - ending wish for acquiring knowledge, the appearance of Hanumān, who enlightens Rāmadāsa, his gradual detachment towards worldly affairs and marriage etc. Fourth canto tells about the persuasion of Rāmadāsa's brother to Reṇūdevī to let him opt out of marriage. It also tells how Rāmadāsa's mind was occupied with the episodes of the great epic Rāmayana, in

which, Hanumān was the character who influenced him the most. This is followed by his mother's persuasion for marriage and Rāmadāsa cleverly escaping from the marriage arranged by his mother, due to his passion for Lord Rāma. The fifth canto tells his visit to Pañcavaṭī and shrines of Lord Rāma, the fierce penance, upon which Lord Rāma appeared and blessed him. It was from then he came to be known as Samartha Rāmadāsa. The miracles of enlivening a dead man from the funeral pyre and adoption of the same person's new born son are too described. The son Uddhava was under the tutelage of Saint Rāmadāsa. The sixth canto tells Lord Rāma and Hanumān appearing before him and advising to assist Śivājī and the following Rāmanavamī celebrations, at the end of which again both the deities appear and direct him to propagate Bhakti. Knowing the social conflicts that were prevalent, Rāmadāsa resolved to re - establish his faith everywhere. The seventh canto tells his visit to the famous Viśveśvara shrine in Kāśī, where he was stopped by the priests, by mistaking him to be a Mleccha, which caused afterwards, the disappearance of the Liṅga. The priests realizing their mistake called back the Saint with reverence, after which the Liṅga re - appeared in its original position. This canto also tells about his pilgrimage to Ayodhyā, Mathura, Prabhas, Brndaraka, Vrndavana, Dvaraka, Kedarnath, Badri, Himalayas, Manasarovara, Puri, Ramesvaram and return to Pañcavaṭī after twelve years. His meeting with Guru Nanak is also detailed. The eighth canto tells about Rāmadāsa's mother's lamentation on deathbed, for not seeing his son for twenty-four years and about the resurrection of a bird. The ninth canto speaks of his visit to paternal home, where his mother becomes happy at the arrival of her son. Later in tenth canto, Lord Rāma appears before Sant and directs him to visit the banks of Kṛṣṇā, Godāvarī, Mahabaleśvar etc. and assist Śivājī in procuring sovereignty. It also in length dwells about him meeting Sant Tukarāma and installation of Lord Rāma's idol in a temple. The eleventh canto depicts Sant Rāmadāsa accepting Śivājī as his disciple. The twelfth canto tells about the victory of Śivājī and Rāmadāsa refusing him to accompany, citing the duty of a king, after which, Śivājī ruled his Maratha Kingdom. The last canto tells about accounts of bravery and further victory of Śivājī and finally his death, upon which Sant Rāmadāsa was grief stricken and finally after six months, his attainment of the heavenly abode of Lord Hanumān.

TUKARĀMACARITAM

This is a Mahakavya in nine cantos. It depicts the life of

Sant Tukarāma, the great saint poet of Maharashtra. His teachings have established permanent supremacy over the common man in Maharashtra and find a great place in the work. Some of the lines are reminiscent of well-known Sanskrit verses.

The first canto tells about the story of Viśvaṁbhara, who was Tukarāma's ancestor and the propritiation of Lord Viṣṇu by penance. The second canto tells of the birth of Tukarāma, his naming ceremony and marriage. His profession as a trader, financial loss in the same and envision of the divine Viṣṇu are too depicted here. Tukarāma is said to be obsessed in the worship of Lord Hari from then, which makes him negligent towards the unpaid debts. It is followed by the depiction of Tukarāma's renunciation by leaving his family stranded, wife's reproaches, Tukarāma agreeing to trade as per his wife's request, and the unfortunate incident of being cheated in trade by people, which adds to Tukarāma's financial burden. Seeing his pathetic state, the villagers mock him by adorning onion - garland and mounting him upon a donkey. The fourth canto speaks of the famine struck in Tukarāma's village, distress of his family, death of his wife and son etc. This canto also contains the miraculous happening where Tukarāma, being negligent in looking after a field from birds become the cause of destruction of the crops, which was replaced with three times more quantity of crop, which is clearly a miracle devised by the lord. Fifth canto tells about the construction of Lord Viṣṇu's temple, Tukarāma's wife's disinterest towards his actions, miracles made by the lord in his wife's life and other helpful deeds by Sant. Sixth canto tells of Tukarāma having a meal with Lord Viṣṇu, who appeared in his dream where he was directed to complete the work of Nāmadeva. He completed the work in the Abhaṅga meter, which was later popular as "Abhaṅga hymn". Also, Tukarāma's encounter with a Brahmin called Cintāmaṇi is depicted. The seventh canto contains Tukarāma's encounter with another Brahmin named Deshpande. The eighth canto deals again with his meeting with another Brahmin called Mumbaji and Śivājī. The work ends with the ninth canto depicting Śivājī's miraculous escape from a Muslim enemy with Tukarāma's assistance, Tukarāma's Vaiṣṇavaite philosophy and his final attainment of the lord's abode.

MĪRĀLAHARĪ

This is a Khaṇḍakāvya published in 1944 that deals with the life of medieval Indian Saint Poetess Mirabai.

SATYĀGRAHAGĪTĀ

There are several disputes among scholars whether to regard this work as a Mahākāvya. Although the plot of Satyāgrahagītā makes it fit into the category of Mahākāvya. Satyāgrahagītā is a historical Mahākāvya in eighteen chapters called 'Adhyāya', dealing with the life and philosophy of Mahatma Gandhi and his pursuits in the Indian Independence Movement. All these are detailed in the work beautifully using Anuṣṭup verses.

UTTARASATYĀGRAHAGĪTĀ

This is a Mahākāvya which serves as a sequel to the much popular Satyāgrahagītā, as the title suggests. It tells about the life and philosophy of Mahatma Gandhi in verses. The work was published in 1932 in Paris.

SVARĀJYAVIJAYAḤ

This work comprises of fifty chapters depicting the entire episode of Indian Independence struggle, emphasizing on Mahatma Gandhi's pursuits in attaining the same. The work begins with the depiction of Non- Cooperation movement initiated by Gandhiji and ends with the depiction of Gandhiji's assassination.

KAṬUVIPĀKAḤ

Published in 1955, this is a drāma which handles one of those tragic happenings common during the Satyagraha days when the son or daughter joins the movement, breaks up the home and parents' hearts, or in the violence of the police, sacrifices his/her life.

MAHĀŚMAŚĀNAM

This is a drāma which is written with skill and power in one act and three short scenes. It was published in the Kaumudi. This tragedy presents the streets of Calcutta at the time of the partition, strewn with corpses, a village of five hundred reduced to five and a Muslim tailor's family faced with the alternative of dying by starvation or by taking gruel made of what has been obtained as rice in the black market, a mouthful of which kills the only surviving daughter.

KATHĀMUKTĀVALĪ

Published in 1954, Kathāmuktāvalī is a collection of fifteen

short stories on modern themes in simple and elegant prose, reflecting the life of presentday India. The titles of the stories are - Premarasodrekaḥ, Tāpasasya pāritoṣikam, Parityaktā, Mithyāgrahaṇam, Vṛttaśaṃsicchatram, Haimasamādhiḥ, Māyājālam, Svāpnikavyāmohaḥ, Najamadilelaḥ, Vidhavodvāhasaṃkaṭam, Kṣaṇikavibhramaḥ, Niśīthavaliḥ, Matsyajīvaiva kevalam, Ātmanirvāsanam and Śāraddalam.

It is a distinct and unique contribution to Sanskrit Literature. The short story genre is perhaps introduced by Paṇḍita Kṣamā Rāv, deals with living problems, seeks to throw light on a heightened emotion or a drāmatic situation and tries to reflect the conditions of the society. The stories deal with the life of simple ordinary folk in different parts of India like Bombay, Kashmir, Mahabaleswar, Mt. Abu etc. The place descriptions are highly enchanting, especially the areas of Kashmir, Abu etc, which are in melodious, poetical prose, sensitive and simple with an elegance of diction. The dialogues are natural and the characterization effective. The deep sense of patriotism runs throughout.

Most of the stories have a tragic end. For instance, in the story Haimasamādhi, the union of lovers is achieved by their joint death. Matsyajivaiva Kevalam tells the story of a mother identifying her son who got separated and turned to an ascetic. The story Māyājālam tells the lives of four women who were abandoned by their husbands/lovers. Premarasodreka speaks of a father yearning to see his son.

KATHĀPAÑCAKAM

It is a collection of five short stories in metrical form (Anuṣṭup metre), published in 1963. The stories within this collection mainly reflect upon the prevailing social evils surrounding women and the miserable lives of helpless and abandoned women.

GRĀMAJYOTIḤ

This is a collection of three stories of Gujarat villages during the civil disobedience days in verse - form.

VICITRAPARIṢADYĀTRĀ

This work deals with the oriental languages conference and Kṣamā Rāv's visit to Thiruvanantapuram. The importance of Sanskrit language is highlighted through the following verses –

"संस्कृताधीतिनः सन्तु सर्वे भारतभूमिजाः ।
संस्कृतेनैव कुर्वन्तु व्यवहारं परस्परम् ।।

संस्कृतज्ञानमासाद्य संस्कृताचारवृत्तयः ।
सर्वतः संस्कृतीभूय सुखिनः सन्तु सर्वदा ।।"

CONCLUSION

Paṇḍita Kṣamā Rāv is the greatest of the poetesses in Sanskrit. Her contributions to literature as well as the society are worth appreciating. The major themes of her works include societal problems, independence struggle and atrocities against women during her times. We come to know all these through the powerful writings of Paṇḍita Kṣamā, the importance of nationalism, patriotism and women empowerment. Most of her works have tragic ending, melancholy being reflected throughout. She is perhaps the first person to introduce the genre of biography to Sanskrit Literature. The biographical works are based on the lives of the Sants of Maharashtra, where the sentiment of Bhakti is evident. Her force of diction and style of composing poems too deserve a great place in Sanskrit literature. In short, her works fit into the set of works that are regarded as "modern writngs".

REFERENCES

1. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.313065/mode/2up
2. https://archive.org/details/KRI75ShriTukaramCharitamSanskritWithEng Translation1950PanditKshamaRow/mode/2up
3. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.313066/mode/2up
4. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.406167/mode/2up
5. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.242086/mode/2up
6. https://archive.org/details/in.ernet.dli.2015.406155
7. https://sanskritbhasi.blogspot.com/2019/06/2019.html
8. https://sanskritdocuments.org/articles/Sanskrit_Literature_by_V_Raghav an_1959_From_Contemporary_Indian_Literature.pdf
9. https://www.loksatta.com/anwat-aksharvata-news/sanskrit-writer-panditakshama-rao-1471744/
10. https://timesofindia.indiatimes.com/city/ahmedabad/Sanskrit-epiccatalogues-Gandhis-life/articleshow/1824684596.cms
11. https://sa.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%95%E0%A5%8D%E0%A4%B7 %E0%A4%AE%E0%A4%BE_%E0%A4%B0%E0%A4%BE%E0%A4 %B5

अर्वाचीन संस्कृत नाटकों में नारी शक्ति का अवदान

डा0 नीलम
विभागाध्यक्ष (संस्कृत विभाग)
बी0डी0एम0 म्यू0 कन्या स्नातकोत्तर महाविद्यालय
शिकोहाबाद जिला फिरोजाबाद।

साहित्य समाज का दर्पण है और समाज साहित्य की कृति है दोनों का अन्योऽन्याश्रय सम्बन्ध है। समाज कविवाणी द्वारा उन्मीलित प्रेम, आशा, दया तथा औदार्य के प्ररोह का उर्वर क्षेत्र है। विश्व साहित्य का इतिहास इस तथ्य का साक्षी है कि शोभन साहित्य सुन्दर समाज की रचना में कृतकार्य होता है तथा औदार्यपूर्ण समाज सत्साहित्य की प्रेरणा का विमल परिणाम होता है। साहित्य आत्म चैतन्य को प्रबुद्ध कर उसे बलवान बनाता है, ओजस्विता से मण्डित करता है तथा उसमें सामर्थ्य शक्ति का उन्मीलन करता है। साहित्य के सभी प्रकारों में रूपक या नाट्य श्रेष्ठ माना गया है। इसकी रचना को कवित्व की अंतिम सीमा कहा जाता है- ''नाटकान्तं कवित्वम्''। वामन ने काव्यालंकार सूत्र में भी कहा है- सन्दर्भेषु दषरूपकं श्रेयः, (1) कारण यह है कि यह चित्रपट के समान अनेक विषिष्टताओं से युक्त है इतनी विषिष्टताएं अन्य काव्यभेदों में नहीं होती अतः अहृदयों को सहृदय बनाने की भरपूर क्षमता नाटक में ही होती है इसलिए संस्कृत के आचार्यों ने काव्यों में नाटक को ही रमणीय बताया है - ''काव्येषु नाटकं रम्यम्।'' यह बात अनेक दृष्टियों से चरितार्थ है - जीवन की सत्यता की अनुभव की दृष्टि से, रसविधान से स्निग्ध होने की दृष्टि से और रसास्वादन की क्षमता की दृष्टि से देखने पर हम निःसंकोच कह सकते हैं कि समग्र काव्य प्रभेदों में रूपक सर्वथा अभिराम, हृदयंगम तथा रमणीय होता है। इसलिए कविकुलगुरू

कालिदास की यह उक्ति प्रषस्ति न होकर तथ्योक्ति है कि कोई व्यक्ति किसी भी रुचि का क्यों न हो, उसे अपना अनुकूल विषय नाट्य-जगत् में अवष्य मिल जाएगा - ''नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।(2) भरतमुनि ने इसी तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए अपने नाट्यशास्त्र में लिखा है -

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला।

नासौ योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृष्यते।।(3)

संस्कृत नाटक की अनेक विषिष्टतायें इसे पश्चिमी साहित्य के नाटकों से स्पष्ट रूप से पृथक् करती हैं। एशिया के नाटकों पर, बृहत्तर भारत, जावा तथा सुमात्रा आदि देशों के नाटकों के ऊपर भी भारतीय नाटकों की अमिट छाप पड़ी है इसे अब प्रमाणों से पुष्ट करने की आवश्यकता नहीं है। जावा का छायानाटक (वयंग) संस्कृत के छायानाटकों की छाया लेकर पुष्ट तथा समृद्ध हुआ है। भारतीय संस्कृति के प्रचार के साथ ही साथ भारतीय नाटकों का, कथाओं का तथा जातीय महाकाव्यों का भी प्रचार इन देशों में संपन्न हुआ। इसका सुंदर परिणाम यह है कि संस्कृत के नाट्यशास्त्र का अनुसरण केवल संस्कृत भाषा के नाटकों में ही नहीं होता, प्रत्युत इन पूर्वीय देशों के नाटकों की रचना भी उसका अनुसरण बहषः करती हैं। नाटक की इन्हीं विषेषताओं को इंगित करते हुए पाश्चात्य विचारकों ने भी अपने विचार प्रस्तुत किए हैं। पाश्चात्य साहित्य शास्त्री अरस्तु का मानना है कि -

Tragedy is primarily imitation of Action.(4)

दार्शनिक सिसरो का कथन है कि - Drama is a copy of life, a mirror of custom, a reflection of Truth.(5)

विक्टर ह्यूगो के अनुसार Drama is a mirror in which nature is reflected.(6)

भारतीय संस्कृति में नारी का गौरवपूर्ण स्थान रहा है और साहित्य ने नारी की कभी भी उपेक्षा नहीं की है। प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक साहित्यकारों ने समाज में नारी की परिवर्तित स्थिति पर दृष्टि रखते हुए उसका साहित्य में अंकन किया है। हमारी प्राचीन साहित्यिक परम्परा पाँच हजार वर्षों से भी पूर्व संस्कृत भाषा में लिखे गए वैदिक ग्रंथों से आरम्भ होती है। वैदिक साहित्य में जहाँ एक तरफ समाज में स्त्रियों के सम्मानजनक स्थान की बात कही गई हैं वहीं दूसरी तरफ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक व साहित्यिक क्रिया-कलापों मे भी स्त्रियों द्वारा पुरुषों के समकक्ष सक्रिय भागीदारी निभाने का उल्लेख प्राप्य है। (7) यहां यह वेदोक्त उद्घोष दृष्टव्य है जिसमें माता-पिता परमेष्वर से यह प्रार्थना किया करते थे कि उनकी पुत्री पंडिता अथवा ब्रह्मवादिनी बनकर साहित्यिक गतिविधियों में अपना योगदान दे -

अथ य इच्छेद् दुहिता मे पंडिता जायते सर्व मायुरियादिति।

तिलौदन पाचयित्वा सर्पिष्मंतं अश्नयातां इष्वरों जनयितवै।।(8)

आज वैश्विक परिदृश्य में जहां नारी पुरुषों के समकक्ष खड़ी होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत हैं। वहीं भारतीय समाज और साहित्य में भी स्त्री-विमर्श एक आंदोलन का रूप ले चुका हैं। आज सरकारें भी जब नारी सशक्तिकरण और नारी कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम व योजनाएं संचालित कर रही हैं नारी हित में अनेक नए कानूनों को लागू करने का प्रयास कर रही हैं। वहां यह जानना रोचक होगा कि हमारे प्राचीन व अर्वाचीन साहित्य में भी अपनी स्वतंत्रता एवं अधिकारों के लिए अपनी प्रतिभा व योग्यता का लोहा मनवाने वाली स्त्रियों के रूप में स्त्री चेतना की अनेक छवियां संस्कृत साहित्य में उपस्थित हैं।

आधुनिक संस्कृत-साहित्य एवं साहित्य की हर विधा जैसे

कहानी, उपन्यास, कथा, काव्य ललितकला, नाटक आदि में महिलाओं ने अपना अतुलनीय योगदान दिया है। स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1950 ई0 से सन् 1960 ई0 तक के महिला नाटककारों पर दृष्टिपात करें तो संस्कृत के अतिरिक्त बंगाली, अंग्रेजी, जर्मनी व फ्रेंच भाषा का सम्यक् ज्ञान रखने वाली डा0 रत्ना बसु का नाम अग्रगण्य हैं । 7 सितम्बर 1951 को बंगाल मे जन्मी डा0 रत्ना बसु द्वारा दूतवाक्यम् एंव मालविकाग्निमित्रम् नाटक का सम्पादन किया गया है। 19 जुलाई 1952 ई0 को कलकत्ता में जन्मी डा0 रीता चट्टोपाध्याय द्वारा आधुनिक संस्कृत नाटक का सम्पादन किया गया। विद्यावाचस्पति, साहित्य महोपाध्याय, काव्यश्री, साहित्य सरस्वती सम्मान से सम्मानित आधुनिक संस्कृत साहित्य की सुप्रसिद्ध कवियत्री डा0 मिथलेष का जन्म 1 दिसम्बर 1953 को हुआ था। कवयित्री डा0 मिथलेष मिश्रा की संस्कृत अत्यंत सरल तथा सानुप्रासिक है, जिसमें सर्वत्र प्रसाद एवं माधुर्यगुण पाया जाता है। शब्द योजना तथा पद संरचना भावाभिव्यक्ति के अनुरूप दृष्टिगत होती है। काव्यरीति के अंतर्गत समग्रगुणा वैदभी का ही कवयित्री ने कुषलतापूर्वक अपने काव्य में प्रयोग किया है जिसकी प्रसादिकता, माधुर्य एवं लालित्य इनके काव्य में परिलक्षित होती है। रचनाओं पर दृष्टिपात करें तो पांच अंकों की संस्कृत नाटिका आम्रपालि, तुलसीदासः, दस एकांकियों का एक संग्रह-दषमस्त्वमसि रूपक उल्लेखनीय है। कवयित्री के नाटकों में अनुष्टुप् छन्द की अधिकता है, इसके अतिरिक्त वसन्ततिलका, षिखरिणी, मालिनी आदि छन्दों का भी प्रयोग प्राप्य है-

यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च।
यावच्च यत्र च शुभाषुभमात्मकर्म।।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च।
तावच्च तत्र च विधातृवषादुपैति।।(9)

डॉ. मिश्रा सुन्दर प्रभावपूर्ण रस-निष्पत्ति प्रस्तुत करने में सिद्धहस्त हैं। इनके आम्रपाली नाटक में शान्त रस है। अलक्ष्यं दूरदरदर्षनम् उच्चासन विकल्पनाफलम्, दषमस्त्वमसि तथा ज्ञानेन हीनाः पषुभिस्समानाः में हास्य रस है। माता भूमिः पुत्रोऽहंपृथिव्याः, सत्यमेव जयते में वीर रस है। चराचरस चित कर्मयन्त्रितम्, भक्तराज तथा सचाप्यस्तिरजकः में भक्ति रस है। इनके नाटकों में अभिनेयता अपनी पूर्णमात्रा में विद्यमान है- भवतसुतोऽमद्य विद्यालयं परित्यज्य महात्मनो गान्धिमहोदयस्याह्वानं मवधार्य भारतस्य स्वराज्यभियाने तत्परोऽभवम्।।(10) इनका प्रकृति चित्रण भी अपने आप में असाधारण है। यथा - 'नं मुनि पुनरायातो न चासौ वर्धते गिरि' नाटक में सूर्योदय का वर्णन और माताभूमि पुत्रोऽहं पृथिव्याः में गया दुहती नायिका का वर्णन है।

10 जून सन् 1955 ई0 में लखनऊ प्रांत में पैदा हुई समकालीन संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने वाली संस्कृत कवयित्रियों में डॉ. नवलता वर्मा का भी उल्लेखनीय स्थान है। सात अंकों का शंकराचार्य वैभवम् एकांकी इनकी प्रसिद्ध रचना है। डॉ. नवलता का नाटक शब्दसौष्ठव, भाषा के माधुर्य तथा छन्दों के नाद सौंदर्य के कारण अत्यन्त सरस, रोचक एवं मनोहर है। प्रकृति उनके काव्य में आकर सजीव चेतन सत्ता बन गई है। अलंकारों के रुचिर प्रयोग में डॉ. नवलता अत्यन्त निपुण है।

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीरांगना यत्र गिरं गिरन्ति।

द्वारस्थनीड़ान्तरसन्निरूद्धा जानीहि तन्मण्डनमिश्र गेहम्।।(11)

16 जनवरी सन् 1958 ई0 को उड़ीसा में जन्मी डॉ. कादम्बिनीदाष द्वारा चारूदत्त का सम्पादन किया गया है। एटा जनपदस्थ अलीगंज ग्रामवासी डॉ. राका जैन का जन्म 15 जनवरी सन् 1960 ई0 में हुआ था। एत्त्रयैकम् इनका प्रसिद्ध नाटक संग्रह

है। डॉ. शर्मिला बागची का जन्म 6 अगस्त सन् 1960 ई0 का झाँसी में हुआ था। इनके द्वारा संस्कृत ग्रन्थों में एकालाप व नरकासुर विजय व्यायोग का प्रणयन किया गया है।

सन् 1961 ई0 से सन् 1970 ई0 तक के महिला नाटकाकारों पर नजर डालें तो 15 अक्टूबर 1964 ई0 को उ0प्र0 के जालौन जिले में पैदा हुई डॉ. मीरा द्विवेदी का नाम आदर के साथ लिया जाता है। ''काश्मीर क्रन्दनम्'' (एकांकी संग्रह) इनकी प्रसिद्ध रचना है। इनकी भाषा अत्यन्त सरस, सरल तथा सुमधुर है। अपने नाटकों के कथावस्तु के चयन तथा उन्हें नाटकीय परम्परा के अनुसार सजाने में डॉ. मीरा द्विवेदी अद्वितीय है - ''रे कुरूते में मनः क्रन्दनम्।''(12)

एक अन्य कवयित्री डॉ. आभा झा का जन्म 15 मई सन् 1966 को बिहार में हुआ। इनकी प्रसिद्ध नाट्यकृतियां स्वतन्त्र्योत्तर स्वर्ण सौरभम् व प्रश्नचिन्ह संस्कृत लघुनाट्यचयः हैं। कवयित्री ने विभिन्न कथानाकों को अपनी मौलिक सूझ-बूझ के साथ प्रस्तुत किया है। डॉ. झा ने अपने नाटकों में कृत्रिमता को आने नहीं दिया है तथा भाषा एवं विषय का स्वाभाविक माधुर्य उसे अपनी ओर आकृष्ट किये बिना नहीं रह सकता-

प्रज्ञा - माताः प्रणमामि

माता - आयुष्मती भव।

प्रज्ञा - माताः अत्र सर्वं कुषलमस्ति?

माता - त्वं किं चिन्तयसि(13)

अभिनेयता की दृष्टि से भी डॉ. झा के नाटक अत्यंत महत्व रखते हैं। उन्होंने अभिनय को दृष्टि में रखते हुए लघुकलेवर वाले नाटकों का प्रणयन किया है। डॉ. आभा झा ने अपनी कविता कामिनी को सजाने के लिए समुचित अलंकारों व रस का प्रयोग

किया है।

सन् 1971 ई0 से सन् 1980 ई0 तक के महिला नाटककारों में डॉ. संगीता गुन्देचा का महत्वपूर्ण स्थान है। 1 अप्रैल सन् 1974 ई0 को उज्जैन में आपका जन्म हुआ। इनकी प्रसिद्ध रचनाएं - नाट्य दर्षन, समकालीन रंगकर्म में नाट्यशास्त्र की उपस्थिति, भास का रंगमंच, कावालम नारायण पणिक्कर परम्परा और समकालीनता उदाहरण काव्य-तनाव, मटमैली स्मृति में प्रषांत समुद्र, प्रसिद्ध जापानी कवि शुन्तारो की कविताओं का अंग्रेजी से हिंदी अनुवाद है।

साथ ही दिल्ली संस्कृत अकादमी से प्रकाशित लघुनाट्यचयः, संस्कृत नाट्य कौमुदी, संस्कृत लघुनाटक संग्रह में प्रकाशित डॉ. मीरा द्विवेदी की रचनाएं निदानम्, संस्कृत विरामः, डॉ. उर्वी की रचनाएं दीपकः, कुलदीपकः वृक्षसंवेदनम्, डॉ. अन्जूबाला की कृति पर्यावरण चैतन्यम्, डॉ. लता विग की क्षम्यताम् अध्यापक, डॉ. राजकुमारी त्रिखा की जीवन्भद्राणि पश्यति, डॉ. इन्दु मल्होत्रा की काव्य रचना यथा अर्जितं धनं तथैव बुद्धिः, श्रीमती मीनूबाला की रचना हृदय परिवर्तनम्, डॉ. शान्ता चट्टोपाध्याय की कृति उज्जीवयन्तु भारतम् तथा डॉ. उमादेष पाण्डेय की काव्यरचना नारी नारायणीमता संस्कृत साहित्य में महिलाओं के उत्कृष्ट प्रदर्शन को परिलक्षित करती हैं।

वस्तुतः वैदिक साहित्य से लेकर परवर्ती लौकिक साहित्य और आधुनिक संस्कृत साहित्य के व्यापक इतिहास में महिला रचनाकारों की एक समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। वैदिक काल से लेकर आज तक सामाजिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की सहभागिता भी पुरूषों के समकक्ष रही है, जैसा कि किसी कवि ने कहा है-

‘‘योषिता वै विकासं बिना कल्पना।

लोकयात्राऽपि चाऽऽकाषसूनं यथा।।

कवियों की तरह कवयित्रियों ने भी प्रत्येक काल खण्ड में अपनी रचनाओं द्वारा संस्कृत साहित्य में श्रीवृद्धि की है, जिनकी रचनायें संख्यात्मक व गुणात्मक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। इन महिला रचनाकारों ने जीवन के बदलते संदर्भों एवं आवश्यकता के अनुरूप ही साहित्य का सृजन किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्य में महिला रचनाकारों ने उच्च एवं विशिष्ट स्थान प्राप्त करते हुए अपने गौरवमय स्वरूप का अंकन किया है लेकिन आज के युग में जब संवैधानिक रूप से स्त्री को काफी हद तक पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त हो गए हैं तो आवश्यकता है नए संदर्भ में नारीत्व को नए सिरे से परिभाषित करने की। नारीत्व जिसका अपना पृथक् अस्तित्व, गौरव, स्वाभिमान, सार्थकता व अपनी उपयोगिता हो तथा वह पुरुष का पूरक व उसकी प्रेरणा हो। आने वाले समय में महिलाओं के जीवन में नए अभूतपूर्व अवसरों की संभावना है लेकिन इसके लिए आवश्यकता है कि इनकी सहभागिता और भूमिका को अधिक बढ़ाने की।

संदर्भ-सूची

1. काव्यालंकार सूत्र - 1/3/30

2. मालविकाग्निमित्र - 1/4

3. नाट्यशास्त्र - 1/117

4. काव्यशास्त्र, डॉ. भागीरथ मिश्र, पृ. सं. 99

5. काव्यशास्त्र, डॉ. भागीरथ मिश्र, पृ. सं. 99

6. काव्यशास्त्र, डॉ. भागीरथ मिश्र, पृ. सं. 99

7. भारतीय स्त्रीः सांस्कृतिक संदर्भ, प्रतिभा जैन, संगीता शर्मा, रावत पब्लिकेषन, नई दिल्ली

1998, पृ. 225

8. बृहदारण्यकोपनिषद् 6.4.17
9. आम्रपाली (संस्कृत नाटक) मिथिलेष कुमारी मिश्रा पृ. 19
10. माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः डॉ. मिथिलेष कुमारी पृ. 38-39
11. शंकराचार्यवैभवम्, एकांकी
12. काश्मीर क्रन्दनम् (एकांकी संग्रह) पृ. 56
13. प्रष्नचिन्हः? डॉ. आभा झा पृ. 45

ब्रह्मवादिनी गार्गीः दार्षनिक चिंतन

प्रियंका रस्तोगी

षोधच्छात्रा

वनस्थली विद्यापीठ, राजस्थान

भारतीय संस्कृति में दार्शनिक चिन्तन और विचार का महत्वपूर्ण स्थान है। दार्शनिक चिन्तन से न केवल विज्ञान और तात्त्विकता का संज्ञान होता है अपितु मनुष्य को जीवन के अर्थ और उद्देश्य का बोध होता है। इसी प्रणाली के प्रयोक्ता वैदिककालीन तत्वद्रष्टा दार्शनिकों ने जीवन और सृष्टि के रहस्यों का अन्वेषण कर परब्रह्म का दर्शन किया। उसी परब्रह्म की ज्ञाता ब्रह्मवादिनीयों में से एक है– ऋषिका गार्गी। ऋषिका गार्गी का याज्ञवल्क्य के साथ गहन दार्शनिक संवाद बृहदारण्यक उपनिषद् में उल्लेखित हैं। जिसमें गार्गी अतुल्य ज्ञान बुद्धि और दार्शनिक कौशल के प्रतीक के रूप में प्रतिबिम्बित होती है। इसी अनुक्रम में गार्गी के दार्षनिक दृष्टिकोण (जीवन के उद्देष्य, ब्रह्म, आत्मा और अन्य तात्विक विषय) एवं तत्कालीन समाज में उनकी स्थिति को इस शोध–पत्र में देखने का प्रयास किया गया है।

किसी भी राष्ट्र की उन्नत संस्कृति और उदात्त जीवनमूल्यों की आधारषिला उस देष की षिक्षा व्यवस्था होती है, क्योंकि शिक्षा ही उन विद्याओं या ज्ञानराशियों का स्रोत होती है, जो व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करती हैं। मानव व्यक्तित्व का समग्र विकास, अन्तर्निहित क्षमताओं और षक्तियों का उन्मीलन, अज्ञान के गहन अन्धकार को दूर कर ज्ञानालोक की सृष्टि, मानव को अन्य जीव से पृथक् कर वास्तविक रूप में मानव बनाने की क्षमता शिक्षा में ही निहित होती हैं। अतः शिक्षा को चिरन्तन काल से ही सन्तान को जन्म देने वाले माता–पिता के साथ ही समाज और राष्ट्र का एक अनिवार्य, पवित्र और नैतिक दायित्व माना गया है। अनेकत्र कहा जाता है कि स्त्रियाँ वेदाध्ययन की अधिकारिणी नहीं है। परन्तु जब वे स्वयं वेद के मन्त्रों की दृष्टा के रूप में द्योतित है, तो उनके वेदाध्ययन करने से किस प्रकार निषेध किया जा सकता

है? वैदिक काल में माता–पिता के द्वारा पण्डिता कन्या की प्राप्ति हेतु संस्कार में विशेष नियमों का विधान किया गया है।[1] पिता के द्वारा पुत्र–पुत्रियों की प्रसन्नता हेतु मन्त्र का सस्वर पाठ करने का विवरण भी *आपस्तम्ब गृह्यसूत्र* में प्राप्त होता है।[2]

ज्ञानरूपी नेत्र या आलोक को प्राप्त करने की तीव्र अभिलाषा वैदिक मन्त्रों में सर्वत्र अभिव्यक्त होती है।[3] वैदिक संहिताओं में सरस्वती के रूप में अनेकत्र विदुषी स्त्री का स्मरण करते हुये उससे अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्मों द्वारा समाज में सद्गुणों एवं सत्कर्मों की शिक्षा देने की प्रार्थना की गई हैं।[4] साथ ही विदुषी स्त्री के द्वारा सब स्त्रियों को सुशिक्षित करने की प्रार्थना की गई है, जिसके फलस्वरूप स्त्रियों में विद्या की वृद्धि हों। वहाँ वर्णित किया गया है– 'जैसे वाणी उत्तम ज्ञान से आकाश में स्थित शब्दरूप समुद्र को उत्तम प्रकार से अभिव्यक्त करती हुई सब बुद्धियों को विभिन्न प्रकार से प्रकाशित करती है, वैसे तुम विद्याओं में प्रवृत्त हों।'[5] अर्थात् कन्याओं के लिए ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए विद्या एवं सुशिक्षा को समग्र रूप से ग्रहण करके अपनी बुद्धि का विस्तार करने का विधान किया गया है।

शौनक के द्वारा स्त्री ऋषियों को मुनि, ब्रह्मवादिनी[6] एवं ऋषि पद से अभिहित किया गया है।[7] सायण ने भी इन्हें ऋषि, दृष्टि

---

1 अथ य इच्छेद दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्वंमायुरियादिति, तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमष्नीयातामीष्वरौ जनयितवै। *बृहदारण्यकोपनिषद्* 6.4.17

2 आपस्तम्ब गृह्यसूत्र 15.12.3

3 चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि– यजुर्वेद 4.3
विष्वं ज्योतिर्यच्छ– यजुर्वेद 15.58

4 पावका नः सरस्वती वाजेभिर् वाजिनीवती। यज्ञं वष्टु धियावसुः। यजुर्वेद 20.84

5 चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।
महोऽअर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना। धियो विष्वा वि राजति। यजुर्वेद 20.85–86

6 ऋग्वेद 8.51

7 पौलोमी षची नाम मुनिः स्मृतः। आर्षानुक्रमणी 10.82
रात्रि सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः। बृहद्देवता 2.84
उत्तमस्य तु वर्गस्य य ऋषिः सैव देवता। बृहद्देवता 2.86

एवं ब्रह्मवादिनी कहा है।[1] ब्रह्मवादिनी से तात्पर्य है ब्रह्म के विषय में बोलने वाली स्त्री। ब्रह्मवादिनी संज्ञा पद उन स्त्रियों के लिए प्रयुक्त किया गया है, जिन्हें आजीवन ब्रह्मचर्य में रहते हुए उपनयन, अग्न्याधान, विद्याध्ययन एवं भैक्षचर्या का अधिकार प्राप्त हो। *यम स्मृति* में कन्या के मौंजीबन्धन, उपनयन, विद्याध्ययन, और सावित्रीवाचन करने का उल्लेख मिलता है।

ब्रह्मवादिनियों में वचक्नु की पुत्री वाचक्नवी गार्गी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे एक महिला द्रष्टा के रूप में प्रतिबिम्बित है, जो अपने अनुकरणीय, बौद्धिक ज्ञान और सर्वोच्चता के लिए जानी जाती है। ब्रह्मविद्या का ज्ञान होने के कारण उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा गया है। जबकि गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने के कारण गार्गी कहलायी। परम ज्ञानी वचक्नु ऋषि की पुत्री पितृ परम्परा से ही विविध शास्त्रों में ज्ञान सम्पन्ना है। बृहदारण्यकोपनिषद् में वर्णित याज्ञवल्क्य–गार्गी संवाद से उनके तत्वमींमासा विषयक ज्ञान का बोध होता है। तत्वमींमासा दर्शनशास्त्र की वह षाखा है, जो ब्रह्माण्ड के परम तत्व (ब्रह्म) की खोज करते हुये उसके परम स्वरूप का विवेचन करती है। इसका प्रमुख विषय वो परम तत्व ही होता है, जो इस संसार के होने का कारण है। इस संसार का आधार है। इसमें उस परम तत्व के अस्तित्व के अन्वेषण का प्रयास किया जाता है।

ब्रह्मज्ञानी जनक वैदेह ने एक बार बहुदक्षिण नामक यज्ञ किया। कुरु पांचाल के अनेक ब्रह्मवेत्ता इसमें सम्मिलित हुये। राजा जनक की सभा में अनेक पण्डितों (ब्रह्मवेत्ताओं) में गार्गी भी आमन्त्रित की **गई**। श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता की खोज करने के लिए जनक ने स्वर्णमण्डित सींगो वाली एक सहस्त्र गौओं को प्रस्तुत करते हुए घोषणा करवाई– कि आप सभी विद्वतजनों में जो भी सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी या ब्रह्मष्ठि हों, वह इन स्वर्ण जडित सींगों वाली गायों को

---

[1] अत्रिगोत्रोतपन्ना विष्ववारा नामिकास्य सूक्तस्य ऋषिः। ऋगवेद 5.28
सप्तम्या रोमषा नाम ब्रह्मवादिनी। ऋग्वेद 1.126
घोषा नाम ब्रह्मवादिनी ऋषिः। ऋग्वेद 10.39
षिखण्डिन्याख्ये द्वौ सूक्तस्य द्रष्टयौ। ऋग्वेद 9.104

अपने साथ ले जा सकता है।[1] जब कोई भी ब्राह्मण उन गौओं रूपी दक्षिणा को लेने का साहस नहीं कर सका, तब याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से कहा– 'सौम्य सोमश्रवा, इन गौओं को हाँक ले जाओ। अन्य उपस्थित विद्वानों ने इसे अपनी विद्वता का अपमान समझकर याज्ञवल्क्य को चुनौती देते हुए उनसे प्रश्न पूछना प्रारम्भ किया। अश्वल, आर्तभाग, भुज्यु, उषस्ति चाक्रायण, कहोल आदि विद्वानों के द्वारा प्रश्न पूछकर श्रान्त हो जाने पर गार्गी वाचक्नवी याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ के लिए प्रस्तुत हुई। गार्गी ने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ निर्भीक भाव से याज्ञवल्क्य से तत्व के विषय में प्रष्न पूछना प्रारम्भ किया–जो यह सब पदार्थ जल में ओत–प्रोत है, तो फिर यह जल किसमें ओत–प्रोत है। याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया–वायु में। वायु किसमें है तो कहा अन्तरिक्ष लोक में, अन्तरिक्षलोक गन्धर्व लोक में, गन्धर्वलोक चन्द्रलोक में, चन्द्रलोक देवलोक में, देवलोक इन्द्रलोक में, इन्द्रलोक प्रजापतिलोक में, प्रजापतिलोक ब्रह्मलोक में। गार्गी के द्वारा ब्रह्मलोक के विषय में पूछने पर याज्ञवल्क्य कहते है हे गार्गी जो प्रष्नों से परे है, उसके विषय में मत पूछ।[2] उनकी परिपृच्छा के प्रकरण स्वरूप में इतने दुर्बोध एवं गूढ है, कि याज्ञवल्क्य ने अगुप्ततः उन पर विचार–विमर्ष करने के लिए मना कर दिया। गार्गी द्वारा याज्ञवल्क्य की सूक्ष्म प्रतिपरीक्षा से प्रतीत होता है कि वह उच्च कोटि की तार्किक एवं दार्शनिक रही होगी। गार्गी याज्ञवल्क्य के अभिप्राय को समझकर शान्त हो गई। गार्गी के विरत हो जाने पर उद्दालक आरुणि ने याज्ञवल्क्य से कई गम्भीर प्रश्न पूछे।

गार्गी द्वारा पूर्व में स्थूल जगत को व्याप्त करने वाले तत्व के विषय में प्रश्न किये गये। जिनकी अतिव्याप्ता पर याज्ञवल्क्य ने गार्गी को ब्रह्मलोक विषयक प्रश्न पर रोक दिया, किन्तु अपने प्रश्नों का उत्तर बिना पाये वे उनकी सर्वविद्वता को स्वीकार नही

---

1 तस्य हि जनकस्य वैदेहस्य विजिज्ञासा बभूव कः स्विदेषां ब्रह्मणानामनूचानतम् इति। भगवन्तो यो वो ब्रह्मिष्ठः स एता गा उदजतामिति। बृहदारण्यकोपनिषद् 3.2.1

2 अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वमप्स्वोतं च प्रोतं च कस्मिन्नु खल्वाप ओताष्चप्रोताष्चेति...... कस्मिन्न खलु ब्रह्मलोका ओतष्च प्रोताष्च। बृहदारण्यकोपनिषद् 3.6.1

कर सकती । इसी हेतु कुछ समय पश्चात् गार्गी ने उपस्थित सभी विद्वतजनों की अनुमति प्राप्त करके याज्ञवल्क्य से पुनः दो प्रश्न करने की अनुमति मांगी। ब्राह्मणों के द्वारा अनुमति दिए जाने पर गार्गी ने अपने प्रश्नों की गहनता तथा उनके कठिन विषय होने के प्रति याज्ञवल्क्य को सचेत करते हुये कहा, कि जिस प्रकार काशी या विदेह में रहने वाला कोई वीर–वंषज प्रत्यंचाहीन धनुष पर प्रत्यंचा चढाकर शत्रुओं को अत्यन्त पीडा देने वाले शरों को हाथ में लेकर खडा होता है। उसी प्रकार मैं इन दो प्रश्नों को लेकर उपस्थित हूँ। यदि आपके द्वारा इन दो प्रष्नों का उत्तर दे दिया गया तब ब्रह्मा सम्बन्धी वाद में तुमसे कोई भी नहीं जीत सकता। याज्ञवल्क्य ने भी चुनौती स्वीकारते हुए गार्गी से कहा– पूछो। गार्गी कहती है– द्यु से जो ऊपर है, पृथिवी से जो नीचे है, द्यु और पृथिवी के बीच में जो स्थित है। वह सब किसमें ओत–प्रोत है? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया– आकाश में। गार्गी ने प्रष्न किया यी आकाष किसमें ओत–प्रोत है? याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया यह आकाष जिसमें ओत–प्रोत है उसे ब्रह्मवेत्ता अक्षर कहते हैं। इसी अक्षर के शासनसूत्र में बंधकर ब्रह्माण्ड के तत्व स्थिर हैं अथवा गति प्राप्त करते हैं। यह अक्षर अदृष्ट होते हुये भी द्रष्टा, अश्रुत होते हुये भी श्रोता, स्वयं अविज्ञात होने पर भी विज्ञाता है। हे गार्गी! इसी अक्षर में आकाश ओत–प्रोत है।[1] यहाँ गार्गी के द्वारा किये गये प्रष्नों से न केवल उनकी दार्शनिक जिज्ञासा ही ज्ञात होती है, प्रत्युत उनके वैदुष्य की गंभीरता और व्यापकता भी विदित होती है।

बृहदारण्यकोपनिषद् में वाचक्नवी गार्गी निर्णायिका के रूप में भी दृष्टिगत होती है। याज्ञवल्क्य द्वारा प्रदत्त उत्तर से गार्गी ने सन्तुष्ट होकर उनकी श्रेष्ठता का निर्णय जनक की उस विराट सभा में निर्णायक होकर सुनाया। गार्गी द्वारा दिये गये निर्णय से यह भी विदित होता है कि ब्रह्म ज्ञान के क्षेत्र में गार्गी का ज्ञान अतुल्य है। तभी वह अत्यन्त अधिकार पूर्वक कहती है कि, यदि उनके प्रष्नों का उत्तर देने में याज्ञवल्क्य सफल होते है तो

---

[1] बृहदारण्यकोपनिषद् 3.8.1–11

ब्रह्मज्ञान में उन्हें कोई भी परास्त नही ंकर सकता है।[1] इससे गार्गी के भी ब्रह्मज्ञान सम्पन्ना होने का भी बोध होता है। गार्गी ने अपनी मेधा और तपस्या से ब्रह्मविद्या के गूढतम रहस्यों को अधिगत किया, और अनेक ब्रह्मिष्ठों के मध्य अपनी पहचान बनाई। वे मौखिक परीक्षक के रूप में भी दृष्टिगोचर होती है। उनके द्वारा ही जनक की विद्वत सभा में याज्ञवल्क्य की श्रेष्ठता प्रमाणित की गई। उपर्युक्त प्राप्त उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारत में स्त्रियाँ अनेक विज्ञानों एवं विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करती हैं। वे सार्वजनिक समारोहों में भी सम्मिलित होती है। शास्त्रार्थ करती है। ज्ञान के क्षेत्र में किसी भी प्रकार का कोई प्रतिबन्ध दृष्टिगत नहीं होता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है। गार्गी एक उत्कृष्ट दार्षनिक के रूप में प्रतिष्ठित है। उन्होंने उन महान ऋषि याज्ञवल्क्य को प्रष्न कर के कुछ क्षण के लिए निरुत्तर कर दिया, जिसने अब तक कई प्रतिष्ठित विद्वानों को चुप करा दिया। गार्गी अपने बौद्धिक योगदान के लिए जानी जाती है। गार्गी विद्वान वैदिक द्रष्टा के रूप में भी परिगणित होती है। आठ विद्वानों में से, जिन्होंने ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ षास्त्रार्थ किया उनमें वह एकमात्र महिला विद्वान दृष्टिगत होती है। उनके चुनौतीपूर्ण प्रश्न उनकी गहन बुद्धि और वेदों के ज्ञान को प्रतिबिम्बित करते है। उन्हें तत्वमींमासा के क्षेत्र में एक अग्रणी व्यक्ति के रूप में सराहा जाता है। गार्गी की शिक्षाएँ और विचार दर्षनषास्त्र के विद्वानों और छात्रों को वर्तमान में भी प्रेरित करते है। वर्तमानकालिक समाज में भी गार्गी एक आदर्ष के रूप में प्रतिष्ठित है।

---

1 सा होवाच ब्राह्मणा भगवन्तस्तदेव बहु मन्येध्वं यदस्मान्नमस्कारेण मुच्येध्वं न वै जातु युष्माकमिमं कष्चिद्ब्रह्मोद्यं जेतेति ततो ह वाचकनव्युपरराम। 3.8. 12

Contribution of Women in Different Social Institutions in Vedic and Contemporary Time: A Sociological Analysis

Mrs. Dhruva Rushabh Trivedi

Introduction:-

The status of women keeps on changing with changing time. Whether it is Pre-Vedic era, Vedic time, Post-Vedic time, or whether it is nomadic society, hunting and gathering society, agrarian society, industrial society or modern contemporary society, her role and responsibilities, and the status she holds in the family in particular and in the society in general differ. In some eras she was worshiped as a goddess. As per Hinduism, Lord Shiva required the help of Shakti to create the universe. Even when male gods are in trouble, they seek the help of Shakti. She is worshiped in many forms, like Parvati, Lakshmi, Saraswati, Mahakali, Chandi, Chamundi, Annapurna, and so on. For any era or epoch of society, it is essential to have good social structure. Social structure is made up of different roles, status, and mainly social institutions. Social institutions are basically, a cluster of roles and statues, designed to meet certain social needs. Marriage, family, economy, education, politics etc are examples of social institutions. For example, the social institution of education is made up of different roles, like, students, teachers, principal or deans, vice chancellor, chancellor, non-teaching staff like clerks, peons, sweepers, canteen staff, and so on. They all work together to achieve a single social need, which is a need of degree. Students take admissions and act according to the norms of the school/college/university to get degree. Whereas all the other roles are also work to provide the degree to students.

Interestingly, in the Vedic era all the goddesses mentioned above were associated and considered to rule

different social institutions of society. Parvati is considered to be the goddess associated with the social institution of family. Lakshmi ji is associated with the social institution of economy. Saraswati is associated with the social institution of education. Annapurna is associated with the food. It shows that how Hinduism has placed the women in social order and the amount of responsibility and dignity given to them. But the status of women changed after the Muslim invasion.

Role of women in Vedic Era:-

Our ancient Hindu scriptures, religious texts, hymns, and Purans highlights the social customs prevalent in vedic era. Women were given the supreme position in various social institutions. Like, in the social institution of education, she was holding the position of teacher. We have several examples of Ghosha, Lopamudra, Paulomi, Yami, Vishwavara, Apala and so on. Sometimes they also played the role of judges in the debate or discussion between two scholars. In the social institution of marriage, she was given freedom to select groom. Swayamvar was organized for her to choose a partner. Though, in swayamvar also she choose her husband but all the participants in the swayamvar come from the similar caste group. In the social institution of marriage she was considered as ardhangini, literally means half part of husbands body. Though it does not limit to body, but also includes spiritually, mentally, and emotionally. After marriage and even after giving birth, the husband and sons are recognized on their wife and their mothers name. For example, “Ganga putra Bhishm”, “Devki Nandan Krishna”, “Kunti-putra”. Gods also places their wives name prior to their own name, like Lakshmi-Narayan, Uma Pati, and so on. In the same institution of marriage, women had right to divorce her husband under certain conditions. Unlike in post vedic and Mughal era where she was forced to commit Sati, the custom of Sati was not found in Vedic and re-Vedic era. She was also free from Purdah System. After the death of her husband she used to live a normal life. In the social institution of politics also she occupied either higher

or equal position to men. She used to attend the Raj-Sabha and freely give her views on the political issues. It is mentioned in the Atharv veda that she was also sent as a messenger. They were also given military training. We have the example of Vispala and Mudgalani who fought in the battleground. In the social institution of economy also her contribution was immense. She used to work outside. She worked as teachers, weaving, clothing spinning, pottery, and other family businesses. In Vedic era, even prostitutes were also considered as a citizens of the state and they paid taxes.

Apart from the contribution in different social institutions and her status and position in the social structure, women were free to take their own decisions. Vedas and scriptures have many examples of such women. It can be seen in Ramayan and Mahabharata that their some of the female characters have changed the history of Bharat. Kaikeyi influenced king Dashrath's decision of the coronation of Lord Rama. Maa Sita decided to join her husband for the exile period, it was her own decision. Even in Mahabharat, it was Gandhari's decision to blindfold her own eyes because her husband was blind. She was called true "Sah-dharmacharini" by many scholars. She also received positive sanction for her this particular deed. Gender inequality was unknown in that era.

Role of women in Contemporary Time:-

In contemporary time the status and position of women has changed drastically. It is noticeable that position and status of women is different from country to country and within country it is different from region to region, community to community and caste to caste. If different social institutions are analyzed, it can be found that the position and status of women are totally different. For example, the social institution of education is completely, and if not completely then mainly lead by women. Society accepts and prefers women as a teachers for their children. If the health sector is analyzed carefully, it can be noticed that mainly the role of nurse is performed by females. These two professions are led by women in

contemporary time. Whereas in the social institution of politics 33 percent is reserved for women and still their seats are vacant. In the social institution of family and economy their contribution in general cannot be seen, but mainly both social institutions are run by them individually. Today women are working outside the house but in many cases they are not allowed to send the money they earn as per their own wish. In the families where women work outside the house different household chores are expected from women only. If both partners are working, it is the duty of only female to cook food. The functioning of the social institution of marriage has also changed. Women's wish and will again, varies from household to household. Not swayamvar, but she is allowed select her partner. Though today also, in some families love marriages are not allowed. In some of the regions many cases of owner killings occur frequently. The institution of marriage has undergone drastic changes. After the Muslim invasion in eighth and eleventh century the status of women changed. They had to accept the Purdah system. Sutee pratha was also introduced at that time. She denied rights in parents property.

In contemporary time women face many social issues which were not found in Vedic period. Issues like, gender inequality, violence (physical, mental, emotional, legal etc), unequal pay scale, and unequal distribution of resources like power, prestige and even household chores are commonly faced by women. In many household their opinion is not considered important or even not taken in major issues of household.

Analysis and Conclusion:-

Though society has accepted and prefers women as teachers for their children, it does not mean that the society has shown equalitarian approach towards them. Rather, the main reason for female teachers are their pay scale, especially in kindergarten and in schools are very less, and in our society it is okay for women have low pay scales. The other reason for female teachers is that women carry motherly attitude and warmth, so children feel safer and

easy in school environment. In the social institution politics, though many of the seats are vacant, but she takes all the major decisions in her own family. Today also her thoughts and ideology affect the decisions of the male members of the family. A sociological study was conducted on who takes the major decision in the family, and surprisingly, the conclusion received showed that it was female of the household. In the social institution of economy, they are not given equal chance of promotion. Whether it is a bollywood, or any other occupation, their pay scale is lower than males.

Apart from that, a woman is always questionable irrespective of different eras of history. For example, when Gandhari willingly blindfolded her eyes because of her husband, she was praised by many and called true Sah-Dharmacharini. But at the same time she was also questioned by many saying that she deliberately blindfolded her eyes so that she could avoid commenting on the bad deeds of her sons. Or she may refrain from giving true advice to her sons. Today also, whatever she does she is always under so much pressure and questionable.

If we compare the position and status of women in Vedic era and contemporary time, it can be noticed that women enjoyed more rights and prestige in Vedic time as compare to contemporary time. Though there are certain things that have not changed. For example, when it comes to keeping fasts, and vrats, it is mainly and always women who follow all these religious obligations. When it comes to cooking and household chores, those are expected from women. Males would happily cook but only professionally. Surprisingly, the occupation of chefs is dominated by the male members of the society.

Reference:

1. Altekar, A. S. (2014). The Position of Women in Hindu Civilization. Motilal Banarsidas Publishers, ISBN-10: 8120803256.
2. Altekar, A. S. (2014). The Position of Women in Hindu Civilization. Motilal Banarsidas Publishers, ISBN-10:

8120803256.

3. Bader, C. (2013). Women in Ancient India. Trubner's Oriental Series, Routledge, ISBN: 1136381333, 9781136381331.

4. Chakravarti,U.(1988).Beyond the Altekarian Paradigm: Towards a New Understanding of Gender Relations in Early Indian history. Social Scientist, 16(8), 44-52.

5. Devi, N.J., & Subrahmanyam,K.(2014).Women in the Rig Vedic age. International Journal of Yoga-Philosophy, Psychology and Parapsychology, 2(1),1-3.

6. Jayapalan. (2001). Indian Society and Social Institutions. Atlantic Publishers, ISBN: 978- 81-7156-925-0, p. 145.

7. Kaman, R. (2014). Status of Women in India in the Rigvedic Age and Medieval Age. The International Journal of Humanities & Social Studies, 2(9), 31-32.

8. Kaman, R. (2014). Status of Women in India in the Rigvedic Age and Medieval Age. The International Journal of Humanities & Social Studies, 2(9), 31-32.

9. Malviya, S. (2008). A Study of women in ancient India & an introduction to crimes against women", Sampurnanand Sanskrit University, Varanasi, ISBN: 8172702264.

10. Nandal, V., & Rajnish (2014). Status of Women through Ages in India. International Research Journal of Social Sciences, 3(1), 21-26.

11. Salawade, S. N. (2012). Status of women in ancient India: The Vedic period. Indian Streams Research Journal, 2(8) 1-3.

12. Sharma, R.S. (2011). Economic History of Early India, Viva Books, ISBN: 9788130910123

13. Singh, Anita. Economic Condition of Women in Ancient India (c. 1500 B.C to 1200 A.D.), Pilgrims Publishing, ISBN: 9788177698442

14. Tripathi, L.K. (1988). Position and Status of women in ancient India. Volume-I, Banaras Hindu University, Varansi.

वैदिक साहित्य में स्त्री-विमर्श

अमिता वर्मा
शोधच्छात्रा
संस्कृत एवं प्राकृत भाषा विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ

शोधसार- वस्तुत: भारतीय परिवेश में विशुद्ध सामाजिक धरातल पर नारी समर्थक विचारक न तो कोई आन्दोलन ही दे पाए जिससे नारी जाति पर होने वाले अत्याचारों का प्रतिरोध किया जा सके और न ही नारी समाज संगठित होकर इतना साहस जुटा पाया कि वह अपने छीने हुए मौलिक अधिकारों को पुन: प्राप्त कर सके। शायद नारी समाज की सबसे बड़ी कमजोरी यही रही होगी कि अपनी स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए सबसे पहले उसे अपने पिता, पति, पुत्रों से ही संघर्ष करने की आवश्यकता थी। जिसके प्रति वह न तो सचेत थी और न ही ऐसा करना उचित समझती थी। वराहमिहिर, कालिदास, भवभूति आदि अनेक विचारकों ने नारी की इस विवशता और कर्तव्यपरायणता के प्रति हार्दिक संवेदनाएं भी प्रकट की हैं। आज आवश्यकता है कि एक ऐसे साहित्य की जो इस धरती पर पनपने वाली विसंगतियों पर प्रहार कर सके। महिलाओं को जागरूक व साहसी बनाने में दो तत्त्व सबसे अधिक सार्थक भूमिका निभा सकते हैं। शिक्षा और आर्थिक स्वावलम्बन ये दोनों तत्त्व न केवल महिलाओं में स्वाभिमान और आत्मविश्वास पैदा करते हैं बल्कि उन्हें हर दृष्टि से सशक्त और अधिकार सम्पन्न बनाने में भी सहायक है। दुनिया का सबसे प्राचीनतम ग्रन्थ वेद है। वेद का तात्विक अर्थ होता है 'ज्ञान'। मन्त्रद्रष्टा ऋषियों में स्त्रियों के भी मन्त्र आते हैं। वैदिक युग में स्त्रियों को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे वह स्वयंवर से अपने जीवनसाथी का चुनाव करती थी। उस युग

में बालविवाह की परम्परा नहीं थी स्त्रियों की निर्णयों में भागीदारी होती थी। प्रस्तुत शोधपत्र में वेदकालीन समाज में स्त्रियों की दशा पर विचार किया जाएगा।

भारतवर्ष में प्राचीनकाल से ही नारियों का सम्मान होता रहा है हमने महिलाओं को देवी का स्वरूप माना है। ऋग्वैदिककाल में कई वैदिक ऋषिकाएं (विदुषी) हुई हैं जैसे- अपाला, घोषा, लोपामुद्रा एवं दर्शन के क्षेत्र में गार्गी आदि।इन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभायी थी अथर्ववेद के भूमिसूक्त में पहली बार पृथ्वी को माता कहा गया है - **माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः**।[1]

वेद भारतीय संस्कृति का अक्षय आधार है , और मानवमात्र के लिए सनातन सन्देशों का भंण्डार है। वेदों में नारी की स्थिति अत्यन्त उच्च, गरिमामयी और पूजायोग्य, उदात्त एवं गौरवपूर्ण है। वेदों में नारी को जितनी गौरवास्पद स्थिति प्राप्त है उतनी संसार के किसी धर्मग्रन्थ में नहीं प्राप्त होती। वेदों में नारी को 'देवी' कहा गया है। और देवी के छः विशेषण बतलाए गए हैं- **विश्रयन्तामृतावृधः प्रयै देवेभ्यो महीः। पावकासः पुरुस्पृहो द्वारो देवीरसश्चतः।**।[2] वैदिक नारी ऊषा के समान प्रकाशवती है जैसे रात्रि के घने अन्धकार को चीरकार 'ऊषा' ज्योति की साड़ी पहने हुए आती है और क्षितिज को विभूषित करती है, वैसे ही विदुषी नारी सदा श्रेष्ठ मार्ग पर चलती है और कभी मर्यादाओं का उल्लंघन नहीं करती- **एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि ज्योतिर्वसाना समना परस्तात्। ऋतस्य पन्थामन्वेति साधु प्रजानतीव न दिशो मिनाति**।[3] वेद में नारी को पतितुल्य माना गया है और कहा गया है कि वस्तुतः पत्नी ही घर है – **'जाया इदं अस्तम्'**।[4] साथ ही

---

[1]अथर्ववेद, 1/12.

[2] ऋग्वेद, 1/142/6.

[3] ऋग्वेद, 1/124/3.

[4] ऋग्वेद, 3/53/4.

यह भी वर्णित है कि पत्नी पति के घर में दासी बनकर नहीं अपितु साम्राज्ञी बनकर आती है। जिस प्रकार सभी नदियाँ समुद्र में आकर मिलती हैं ठीक उसी प्रकार पतिगृह में आकर पत्नी भी साम्राज्ञी हो जाती है – **यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृषा। एवा त्वं सम्राज्ञयेधि, पत्युरस्तं परेत्य।।**[1]

वेद उद्घोष करता है कि नारी के अपने वचन भी उसे दीन-हीन नहीं अपितु गृहस्थ आश्रम की पताका, समाज का मस्तक और वीरांगना सिद्ध करते हैं- **अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी।**[2]

वैदिक नारी स्वयं उद्घोष करती है कि मेरे पुत्र शत्रुहन्ता हैं, मेरी पुत्री तेजस्विनी है, मैं स्वयं पूर्णविजया हूँ और मेरे पति की कीर्ति भी उत्तम है – **मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्। उताहमस्मि संजया पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।**[3] साथ ही यह भी कहा गया है कि जिस वीर पुत्र को वीर पिता विपदाओं से निपटने के लिए पैदा करता है, उस वीर पुत्र की जननी कोई वीरांगना ही होती है – **वृषा जजान वृषणं रणाय। तमु चिन्नारी नर्यं ससूव।।**[4]

वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था और कुमारियों के लिए शिक्षा अपरिहार्य और अनिवार्य मानी जाती थी। वेदों में वर्णित है कि माता-पिता परमेश्वर से यह प्रार्थना किया करते थे कि उनकी पुत्री पण्डिता अथवा ब्रह्मवादिनी बने – **अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्व मायुरियादिति। तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तं अश्नयाता इश्वरो जनयितवै।।**[5]

---

[1] अथर्ववेद, 14/1/43.

[2] ऋग्वेद, 10/159/2.

[3] ऋग्वेद, 10/159/3.

[4] ऋग्वेद, 7/20/5.

[5] बृहदारण्यकोपनिषद्, 6/4/17.

उस काल में समाज में गुरुकुल विद्यमान थे जिनमें छात्र-छात्राएं समान रूप से प्रविष्ट होने के अधिकारी थे। वेदों में ज्ञानार्जन हेतु ऋषिकुलों एवं गुरुकुलों में बालिकाओं के प्रवेश तथा उनके ब्रह्मचर्य का वर्णन प्राप्त होता है – **ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।**[1]

वैदिक संस्कृति और सभ्यता के निर्माण में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। सैन्य, राजनीतिक, आर्थिक, आध्यात्मिक एवं बौद्धिक कार्यों में नारी की पूर्ण भागीदारी थी। उसे सभी प्रकार के अधिकार प्राप्त थे।

पुष्पावती खेतान के अनुसार – वेदों में स्त्री-पुरुष को जीवन रूपी रथ के पहिए माना है, उन्हें आकाश और भूमि के समान एक-दूसरे का पूरक उपकारक माना है।[2]

वैदिककाल में वैवाहिक जीवन भी ठीक-ठाक था। उस समय पिता किसी कन्या का विवाह तभी कर सकता था जब स्वयं कन्या विवाह के लिए उत्सुक हो – **पुषां त्वेतो नयतु हस्तगृहयाश्विना: त्वा प्रवहता रथेन। गृहा-गच्छ गृहपत्नी यथा सो वशिनि त्वं विदथमा वदासि।।**[3]

ऋग्वेद में परमात्मा को पिता की अपेक्षा माता कहना अधिक उचित माना गया है।[4]

वेद को भी माता के रूप में वर्णित किया गया है **स्तुता मया वरदा वेदमाता।**[5]

---

[1] अथर्ववेद, 11/5/18.

[2] नारी अभिव्यक्ति और विवेक, पृष्ठ- 13.

[3] ऋग्वेदभाष्य, 10/7/85.

[4] ऋग्वेद, 9/98/12.

[5]ऋग्वेद, 17/71/1.

वेदों में नारी के अधिकार एवं कर्तव्यों के विषय में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला गया है किन्तु अब हम जिसे सबसे विवादित विषय पर चर्चा करेंगे वह है स्त्री को वेद का अध्ययन अथवा श्रवण का अधिकार था या नहीं? मध्यकाल में ऐसी कुरीतियाँ भी हमारे समाज में उत्पन्न हुई जहाँ स्त्री को वेद के श्रवण से भी वंचित रखा गया , किन्तु जब हम वेदों का अध्ययन करते हैं तो ज्ञात होता है कि न केवल स्त्रियों ने मन्त्रों की रचना की अपितु यज्ञ में उनका स्थान प्रथम माना गया – **आ रोहन्तु जनयो योनिमग्रे** ।[1]

एक अन्य मन्त्र में स्त्री को हव्य एवं घृत के साथ प्रातः यज्ञ करने का उपदेश दिया गया है – **उप यमेति युवतिः सुदक्षं दोषा वस्तोर्हविष्मति। उप स्वैनरमतिर्वसूयुः।** ।[2]

वेदों में नारी को ब्रह्मा शब्द से अभिहित किया गया है – **स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ** ।[3]

वागाम्भृणी का वाक्सूक्त तो इस तरह की भाननाओं एवं स्त्री आदर्शों का कोष है – **अहं राष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुसी प्रथमा यज्ञियानाम्** ।[4]

ब्राह्मणग्रन्थों में नारी का गौरव वर्णित है – **'स्त्री सावित्री'** ।[5]

'अर्धो वा एष आत्मनः यत् पत्नी' ।[6]

'श्रिया वा एतद् रूपं यत् पत्न्यः' ।[7]

---

[1] ऋग्वेद, 12/2/31.

[2] ऋग्वेद, 14/1/51.

[3] ऋग्वेद संहिता, 8/33/19.

[4] ऋग्वेद, 10/125.

[5] जैमिनीय उप. ,4/27.

[6] तै. ब्रा., 1/3/3/3/5.

[7] तै. ब्रा., 3/9/4/7.

पारस्कर गृहसूत्र में भी स्त्रियों की गौरवमयी गाथा का वर्णन प्राप्त होता है- **तामद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तमं यशः** ।[1]

नारी के शील एवं रक्षा को राष्ट्रीय उत्तरदायित्व बतलाया गया है। जहाँ नारी के चरित्र की पूर्ण सुरक्षा होती है वही राष्ट्र सुरक्षित कहा जाता है।[2]

स्त्री का अपहरण राष्ट्र के लिए कलंक है।[3]

वैदिक समाज में नारी की हीन स्थिति को सिद्ध करने के लिए ऋग्वेद के प्रय: दो मन्त्र देखने को मिलते हैं- **इन्द्रश्चिद् घा तदब्रवीत, स्त्रिया अशास्यं मनः। उतो अह क्रतुं रघुम्**।[4]

किन्तु प्रश्न ये उठता है कि जो ऋषि स्वयं कन्या को 'पुरन्धि' शब्द से अभिहित करता है वह स्त्रियों की बुद्धि के विषय में ऐसा क्यों कहेगा। परञ्च मन्त्र के वास्तविक अर्थ का परीक्षण करने से पता चलता है कि स्वयं इन्द्र ने कहा कि स्त्री के मन पर शासन या अंकुश नहीं लगाना चाहिए , पुरुष के समान उसे भी अपने विचारों की स्वतंत्रता प्राप्त होनी चाहिए। उसके अन्दर भी जो वैचारिक शक्ति है उसका परिवार, समाज और राष्ट्र को लाभ मिलना चाहिए। क्योंकि नारी की बुद्धि एवं क्रियाशीलता अत्यधिक तीव्र होती है।

नारी को वेद की दृष्टि में हीन सिद्ध करने के लिए प्रस्तुत किए जाने वाला द्वितीय स्थान – **न वै स्त्रैयाणि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता**। [5]

---

[1] पारस्कर गृह. 1/7/2.

[2] अथर्ववेद, 5/17/3.

[3] अथर्ववेद, 5/17/6.

[4] ऋग्वेद, 8/33/17.

[5] ऋग्वेद, 10/95/15.

अर्थात् स्त्रियों से मित्रता करना अच्छा नहीं होता, उनकी मित्रता लक्कड़बघ्घे के हृदय के समान क्रुर होता है। प्रथम दृष्टि में यह मन्त्रांश स्त्री निन्दापरक ही प्रतीत होता है, परन्तु यदि प्रकरण देखा जाए तो यह मन्त्र पुरुरवा उर्वशी संवाद का है। पुरुरवा अत्यधिक कामाशक्त है उसे सन्मार्ग पर लाने के लिए उर्वशी ने यह वचन कहा है।

ऋग्वेद के समय से लेकर स्त्रियों को बहुधा सुभगे (सौभाग्यशालिनी) के विशेषण से सम्बोधित किया गया है। छान्दोग्योपनिषद् के अनुसार यदि कोई किसी काम में लगा हो और स्वप्न में स्त्री देखे तो वह यह जान ले कि वह कर्म सफल हो चुका है – **स यदि स्त्रियां पश्येत्समृद्ध कर्मेति विद्यात्।**[1]

जैमिनीय ब्राह्मण में पतिव्रता स्त्रियों को कल्याणी कहा गया है। **कल्याण्यः स्त्रियः पतिव्रता।**[2]

मैत्रायणी संहिता में स्त्रियों को पुरुषों से श्रेष्ठ माना गया है – **स्त्रियः पुंसोऽतिरिच्यते।**[3]

स्त्रियों के जिन अन्य गुणों की प्रशंसा प्रारम्भ से की गयी है वह है उनकी भगवद्भक्ति, उनकी उदारता, उनकी सहृदयता, ईमानदारी (पतिव्रत्य) और कर्मण्यता। इन सबकी प्रशंसा ऋग्वेद में विद्यमान है - **उतत्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी। अदेवणादराश्वसः। वि या जानाति जसुरिं वि तुष्यन्तं वि कामिनम्। देवता कृणतेमणः।**[4]

वैदिक काल में देखा जाय तो उस समय पर्दा- प्रथा का अभाव था। इसलिए महिलाएं युद्ध में पुरुषों के साथ जा सकती थीं।

---

[1] छान्दोग्योपनिषद्, 5/2/7.

[2] जै. ब्रा. 2/26/6.

[3] मैत्रायणी संहिता, 4/7/6.

[4] ऋग्वेद, 5/61/6-7.

ऋग्वेद के कुछ स्थलों पर नारी की वीरता की चर्चा की गई है। माता के प्रेम के सन्दर्भ में वृत्र की माता का वर्णन प्राप्त होता है। इन्द्र ने दास नमुचि को मारा था , जिसने स्त्रियों को युद्ध का साधन बताया है – **स्त्रियो हि आयुधानि चक्रे।**[1]

मुद्गल की पत्नी इन्द्रसेना ने घुड़दौड़ में अपने पति का साथ देकर अपूर्व साहस का परिचय दिया है। उसने वीरतापूर्वक रथ का संचालन किया था और एक सहस्र गायों का पुरस्कार प्राप्त किया – **उतस्म वातो वहति वासो अस्या अधिरथं यद्जायत् सहस्रम्। रथीरभून्मुद्गलानीगविष्टौ भरे कृतं व्यचेन्द्रिसेना।**[2]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र में पुत्री को सपिण्डा के अभाव में ऐच्छिक रूप से उत्तराधिकारिणी बनाया है –' **दुहिता वा'**।[3]

आपस्तम्ब धर्मसूत्र कन्या की निन्दा का विरोधी है - **गोर्दक्षिणानां कुमार्याश्च परिवादान्विवर्जयेत्।**

नारी को यज्ञाधिकार के सन्दर्भ में धर्मशास्त्रीय साहित्य में पति पत्नी को सम्मिलित रूप से धर्मानुष्ठान सम्पन्न करने का अधिकार दिया गया है। पञ्चमहायज्ञ के सन्दर्भ में गोभिल गृहसूत्र में पत्नी को पति के साथ धर्मानुष्ठान करने का अधिकार दिया गया है - **दम्पती एव। इतिगृहमेधिव्रतम्। स्त्री ह सायं प्रातः पुमानिति।**[4]

आपस्तम्ब और काठक गृहसूत्रों के अनुसार स्थालीपाक यज्ञ पति और पत्नी साथ करते हैं – **अथैनामाग्रेयेन स्थालीपाकेन याजयति पत्न्यवहन्ति।**[5]

---

[1] ऋग्वेद, 5/30/9.

[2] बृहदारण्यकोपनिषद्, 3/6/8.

[3] आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 1/11/31/8.

[4] गो. गृ. , 1/4/17-19.

[5] आपस्तम्ब धर्मसूत्र, 3/7/1-2.

गौतम धर्मसूत्र में कहा गया है कि गृहस्थ अतिथि, गर्भवती स्त्रियाँ और वृद्धों के साथ कन्याओं को अपने से पहले खिलाएं।[1]

वैदिक वाड्मय में नारी के लिए प्रयुक्त विशेषणों .से भलीभाँति स्पष्ट होती है कि नारियाँ सुरक्षित विदुषी थीं साथ ही तत्कालीन समाज में उन्हें बहुत अधिक सम्मान प्राप्त था।[2]

बृहद्देवता में प्राप्त ऋषिकाओं की सुदीर्घ सूची नारियों के वैदुष्य की सम्पुष्टि करती है – **अपाला घोषा विश्वारा अपालोपनिषान्निषत् , ब्रह्मजाया जहूर्नाम अगस्त्य स्वसाहितिः। इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी , लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती। श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा , रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्यईरिता।**[3]

शतपथ ब्राह्मण में नारी के लिए मुख्यतः योषा एवं जाया इन दो पदों का प्रयोग हबहुशः दृष्टिगत होता है।[4]

ऐतरेय ब्राह्मण में जाया पद का प्रयोग हुआ है – **पतिर्जाया प्रविशति, गर्भो भूत्वा स मातरं तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मासि जायते, तज्जाया जाया भवति यदस्यां जायते पुनः।** [5]

यही भाव तैत्तिरीय संहिता में भी प्राप्त होता है – **पत्नी हि सर्वस्य मित्रम्।**[6]

गोपथब्राह्मण में जाया पद का प्रयोग कुछ इस प्रकार

---

[1] गौ.धर्म सू. 1/5/23.

[2] यशस्वती- ऋग्वेद, 1/79/1, सज्ञया- ऋग्वेद, 10/159/3, देवी- यजुर्वेद, 4/23, इडा- यजुर्वेद, 8/43, सुमंगली- अथर्ववेद, 14/2/26.

[3] बहद्देवता, 2/82-84.

[4] शतपथ ब्रा., 1/2/5/15, 1/3/3/8, 1/9/2/2.

[5] ऐतरेय ब्रा. 7/3.

[6] तै. सं., 6/2/9/2.

उल्लिखित है –" **आभिर्वा अहमिदं सर्वं जनयिष्यामि यदिदं किञ्चेति तस्मज्जाया अभवंस्तज्जायानां जायात्वं यश्वासु पुरुषो वायेत्"** । [1]

मातृत्व का गौरव नारी की सबसे बड़ी सम्पदा है। उसके अन्य गुणों में मातृत्व अनन्य है। नारी के उत्कृष्ट रूप 'माता' के विषय में ब्राह्मण ग्रन्थ में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि मातृरूप में नारी अपनी सन्तान को कभी भी किसी भी प्रकार से हानि नहीं पहुँचाती है, तथा न पुत्र अपनी माता को कभी हानि पहुँचाता है – **न हि माता पुत्रं हिनस्ति न पुत्रो मातरम्** ।[2]

तैत्तिरीय उपनिषद् में भी माता को देवरूप में स्वीकार किया गया है – **मातृदेवो भव** ।[3]

वेदों में नारी को गृह की प्रतिष्ठा कहा गया है – **गृहा वै पत्न्यैः प्रतिष्ठा** ।[4]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में पत्नी के बिना यज्ञ करने वाले यजमान को अयज्ञिय कहा गया है – **अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः** ।[5]

वस्तुतः स्त्री- पुरुष दोनों का सम्मिलित रूप ही विश्व है। दोनों के मध्य परस्पर अन्योन्याश्रितता है। अतः पति पत्नी दोनों के मध्य किसी भी प्रकार का विभाग नहीं होता - **जायापत्योर्न विभागो विद्यते** ।[6]

वैदिक साहित्य में जहाँ ऋषियों का गौरवपूर्ण स्थान रहा है वहीं ऋषिकाओं का भी कम गरिमापूर्ण स्थान नहीं रहा। उसी का

---

[1] गो. ब्रा. पू., 1/1/2.

[2] शतपथ ब्रा., 5/2/1/18.

[3] तै. उ., 1/11/23.

[4] शतपथ ब्रा., 3/3/1/10.

[5] तै. ब्रा. , 2/2/2/6.

[6] आ. ध. सू., 2/6/14/16.

एक ज्वलन्त उदाहरण है - **'ब्रह्मवादिनी लोपामुद्रा।'**[1] जिन्होंने अपने तप और ज्ञान के प्रभाव से आर्यजगत में मन्त्रदर्शिका ऋषिका बनकर स्त्रियों के मस्तक को ऊँचा कर दिया।

ब्रह्मवादिनी गोधा भी तपोबलसमन्विता स्त्री है जो यज्ञसम्पादन के कार्यों में संलग्न रहते हुए , बिना किसी को हानि पहुँचाए धर्मयुक्त मर्यादित कर्मों का सम्पादन करती है - **नकिर्देव मिनीनसि नकिरा योपयामासि मन्वश्रुत्यं चरामसि पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे।** [2]

बृहद्देवता में भी रोमशा के बारे में उल्लेख है कि जब इन्द्र अपने सखा स्वनय भावयव्य को देखने की इच्छा से उनके यहाँ आये तो इन्द्र ने रोमशा से मित्रभाव से कहा - **रोमाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि।**[3]

वैदिक ऋषिकाओं में अत्रिगोत्रोत्पपन्ना तपोबलसमन्विता विश्वारा आत्रेयी का नाम प्रख्यात है।[4] मन्त्र इन्हीं के द्वारा दृष्ट हैं।

केनोपनिषद् के तृतीय खण्ड में यह कथा मिलती है कि उमा दैवीय शक्ति के रूप में दिखाई देती है, वह प्रेरक शक्ति बनकर अग्नि, वायु तथा इन्द्रादि समस्त देवताओं को ब्रह्म की महिमा का प्रतिपादन करते हुए कहती है कि तुम सभी देवताओं ने राक्षसों पर जो विजय प्राप्त की है, वह सब उन ब्रह्म की शक्ति का परिणाम था। तुम तो निमित्त मात्र थे। तुमने अहंकार वश ब्रह्मा की इस विजय को अपनी विजय मानकर मिथ्या अभिमान किया अत: तुम्हें सत्य का ज्ञान कराने के लिए उन्होंने मुझे प्रेरित किया – **सा ब्रह्मेति होवाच ह किल ब्रह्मणो वै ईश्वरस्यैव विजये ईश्वरेणैव जिता असुरा: यूयं तव निमित्त**

---

[1] ऋ.सं. प्रथम मण्डल, पृष्ठ 272, यजु. 17/11, 36/20.

[2] ऋ. सं., 10/134/6, यजु. 24/35, सामवेद पू. 1/7/2 .

[3] बृ. उ. , 4/2.

[4] ऋ. सं. 5/28, यजु. सं 33/12.

मात्रम्, तस्यैव विजये सूयं महीयध्वं महिमानं प्राप्नुथ मिथ्याभिमानस्तु युष्माकमस्माकमेवायं विजयो.. ।[1]

वैदिककाल के बाद भी नारी शिक्षा का महत्त्व बना रहा। वाल्मीकि रचित संस्कृत महाकाव्य रामायण में में भी ब्रह्मवादिनी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जो सम्पूर्ण जीवन अविवादित रहते हुए अध्ययन , यज्ञ , कर्म, तपस्या और धर्मचर्चा में अपना जीवन व्यतीत करती थी। स्वयंप्रभा और वेदवती ऐसी ही ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ थीं।

उपरोक्त अध्ययन से यह स्पष्ट है कि वैदिक काल में ज्ञान समाज के उदय में महिला शिक्षा ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। जहाँ आधुनिक समाज और स्वतन्त्रता के इतने वर्षों बाद भी हम पुरुषों की तरह ही स्त्री शिक्षा में शत- प्रतिशत दूरी नहीं पा सके हैं , जबकि हम वैदिककाल को देखते हैं जो हजारो साल पहले का समाज है और भी समृद्ध दिखाई दे रहा है। जो जीवन को व्यर्थ नहीं मानता है लेकिन एक प्रवृत्त उन्मुख है जो जीवन के प्रति आशावादी और उन्मुखी है। अत: वैदिककालीन समाज के अवलोकन से यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि उस समय के समाज में स्त्रियों को अनेक प्रकार के अधिकारों की पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उन्हें शिक्षा , युद्धकला, विवाह आदि सभी क्षेत्रों में स्वतन्त्रता थी। तत्कालीन समाज में स्त्रियों की स्थिति दयनीय नहीं थी। वैदिककाल का युग नारी समाज का उज्जवल रूप प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भग्रन्थ-सूची

1. ऋग्वेद संहिता, विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान होशियारपुर, 1965.
2. यजुर्वेद संहिता, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1957.
3. सामवेद संहिता, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1965.

[1] केन. उ. 4/18.

4. अथर्ववेद संहिता, दामोदर सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, पारडी, 1958.
5. 'नारी अभिव्यक्ति और विवेक' , पुष्पावती खेतान , शक्तिमां प्रकाशन, गाजियाबाद 1970,
6. बृहदारण्य उपनिषद् , (अनु.) राय बहादुर बाबू जालिम सिंह , नवलकिशोर प्रेस लखनऊ, 1923.
7. तैत्तिरीय ब्राह्मण, सायणाचार्यकृत, वेदार्थप्रकाश भाष्य सहित, (संपा) श्री राजेन्द्र लाल मिश्र, वापतिस्त मिशन प्रेस कोलकाता, 1866.
8. पारस्कर गृहसूत्र, श्रीकर्कोपाध्याय जयरामाचार्य- हरिहराचार्य गदाधरदीक्षित विश्वनाथ, वेंकटेश्वर प्रेस मुम्बई, 1851.
9. ऋग्वेदभाष्य, दयानन्द सरस्वती, वैदिक यन्त्रालय अजमेर, 1977.
10. गौतम धर्मसूत्र, (व्या.) प्रमोदवर्धन , कौण्डिन्न्यायन, वाराणसी चौखम्बा विद्याभवन, संस्करण 2015.
11. आपस्तम्ब धर्मसूत्र, (व्या.) डा. नरेन्द्र कुमार , विद्यानिधि प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2010.
12. बृहद्देवता, शौनककृत, (अनु.) राजकुमार राय , चौखम्बा संस्कृत संस्थान, 2019.
13. छान्दोग्य उपनिषद् , (शांकरभाष्यसहित) , गीताप्रेस गोरखपुर, 2019.
14. ऐतरेय ब्राह्मण, (संपा) आर. अनन्तकृष्ण शास्त्री, ट्रैवनकोर विश्वविद्यालय, 1942.
15. मैत्रायणी संहिता, डा. वेदकुमारीविद्यालंकार, बांकेबिहारी प्रकाशन आगरा, 1986.

डॉ. लीना रस्तोगी व्यक्तित्व कृतीत्व

दिव्यानी अनमोलवार (शुंकलवार)
(संशोधन छात्र)
वसंतराव नाईक गव्हर्मेंट इन्स्टिटयूट
ऑफ आर्ट्स अँड सोशल सायन्स, नागपूर
ई-मेल:- divyanianmolwar88@gmail.com
संपर्क:-8421774571

यदि हम भारतीय उपमहाद्वीप के परिप्रेक्ष्य से भाषा की समीक्षा करें तो यह दृढ़ता से महसूस होता है कि, संस्कृत भारतीय उपमहाद्वीप की सबसे पुरानी और सबसे व्यापक भाषा है। संस्कृत का अर्थ है जो संस्कारित किया गया हो, संस्कृत अर्थत, "शुद्ध या शुद्ध किया हुआ"। सम् + कृ + क्त इस रूप में संस्कृत शब्द बना है[1]।" निस्संदेह, संस्कृत भाषा प्रकृति प्रत्यय के अभ्यास से बनी है।

प्रकृति प्रत्ययौ संयोज्य कृता रचिता भाषा संस्कृतभाषा।[2]

संस्कृतं नाम दैवी वागन्वाकख्याता महर्षिभिः।[3]

खगोलशास्त्र, मन को सदैव आनंदित करने वाला साहित्यशास्त्र, जो स्वास्थ्य की रक्षा करता है अर्थात् आयुर्वेद, भारत के आर्षमहाकाव्य, रामायण, महाभारत, पुराण, उपनिषद, वेदंङ्ग इसी भाषा में लिखे गए और समृद्ध हुए, इसी लिए संस्कृत को संस्कृति का मूल माना गया।

संस्कृतम् संस्कृतेः मुलम्।[4]

यह भाषा, जिसके नाम से ही भारतीय उपमहाद्वीप को इसकी पवित्रता प्राप्त है, इसमें कोई दोष नहीं है, आज के आधुनिक कम्प्यूटर ने भी इसे स्वीकार कर लिया है। संस्कृत भाषा का यह

मोहक रूप इतना खूबसूरत है, इसीलिए इसे संस्कृत अनुरागी कहते हैं।

सुरससुबोधा विश्वमनोज्ञा ललिता हृदया रमणिया ।

अमृतवाणी संस्कृतभाषा नैव क्लिष्टा न च कठिणा ।।[5]

संस्कृत भाषा में न केवल अनेक रचनाएँ की गई है तथा संशोधन भी किए गए हैं। किसी भी विचार को अंधेपन से स्वीकार किए बिना, तार्किक दृष्टि से उसका खण्डन- मंडल कर के विचार कोठी पर तर्क शुद्ध पद्धति से अनेक सिद्धांत पुनः पुनः परख कर नित्य संशोधन किए गए है। वेदभाष्यकार सायणाचार्य इस क्षेत्र में अग्रगण्य है। मल्लिनाथ, आद्य शंकराचार्य इत्यादि विद्वान् जनों ने

भाषासु मुख्या मधुरा दिव्या गीर्वाणभारती ।[6]

इस प्रकार का संस्कृत को दर्जा प्राप्त करके दिया है। संपूर्ण भारत में संस्कृत साधना का यह व्रत अग्निहोत्र के समान अखंड रूप से चल रहा है, और संस्कृत भाषा के पवित्र यज्ञ कुंड में अनेक विद्वान अपने साहित्य रूपी समिधा अर्पण कर रहे हैं। महाराष्ट्र का विदर्भ प्रांत इस क्षेत्र में अग्रगण्य है। और इसी बात को महाकवि राजशेखर ने भी मान्य किया है वह कहते हैं।

विदर्भविषय: सारस्वतजन्मभू:|[7]

विदर्भ के सुविख्यात संस्कृत विद्वतजनों ने संस्कृत भाषा की निरंतर सेवा की है। इन विद्वतजनों ने, न केवल संस्कृत साहित्य की रचना की है, तथा संस्कृत मूलक संशोधन, संस्कृत ग्रंथ आधारित अन्य भाषाओं में लेखन, संस्कृत प्रचार तथा संस्कृत पत्रकारिता ऐसे सभी कार्य निरंतर किए हैं। और इन सब में ज्येष्ठ श्रेष्ठ अग्रगण्य ऐसी माननीय डॉ. लीना रस्तोगी जी|

उदिष्ट:

मैं "विद्या वाचस्पति" पदवी प्राप्त करने हेतु संशोधन रत हुँ। अध्ययनार्थ माननीय डॉ. लीना रस्तोगी जी का संस्कृत क्षेत्र में योगदान इस विषय का चयन किया है। डॉ.लीना रस्तोगी जी के कृतियों की परिचयात्मक अध्ययन प्रस्तुत शोध निबंध में किया गया है।

मर्यादा तथा व्यापति:

माननीय डॉ. लीना रस्तोगी जी अगण्या लेखिका है। उन्होंने हिंदी, मराठी, अंग्रेजी, पाली, प्राकृत तथा उर्दू में विभिन्न विषयों पर ग्रंथों की रचना की है। विस्तार भय के कारण उन साहित्य लेखों का मुखपरिचय उल्लेख प्रस्तुत शोध निबंध में किया गया है।

डॉ लीना रस्तोगी का संक्षिप्त परिचय: -

तर्काधारित जीवनशैली, भयरहित वाक्पटूता, विश्लेषक सत्यशोधकता, अनुसंधानाधिष्ठित ज्ञानसाधकता, राष्ट्रभिमानीता, प्रबुद्ध पत्रकारिता, उपहासगर्भ विनोदक्षमता, आस्वादनीय ललित साहित्य की रचना करने का कौशल्य, 8 इत्यादि गुणों का वरदान प्राप्त डॉ. लीना रस्तोगी नागपूर के संस्कृत क्षेत्र में एक प्रसिद्ध व्यक्तित्व हैं। “संस्कृत तत्त्वज्ञान, मनोविज्ञान, पुरातनशास्त्र, दर्शनशास्त्र इस तरह के विभिन्न शास्त्र मे बहुत सहजतया विहार करने वाली डॉ. लीना रस्तोगी अलौकिक बुद्धिमत्ता की साक्षात्कार हैं। अत्यंत तर्कनिष्ठ विचार पर आधारित उनकी चिंतनशैली, उन्हें बाकी लोगों से भिन्न बनाती है। संस्कृत भाषा के वैदिक, दर्शनिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक दृष्टि से अध्ययन करने वाली डॉ. लीना रस्तोगी संस्कृत के गाढ़ी अभ्यासिका है।”

डॉ. लीना रस्तोगी का व्यक्तिगत परिचय:-

डॉ. लीना रस्तोगी इनका जन्म २९-०७-१९३९ को महाराष्ट्र के

मुंबई शहर मे हुआ। विवाह के पूर्व उनका नाम कु.मृणालिनी मंजुनाथ खोटे था। उनकी पिताजी का नाम **"श्री. मंजुनाथ खोटे"** तथा माता का नाम **"सौ. विमल खोटे"** इस प्रकार था। घर में चार भाई बहनो मे पली लीना रस्तोगी घर की ज्येष्ठ पुत्री हैं। "उन्होंने अपनी दसवीं तक की पढ़ाई **"किंग जॉर्ज हाईस्कूल ,दादर"** से की है तथा महाविद्यालयीन शिक्षा **"विलियम्स कॉलेज से"** प्राप्त की है। 9 "महाविद्यालय शिक्षक पूर्ण होने के बाद उनका विवाह **श्री. प्रकाश चंद्र रस्तोगी** के साथ तय हुआ महाराष्ट्र में पाली बड़ी मृणालिनी अब **मध्य प्रदेश के जबलपुर** में एक नई संस्कृति के साथ एक नए परिवार में बढ़ने लगी। उन्होंने अपने नए घर को भी उसी तरह अपना बना लिया जिस तरह वह अपने माता-पिता के साथ अपने घर में रहा करती थीं। और कुछ सालों में ही उनकी मां की जगह उनकी सास **कै. रामनंदिनी देवी रस्तोगी** तथा पिता की जगह उनके ससुर **कैलाशवासी अंबाप्रसाद जी रस्तोगी** इन्होंने ले ली। वह अपने सास ससुर को अतिशय प्रिया थी उनके ससुर उन्हें बिटिया के नाम से पुकारते थे।

डॉ. लीना रस्तोगी की शैक्षणिक उपलब्धिया:-

डॉ.लीना रस्तोगी बचपन से ही कुशाग्र बुद्धिमत्ता वाले व्यक्तिमत्व के साथ बडी हुई है। उन्होंने अपनी संस्कृत के शिक्षा श्रीमद शंकराचार्य से प्राप्त की है 1 उन्होंने **अपना संस्कृत में आचार्य** (M.A) पदवी मुंबई विश्वविद्यालय से 1962 मे प्राप्त की है। **पाली प्राकृत जैसे विषय में भी उन्होंने आचार्य पदवी** जबलपुर विश्वविद्यालय से 1972 मे प्राप्ती की। उसी के साथ महाराष्ट्र **से मराठी मे भी आचार्य पदवी** उन्होने नागपूर विश्वविद्यालय से प्राप्त की। 3 बार आचार्य पदवी प्राप्त करने वाली डॉक्टर लीना रस्तोगी को **कला संकाय(आर्ट्स फॅकल्टी) B.A मे प्रथम सुवर्णपदक** प्राप्त है। संस्कृत में संशोधन कार्य करने हेतु उन्होने जबलपूर विश्वविद्यालय से 1978

पीएचडी (PhD) कर डॉक्टरेट की पदवी को प्राप्त किया। "राष्ट्रभाषा प्रवीण" मे उन्होने मुंबई में 1958 में प्रथम पारितोषिक प्राप्त किया था। वर्गीय संस्कृत शिक्षा परिषद मे उन्होने सहभाग लेकर **काव्यमध्यमा यह पदवी 1959** मे प्राप्त की तथा **मराठी विषय मे साहित्य विशारद** होकर १९६० मे अपना अध्ययन कार्य पूर्ण किया।

अनेक विषयों में आचार्य पदवी प्राप्त करने के बाद भी उन्हे विभिन्न भाषाओं का ज्ञान है। **उर्दू, पाली, प्राकृत, संस्कृत, मराठी, हिंदी, अंग्रेजी इतनी भाषाओं** में वह पारंगत हैं तथा उनका लेखन कार्य प्रचलित है। महोदया **नूतन आचार्य महाविद्यालय उमरेड, जिला नागपुर** में 1972 से 1986 तक **संस्कृत व्याख्याता तथा विभाग प्रमुख** और 1986 से 1990 तक **संस्कृत प्रपाठक के रूप मे कार्यरत** रहीं। संस्कृत क्षेत्र के कुछ विख्यात तथा संस्कृत अनुरागियों ने डॉ. लीना रस्तोगी के जीवन पर आधारित, **उनके गौरव में प्रकाशित किया गया "रसलीना" नाम के अभिनंदन ग्रंथ** 2017 में प्रकाशित किया गया।

साहित्य क्षेत्र में प्राप्त अन्य पद -

1) **अध्यक्ष**-संस्कृतभाषाप्रचारिणी सभा, नागपुर (2017 से 2020)
2) राष्ट्रीय संस्कृत-पत्रकार संघ की **उपाध्यक्षा** (2008 से 2013 तक)
3) 'संस्कृत-भवितव्यम्' साप्ताहिक की **संपादिका** (2005 से.....)
4) महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति-मण्डल की **सदस्या** (2010 से 2013, 2015 से 2020)
5) महाराष्ट्र राज्य भाषासंचालनालय की दो समितियों में (शासन-व्यवहार-कोष तथा

अर्थषास्त्र-परिभाषा-कोषनिर्माण **'संस्कृतज्ञ'** के रूप में नियुक्त) (2015 से 2020)

6) रा. तु. म. नागपुर विद्यापीठ तथा क. का. सं. वि. (रामटेक) के **अभ्यासमण्डल** (Academic Council) **की सदस्या**

साहित्य क्षेत्र में प्राप्त की गई उपलब्धियाः-

1) महाराष्ट्र शासनद्वारा **'संस्कृत-पण्डिता'** 1999

2) बाबासाहेब घटाटे न्यास द्वारा '**जीवनगौरव** 2012

3) महाराष्ट्र राज्य **संस्कृत नाट्यलेखन प्रथम पुरस्कार** - 2013, 2014

4) 'अभिव्यक्ति' संस्था द्वारा **'राधाबाई बोबडे स्मृति पुरस्कार** (मराठी काव्यलेखन हेतु)2015

5) 'साहित्य विहार संस्था द्वारा **'भालचन्द्र पांडे पुरस्कार'** (हिन्दी काव्यलेखन हेतु) 2016

6) संस्कृतभारती (नागपुर) द्वारा "**संस्कृतपण्डिताः**" – 2017

7) साहित्यविहार (नागपुर) द्वारा "**ज्ञानयोगी पुरस्कार**" 2018

8) महाकविकालिदास "**संस्कृतव्रती**" राष्ट्रीय पुरस्कार 2019

9) रसलीना (लीना रस्तोगी)" **गौरवग्रन्थ** "संपादकमण्डल डॉ. वीणा गानु, डॉ. हंसश्री मराठे, डॉ. शारदा गाडगे 2017

10) केंद्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय की ओर से आयोजित दीक्षांत समारंभात "डॉ. लीना रस्तोगी इनको राष्ट्रपती द्रोपदी मुर्मु के हाथो से **"मानद डिलिट्"** उपाधी प्राप्त 2024

डॉ. लीना रस्तोगी कृतीत्व :-

'मूर्तियां छोटी होती हैं लेकिन शोहरत बड़ी होती है' इस

कहावत को चरितार्थ करती हैं डॉ. लीनाजी रस्तोगी! सेवानिवृत्ति के बाद भी, लीनाजी की लगातार 24 वर्षों ज्ञानोपासना और ज्ञानदान करने की निरंतर खोज ने उनकी उम्र के बारे में अनुमान लगाना कठिन बना दिया।दो दशक पूर्व प्रोफेसर पद से सेवानिवृत्त होने के बाद उन्होंने उमरेड को छोड़कर नागपुर को अपनी कर्मभूमि मान लिया और तब से नागपुर के सभी संस्कृत जिज्ञासुओं के लिए यह एकमात्र आश्रयस्थान बन गई है। लीनाजी की कविता जन्मजात प्रतिभा, संवेदनशील मन, तरल कल्पना, सूक्ष्म अवलोकन, असाधारण वाक्पटुता और खट्टे-मीठे अनुभवों से भरे जीवन का एक संयोजन है! जीवनी लेखन, वैचारिक लेखन, अनुवादित लेखन, नाटक लेखन जैसे विभिन्न प्रकार के साहित्य से जुड़ी लीनाजी एक कवयित्री हैं। किशोरावस्था से ही कविताओं में उनकी रुची दिखाई देने लगी थी। आज भी वे कविताएं करती है।

उनकी संस्कृत कविताओं ने उन्हें राष्ट्रीय ख्याति दिलाई। लीनाजी की संस्कृत कविताओं ने कई राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय संस्कृत सम्मेलनों के साथ-साथ दिल्ली संस्कृत अकादमी, देववाणी परिषद दिल्ली और दिल्ली दूरदर्शन के सम्मेलन मंच पर प्रशंसकों की प्रशंसा हासिल की है। लीनाजी की कविता सुनना प्रशंसकों के लिए एक अनोखा अनुभव है। उनके सिद्धहस्त से लिखे सरल और सुंदर शब्द जब मधुर स्वर के साथ उनके गले से निकलते हैं तो कविता न सिर्फ उनकी बल्कि दर्शकों की भी हो जाती है।[10]

संस्कृत प्रकाशित साहित्य:-

1) स्वयंसिद्धः प्रज्ञाचक्षुः :-

स्वयंसिद्धः प्रज्ञाचक्षुः श्रीगुलाबराव महाराज के संस्कृत में चरित्र लेखन किया गया है संस्कृत भारती, नई दिल्ली द्वारा उसका प्रकाशन 2011 में किया गया।

2) रसरङ्गः-

लीनाजी का संस्कृत एकांकीका संग्रह रसरङ्गः इस नाम से संस्कृत भारती, नई दिल्ली ने प्रकाशित किया है| इसमें कुल पांच एकांकियों के संग्रह के साथ वह एकांकीका कौनसी स्पर्धा में, किस प्रसंग में, किस साल सदर की गई है। तथा उसे सदर करने वाले पत्रों के नाम, मूल लेखक, दिग्दर्शन, संगीत, नेपथ्य, प्रकाश योजना, इन सब की श्रेयनामावली भी प्रत्येक एकांकीका के आरंभ में दी गई है।

3)प्रज्ञाभारती श्रीधर भास्कर वर्णेकर :-

प्रज्ञाभारती डॉ. वर्णेकर के जीवन चरित्र को परिश्रम पूर्वक सिद्ध किया है।संस्कृत साहित्य अकादमी नई दिल्ली, द्वारा उसे 2021 में प्रकाशित किया गया।

हिन्दी प्रकाशित साहित्य:-

1) श्रीगुलाबराव महाराज:-

गुलाबराव महाराज का हिंदी चित्रलेखन भारत भारती प्रकाशन,द्वारा 1983 में प्रकाशित किया गया।

2) वैकुण्ठ गढ़ रही:-

"वैकुंठगढ़ रही हूं" यह कविता संग्रह यह साहित्य विहार द्वारा 2016 में प्रकाशित किया गया। यह काव्य संग्रह कविता, गीत, गजल और मुक्तावली से सजा हुआ है| यह काव्य संग्रह करुण रस से परिपूर्ण होकर भी दुख पर बात कर नई उम्मीद का प्रवाह प्रस्तुत कविता संग्रह में दिखाई देता है|

मराठी प्रकाशित साहित्य:-

1) स्पंदने:-

"स्पंदन" यह मराठी कविता संग्रह पुणे कोहिनूर प्रशासन ने 1981 प्रकाशित किया। उनकी सारी कृतियों में स्पंदन से उन्हें विशेष प्रसिद्धि प्राप्त हुई।

2)श्रीगुलाबराव महाराज:-

विदर्भ के प्रज्ञाचक्षु श्री गुलाबराव महाराज के साहित्य लिनाजी के चिंतन का विषय रहा है। उन्होंने गुलाबराव महाराज के चरित्र को मराठी में प्रसाद पुणे प्रशासन से (1983) में प्रकाशित किया है। इस पुस्तक की द्वितीयवृत्ति 2005 तथा तृतीयवृत्ति 2015 में प्रकाशित हुई है।

3)दिठीपल्याड :-

"दिंठीपल्याड" नाम से प्रसिद्ध हुआ यह मराठी काव्य संग्रह ऋचा प्रशासन द्वारा नागपुर से(2008) में प्रकाशित किया गया। प्रस्तुत काव्य संग्रह 27 कविताओं का संग्रह है। जीवन के आरंभ काल की तथा विवाह के बाद के विलोभनिय जीवन का अनुभव प्रस्तुत कविताओं में मिलता है।

4)सांख्यतत्त्वदीपिका :-

"संख्यातत्वदीपिका" यह पुस्तिका लीनाजी के दार्शनिक चिंतन को, अध्यापक वृत्ति को, तथा विद्यार्थी के प्रति उनके प्रेम को प्रकट करने वाला है यह एक दार्शनिक ग्रंथ है, जिसे मंगेश प्रकाशन नागपुर से (2010) में प्रकाशित किया गया।

5)मला उमगलेला राम:-

लीनाजी के मौलिक चिंतन का परिचय देने वाली “मला

उमगलेला राम” संस्कृत भाषा प्रचारिणी द्वारा (2013) में प्रकाशित किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक में रामनवमी के प्रवचन का संग्रह दिया गया है। राम पर लिए जाने वाले आक्षेप, राम की राजनीति, इत्यादि पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले इस पुस्तक ने वाचकों को नई दृष्टि प्रदान की है।

6) श्रीमद्भगवद्गीता आणि स्वामी विवेकानंदः-

स्वामी विवेकानंद की जन्म शताब्दी के अवसर पर (2013) में विवेकानंद केंद्र प्रकाशन विभाग, पुणे इस संस्था ने प्रकाशित किए हैं| श्रीमद् भागवत गीता और विवेकानंद जी इन दोनों विषयों पर परम श्रद्धा और उनकी परमार्थ प्रवणता प्रकट करती है।

7) गुलाब परिमलः-

कवि कुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय रामटेक में AIOC (2022) में प्रकाशित 108 पुस्तकों में से "गुलाब परिमल "यह पुस्तक लीना जी द्वारा लिखित है।

प्रकाशित अनुवादीत साहित्यः-

1)ब्रिटिशपूर्व भारतीय शिक्षण :-

श्री धर्मपाल इनका ब्रिटिश पूर्व भारतीय शिक्षण पद्धति पर प्रकाश डालने वाले " Beautiful Tree " के प्रबंधक पुस्तक जो (2000) में प्रकाशित हुआ उसे "ब्रिटिश पूर्व भारतीय शिक्षण" इस नाम से मराठी अनुवाद किया है

2)दैवी कृपा :-

"Divine Grace" इस अंग्रेजी पुस्तक को स्वामी रंगनाथन इनका इस पुस्तक का "दैवीकृपा" इस नाम से हिंदी अनुवाद किया है। रामकृष्ण मठ प्रकाशित प्रकाशन नागपुर द्वारा (2000) में प्रकाशित किया गया।

3)विश्वव्यापिनी हिन्दु संस्कृति : -

"विश्वव्यापिनी हिंदी संस्कृती" प्रस्तुत पुस्तक डॉ. कृ. मा. घटाटे लिखित मराठी पुस्तक का हिंदी अनुवाद धर्मश्री प्रकाशन पुणे द्वारा किया गया है।

4) प्रेरक प्रसंग :-

"प्रेरक प्रसंग" इस प्रेरणादायक पुस्तक का लेखन मा. बाबासाहेब आपटे के मराठी पुस्तक का अंग्रेज़ी अनुवादीत के प्रथम 100 पृष्ठ विद्या भारती नागपुर, द्वारा प्रकाशित किए गए हैं|

5) नामसाधना :-

'नामामृतगोड़ी' यह मराठी पुस्तक जो डॉ. अलका इंदापवार ने 2007 में प्रकाशित किया था। जिसका 'नामसाधना' इस नाम से हिंदी अनुवाद किया है|

6) कौण्डिन्यस्मृति:-

कौण्डिन्यस्मृती इस संस्कृत ग्रंथ का उन्होंने मराठी अनुवाद किया है| प्रस्तुत ग्रंथ के लेखक महामहोपाध्याय पुल्लेल श्रीरामचद्रूडू इस ग्रंथ को 2012 में प्रकाशित किया था|

7) तीसरा विकल्प :-

स्वदेशी जागरण फाउंडेशन, नई दिल्ली में 2016 को प्रकाशित किया | "तीसरा विकल्प" यह ग्रंथ मा. दत्तोपंत ठेंगडी उनके मौलिक चिंतन लेख को और ओजस्वी भाषण संग्रह को "Third Way" इस अंग्रेजी पुस्तक को लीना जी ने अनुवादित करके हिंदी वाचकों पर अनुग्रह किया है।

8) अर्वाचीन संस्कृत साहित्य:-

प्रज्ञाभारती डॉ. श्री.भा.वर्नेकर इनका "अर्वाचीन संस्कृत

साहित्य" इस दुर्लभ हो रहे मौलिक ग्रंथ जो वर्नेकर द्वारा लिखित ‘डि लीट’ उपाधि ग्रंथ है, उसका हिंदी अनुवाद कवि कुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय नागपुर द्वारा 2022 में प्रकाशित किया गया।

मराठी सम्पादित ग्रन्थ :-

- **देववाणीचे वरदान** (डॉ. के. रा. जोशी गौरवग्रन्थ) - 2010
- **तर्कवीरदर्शन** (डॉ. नी. र. वन्हाडपांडे गौरवग्रन्थ) - 2011
- **प्रज्ञांजली** (डॉ. गु. वा. पिंपळापुरे लेखसंग्रह) 2014
- **व्यासादिकांची उशिटे** (डॉ. गु. वा. पिंपळापुरे लेखसंग्रह) 2016
- **वाचे बरवे वाचकत्व** (डॉ. गु. वा. पिंपळापुरे लेखसंग्रह) - 2016
- **कुमारसम्भवम्** 2019

प्रकाशनाधीन: -

1) **प्रस्थितास्म्यहम्** (संस्कृत कवितासंग्रह)

2) **त्रिवेणी** (संस्कृत ललित लेख, वैचारिक लेख, सामाजिक लेख)

3) **चैतन्यचिन्तनम्** (ज्ञानसाधु चोरघडे जी के मराठी लेखों का संस्कृत अनुवाद)

4) **अन्तःस्फुरितम्** (संस्कृतकथाः)

5) **श्रीधराख्यानम्**(संस्कृत कीर्तन प्रज्ञाभारतीविषयक)

6) **धन्यो गृहस्थाश्रमः** (संस्कृत एकांकिका)

7) **'सरस्वती' अवगाहनम्, आस्वादनं च** (समीक्षा)

8) **ऐकात्म्यस्वरावली** (समीक्षा)

संस्कृत सम्पादित ग्रन्थ :-

1)कविकुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय की ओर से 'संस्कृत-बालसाहित्यम् के 23 चरित्रात्मक खण्ड।

इस प्रकार संस्कृत के विभिन्न क्षेत्रों में कार्यों में अपने नाम को सार्थक करने वाली अत्यंत लिन तथा संस्कृत सेवारत ऐसी कर्मयोगिनी डॉ. लीना प्रकाश रस्तोगी अपने व्यक्तित्व तथा कृतित्व से संस्कृत क्षेत्र में प्रसिद्धि प्राप्त कर कार्य करने वाले लोगों के लिए प्रेरणा स्थान है। उनके ज्ञान दान से प्रकाशित मार्ग पर हमारे जैसे पथिको के लिए वह एक उत्तम मार्गदर्शिका के रूप में सामने आती हैं।

संदर्भसूची

स्वरचित

१. सस्कृत साहित्याचा सोपपत्तिक इतिहास, डॉ. वि. वा. करबेळकर, पृष्ठ क्र. १५२

२. आधुनिक सस्कृत व्याकरण और रचना, डॉ. श्री. श्यामनंदन शास्त्री, पृष्ठ क्र. १

३. काव्यादर्शः, दण्डि, १/३३

४. 'महाराष्ट्र संस्कृत कार्यरताना संस्थानां तथा च प्रकाश्यमानाना नियतकालिकानामध्ययनम् ।' डॉ. राधिका अपराजित, पृष्ठ क्र. १७

५. संस्कृतभारती गीत

६. संस्कृत साहित्यातील सुभाषितांचे चिकित्सक अध्ययन, डॉ. सौ. शारदा रमेश गाडगे, पृष्ठ क्र. ४

७. वैदर्भीय संस्कृत कवी दत्तात्रेय येरकुंटवार, डॉ. स्मिता सुधीर होटे, प्रस्तावना

8.डॉ नीलकंठ रघुनाथ वर्हाडपांडे यांची संस्कृत साहित्य आणि संशोधन याना योगदान. प्रबंध लेख पृष्ठ क्रमांक 05

9."रसलीना" डॉ लिना रस्तोगी अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ क्रमांक 09

10."रसलीना" डॉ लिना रस्तोगी अभिनंदन ग्रंथ, पृष्ठ क्रमांक 13

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

१. संस्कृत साहित्याचा सोपपत्तिक इतिहास, डॉ. वि. वा. करबेळकर, शारदा प्रकाशन नागपुर (1993)

२. आधुनिक सस्कृत व्याकरण और रचना, डॉ. श्यामनंदन शास्त्री, चौखंबा प्रकाशक वाराणसी (1970)

३. काव्यादर्शः, दण्डि, चौखंबा प्रकाशक वाराणसी (1965)

४. 'महाराष्ट्र संस्कृत कार्यरताना संस्थानां तथा च प्रकाश्यमानाना नियतकालिकानामध्ययनम् प्रबंध लेखिका।' डॉ. राधिका अपराजित, (2016)

५. दैनिक तरुण भारत नरकेसरी प्रकाशन, नागपुर (दि. 09/04/2024)

६. संस्कृत साहित्यातील सुभाषितांचे चिकित्सक अध्ययन, डॉ. सौ. शारदा रमेश गाडगे, श्री मंगेश प्रकाशन नागपुर (2003)

७. वैदर्भीय संस्कृत कवी दत्तात्रेय येरकुंटवार, डॉ. स्मिता सुधीर होटे, श्री मंगेश प्रकाशन नागपुर (2007)

८. डॉ नीलकंठ रघुनाथ वर्हाडपांडे यांची संस्कृत साहित्य आणि संशोधन याना योगदान. प्रबंध लेखिका,प्रगति प्रफुल्ल वाघमारे प्रबंध लेख (2016)

९. "रसलीना" डॉ लिना रस्तोगी अभिनंदन ग्रंथ, प्रकाशक संस्कृत भाषा प्रचारिणी सभा, नागपुर 2007

१०. आंतरजालीय

ओ३म्

The Vedic Vision depicted in the views of Prof. Shashiprabha Kumar

Dr. Ranjan Lata
Assistant Professor
Deptt. of Sanskrit & Prakrit Bhasha,
DDU Gorakhpur University, Gorakhpur
Email – ranjanjnu13@gmail.com
Mob- 7906607153

Prof. Shashiprabha Kumar is a legendary scholar of Sanskrit and Indian Philosophy, endowed with modesty, knowledge and character. Her efforts in the field of Sanskrit and Indian Philosophy are continuing over the last five decades. It is also a matter of significant that she has studied all the interpretation methods of Vedas minutely and without any prejustice. She has made a serious study of all the systems depicted in Veda. From this point of view, her contribution to Vedic study is especially noteworthy. The conviction and confidence with which Prof. Kumar has presented her views on serious subjects linked with Vedic Philosophy in a language full of grace and sweetness is a matter of inspiration for all learners. This paper is an effort to present her Vedic Vision on the basis of her views.

'Veda' is the divine speech. In the beginning of creation, the Supreme Being, the abode of compassion, gave this knowledge to human beings in the form of the four Vedas; it appeared as if they were the breath of that great Lord.[1] The word Veda, derived from the root विद् ज्ञाने with the suffix घञ्. The विद् root has four more senses to describe it, but this one signifies the mass of knowledge which is 'all-knowing' and the root of all knowledge.

[1] (Shatapatha Brahman, 14/5/4/10) अस्य महतो भूतस्य निःश्वसितम्

Everything past, present and future is accomplished by the Vedas.[1] Vedas are an inexhaustible treasure trove of world knowledge because it contains all the knowledge useful for human life. The sacredness of the Vedas lies in the fact that for times immemorial this river of knowledge has been flowing to countless people in new and grand forms and even today its universal value is intact.

Persona of Prof. Shashiprabha Kumar -

Prof. Shashi Prabha Kumar was born in a family following the Vedic tradition and the imprint of exclusive faith in the Vedas. She got implanted Vedic views in her mind right from her childhood by her father late Shri Hansraj Sachdeva ji and mother late Smt. Krishna Rani Sachdeva ji. After getting a small opportunity to study in Kanya Gurukul Sasni, (Aligarh), indelible values of Vedic Hymns and Devavani Sanskrit were imprinted in the mind of that child and from there a strong inspiration for self-study of Vedas developed in her mind too. However, with time, from the point of view of research, her specific area of study became Vaisheshika Darshana, which is also an 'appendage' of the vast Vedic literature. Hence, she gave a Vedic vision in the field of advanced Vedic studies. She has a keen interest in this field too. Whenever She got the opportunity, she participated in Vedic seminars and continued efforts to collect some priceless gems from the Vedas as much as possible.

Prof. Shashiprabha Kumar is currently the Chairperson of Indian Institute of Advanced Study, Shimla; a Distinguished Fellow of Vivekananda International Foundation (VIF). Earlier she was the Founding Vice-Chancellor at Sanchi University of Buddhist & Indic Studies, Madhya Pradesh. She had also laid the foundation of Sanskrit Centre in JNU & spent many years as Founding

---

[1] (Manusmriti) भूतं भव्यं भविष्यश्च सर्वं वेदात् प्रसिध्यति 12/97

Chairperson of Special Centre for Sanskrit Studies, JNU, New Delhi and taught as a Reader in Classical Indian Philosophy at the University of Delhi before joining JNU in 2001.She was also the Vice Chairperson of Delhi Sanskrit Academy. She has a total teaching experience of more than fifty-two years.

Her current research interests include the philosophy of Vedas and Upaniṣhads, Vaiśeṣika, Mīmāṁsā and Vedānta besides Buddhism and Jainism.

She has recieved several awards including the prestigious President's Certificate of Honour in Sanskrit, (2014); Shankar Puraskar from K.K. Birla Foundation, New Delhi, (1999); Ramakrishna Sanskrit Award from Canadian World Education Foundation, Canada, (2003); Mahākavi Kalidāsa Sanskrit Sādhanā Puraskāra, Maharashtra Government, Mumbai, (2015) and Honorary D.Litt. conferred by Uttarakhand Sanskrit University, Haridwar, (2016).

Authorship of Prof. Shashiprabha Kumar

Prof. Kumar has thirty-seven books, more than one hundred and fifty research papers/review articles to her credit. She has authored *Vaisesika Darsana mein Padartha Nirupana*[1] from Delhi University which is widely acclaimed and highly appreciated. Her other works are-*Self, Society and Value: Reflections on Indian Philosophical Thought, (Vidyanidhi, 2005); Facets of Indian Philosophical Thought (1999); Bharatiyam Darsanam (1999); Vaisesika Parisilana (1999); Vedic Anusilana (1998); and Vedic Vimarsa*

---

[1] *Vaisesika Darsana mein Padartha Nirupana, II edition, D.K. Printworld Pvt. Ltd. NewDelhi with a message by the honourable Prime Minister of India Sri Narendra Modi.*

(1996). She has edited Garima (2001); Kala- Tattva-Chintana (1997); Bharatiya Sanskrit- Vividh Ayama (1996); Relevance of Indian Philosophy in Modern Context (1993); and co-edited Quest for Excellence (2000). Prof. Kumar has also translated *Nyayamanjari* 1st chapter in Hindi (2001) and *Sanskrit Maxims from Nyaya-Vaisesika* texts in Hindi and English (Delhi Sanskrit Academy, Delhi, 2001). She has published more than seventy papers in journals and has edited several books. She has contributed chapters to the volumes of Centre for Studies in Civilization, Indian Council for Philosophical Research, New Delhi and Indian Institute of Advanced Study, Shimla. She has also got the honour to publishing her two books from abroad named 'Categories, Creation and Cognition in Vaiśeṣika' from Springer and 'Classical Vaiśeṣika in Indian Philosophy' on knowing and what is to be known from Routledge Hindu Studies series.

Her recently published book is 'Vedic Prayers for Global Peace and Universal Well-being' which intends to highlight universal Vedic vision and provide an overview of ennobling ideas enshrined in the four Vedas. It contains selected Vedic mantras in Sanskrit, with Hindi and English translation, which solicit peace and welfare of all human beings.

Vedic Vision of Prof. Shashiprabha Kumar as depicted in her writings

As already mentioned, that Veda is the root of all Knowledge.[1] Now we will try to have a bird's eye view of her Vedic Vision as follows –

Vedic Vision of Prof. Shashiprabha Kumar regarding

[1] सर्वज्ञानमयो हि सः (मनुस्मृति)

social thought

Prof. Shashiprabha Kumar's views on Vedic Life and society are reflected in her papers on Vedic Society, their Education System, their lives, their standard of living, their marriage system, their ethical values etc.

Vedic Education System and Society -

Prof. Kumar's book 'Vedic Anusheelan' presents the lofty ideals and sublime values of the Vedic education system. She has presented three main aspects of the Vedic society as mentioned below-

(a) Sanskar as in which family or parents had a major contribution.

(b) Gurukul as in which Acharya or the teacher played an important role.

(c) Yajna in which society or environment had special importance.[1]

The Vedic society is rooted in the above three. These make every entity to make whole society sustainable developed for all. It emphasizes for civilized, cultured, charitable & welfare for all.

She also highlights the three main components of the Vedic life and lays emphasis on moral values, which are relevant even today. They are –

I. Brahmacharya (Celibacy)

II. Tapa (Penance)

III. Sarvajanakalyana or Manviyata ki Bhavna (The spirit of universal welfare or humanity).[2]

Quoting directly a lot of Vedic mantras and describing

---

1 वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, पृ. 18

2 Ibid, p.24-31

about the 'Ideals of education as seen by the Vedic sages' she says, 'The basic nature of man is spiritual. Therefore, the most important goal of education is the achievement of 'self-knowledge', mere bookish education is of no use, and the meaning of self-knowledge is to develop one's entire inherent powers. In fact, according to the Vedic sages, the aim of education is the all-round development of personality. Hence emphasis has been laid on character-building or purity of conduct and importance has also been given to the closeness and harmony between the teacher and the disciple.'[1]

'Thus, it is clear that the Vedic education system was not only theoretical but also practical and its objective was not to teach mere earning of money, but to teach the coordinated use of all three - Dharma, Artha and Kama, so that a person can become entitled to salvation and fulfill his aspirations. Modern education system emphasizes only on mental or intellectual development of man but it does not lead to all round development of human personality.'[2]

We all know very well that even though the number of educated people is increasing today, our moral, cultural and spiritual situation is declining. Modern development and the spread of current education have led to the conflicts in the society. To a certain extent, material progress advances life but it cannot ensure the possibility of progress for humanity.[3] This has been the Vedic goal of life.

In fact, today humanity is living in fragments, there is no ideal of the unbroken truth or a holistic personality. True

---

[1] Ibid, p. 10

[2] Ibid, p.30

[3] David E. Williom, A Philosopher's Look at the Future, Journal of Thought, Vol. 13, No.2, April, 1978 pp. 111-116

education means 'revealing the inherent perfection in man'[1], hence through education, the demonic tendencies hidden within man are destroyed and he is made aware of human ideals so that he can be oriented towards divinity. Only then a sustainable society can be developed. This is the message of Vedic philosophy depicted in society, life and education system which Prof. Kumar has demonstrated in her article.

Vedic Marriage System, Family and Vedic woman –

Vedic view of Marriage has been the foundation of family and society where husband and wife strive for their family in Grihastha Ashrama. The central point of the family is the mutual co-operation between male and female. According to Prof. Shashiprabha Kumar we see a picture of a woman in the Vedas who is an embodiment of self-sacrifice and has been given this power by penance.

The woman has been described in the Rigveda in the sense of doing heroic deeds, giving charity and leading activities. Several terms are used to characterize her such as 'Mahila', 'Nari', ‘Stri', ‘Amba’, 'Mata', ‘Janani’, 'Jaya', 'Putri', 'Kanya', ‘Duhita’, 'Bhagini', 'Swasa', 'Patni', 'Vadhu', 'Bharya', 'Yosha', 'Ida', 'Kamya', 'Chandra', 'Aditi', 'Grihini', ‘Mena (Manya)’, ‘Lakshmi’, ‘Gna (Gamya)’ ‘Pramada’, ‘Sundari’, etc. Yaskacharya explains the women by the name 'Mena' because they deserve respect from men.

The analysis of the position of Vedic women according Prof. Kumar is vague in these words. The Rigveda is the oldest source of Vedic literature and it presents the numerous aspects of the Woman. This proves that in the Rig Vedic period the place of women was so prestigious that it is rare to find in any other book of the

---

[1] Education is the manifestation of perfection already in man. Swami Vivekananda

world.

According to Rigveda husband and wife are both the masters or 'owners' (dam + pati) of the household', in fact the wife is Dam= home[1]. It becomes a home as a bride enters after marriage; before that it is just a house.[2] She is the queen of her husband's house.[3] She is the 'creator of truth',[4] the 'glorious,[5] the 'ketu' and 'head of society'.[6] She is the वीराङ्गना[7] who can defeat the enemies. Rig Vedic female goddess is wise and bright. She is described in many forms like daughter, wife, mother, teacher, preacher etc. In the Rig Veda period, women were considered completely equal to men.[8]

Vedic Vision of Prof. Shashiprabha Kumar regarding Economic Thought

Prof. Shashiprabha Kumar is very clear about the economic development of Vedic people. She says that India is a country where Agriculture has been a main source of earning since ancient times. Agriculture and animal husbandry have been the main areas of the Sindhu Valley civilization. It is also found that the people of Vedic period also have a lot of business in agriculture and Animal husbandry. Both are a part of the Vedic Civilization People plough the fields, sowing, irrigation, harvesting etc. were completed in a different way. They also use manure of animals for the fertility of the land. Thus, gradually the

---

1 ऋग्वेद 3/5/4, जायेदस्तम् |

2 महाभारत शान्तिपर्व, १४५, न गृहं गृहमित्याहुः गुहिणी गृहमुच्यते |

3 ऋग्वेद, 10/85/46, 4/16/10

4 ऋग्वेद, 1/86/10

5 ऋग्वेद, 1/79/1

6 ऋग्वेद, अहं केतुरहं मूर्धा 10/159/2

7 ऋग्वेद, 10/86/9

8 वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, पृ. 118

development of agriculture in India has increased. It has been presented under the Vedic Literature. In Rigveda a hymn says – अक्षैर्मादीव्यःकृषिमित् कृषस्व[1] i.e. do agriculture not to do gambling.

Veda depicts two types of Agriculture –

1. कृष्टपच्या

2. अकृष्टपच्या

Both are related to the type of agriculture in which first one is related to gain the crops through agriculture and second one is to gain crops without agriculture.[2]

At one place she supports the meaning of Maharshi Dayananda of 'Ashwinau' as Agriculture and Animal husbandry.[3] Prof. Kumar says also that other types of economic development of Vedic people also can be but these two are the main.

Vedic Vision of Prof. Shashiprabha Kumar regarding Political Thought

Prof. Shashiprabha Kumar has also talked about India's polity on the basis of Veda. These views are specifically based on the readings of Maharshi Aurobindo. Indian Culture has shades of different lifestyles and languages but there is a kind of unity in diversity which can be a thread between us that is Indianness. Polity or governance is also a type of our culture. There was a type of direct Democracy in Vedic Period although nowadays it is representative democracy. She says that the main concept of polity is on the basis of Dharma. Dharma is so wide as it

---

[1] ऋग्वेद, 10/34/13

[2] Taitiriya Samhita 4/7/5/1,2, Maitrayani Samhita 2/11/5, Kathak Samhita 18/10

[3] वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, पृ. 87

is the overriding concept of Vedic People. She says that King or Monarch was the head of government, but he was held to be the representative of divine path and guardian of Dharma. She says that the King was held to be a custodian of law and the father figure for people. According to her the Vedic terms for Government and the people was `Raja' and 'Praja'. It signifies a type of relation between Father and Son, same was in Vedic period for `Raja' and 'Praja'. She quotes Rigveda to illustrate the same -

`त्वां विशो वृणुते राज्याय |[1] i.e. May the people choose you for ruling.

विशस्त्वा सर्वा वाञ्छन्तु | मा त्वद् राष्ट्रम् अधिभ्रशत |[2] i.e. विशः = प्रजा people

The ruler must not only be elected by the people but also acceptable to the people.

इन्द्रोऽसि विशौजः | विशः = प्रजा, ओजः = शक्तिः

i.e. Your strength lies in your people.

योगक्षेमं च आदाय अहं भूयांसं उत्तमः | May I become a very good king so I protect the `*Yoga Kshem*' i.e. the welfare of my people.

It shows that in Vedic Vision of the King was of a Constitutional Monarch with limited personal power and more of a general supervision and control over the good order and welfare of the community. The sovereign powers of the King were under a direct control of Dharma or Spiritual authority of a Rishi like counsellor who was says revered and consulted by the King.

In Vedic Vision of Prof. Kumar, the Ruler or King

---

[1] Atharvaveda,3/4/2

[2] Rigveda, 10/173/1

was a brave warrior but there was an Amatya or a minister who was a sage like *Vashishtha* in *Ramayana* or *Vidur* in *Mahabharata*.

She quotes here Maharshi Aurobindo who had said – 'A greater sovereign than the king was the Dharma the religious, ethical, social, political, juridic customary law.[1]

She also quotes Maharshi Dayananda and his interpretation of '*Ashwinau*' as King and his Subjects.[2]

Vedic Vision of Prof. Shashiprabha Kumar regarding Philosophical Thought

Prof. Shashiprabha Kumar's views on Devta –

Prof. Shashiprabha Kumar has adopted the method of interpreting of the Vedic Devtas from Nirukta. Her beliefs related to God and mantras seems to be based on Dayananda's Vedartha-process based on the Nirukta. Yasaka has clarified the meaning of the word 'Devta' in the beginning of Daivatkanda and has written that the wish with which a sage praise through a mantra should be considered as the devta of that mantra.[3] On the same basis, she says that in all the mantras which have nouns of every meaning, The Lord Supreme is the Devta of those mantras. From the point of view of a Devta, the same mantra can have different meanings. The wish of the sage or the person looking at the meaning of the mantra may be to praise God, it may be of the king, it may be of the people, it may be of the Guru, he should be considered as the Devta of that triple division mantra.[4] She mentions the threefold division of Vedic verses according to Yaska and makes it clear that

---

[1] http://youtube.com/@vifindia?si=D54jkJTwDdxvrdrt Based on Prof. Kumar's You Tube Lecture on Democracy organized by Vivekananda international Foundation.

[2] Ibid, p. 87

[3] Nirukta, 7/1

[4] वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, पृ. 58

all the mantras have threefold meanings – indirect, direct and spiritual. She also accepts three places for Devta like Agni and Brihaspati in the region of earth, Indra and Marut etc are from outer space while Sun and Savita as in the celestial region. That desire which the sage uses to praise the deity in order to obtain wealth.

Accordingly, Prof. Shashiprabha Kumar where ever relevant each mantra will have two meanings, but due to God's omnipresence in this world, the divine meaning will be relevant to all the mantras. There is no renunciation of Supreme God in the meaning of even a single mantra. This is the structure of the Devtas acceptable to her divine.

Prof. Shashiprabha Kumar's views on Yajna

Prof. Kumar Says that Yajurveda is the sacrificial foundation of Yajna. The word yajna is derived from the root yaj and the mantras with which Yajna or 'Devapooja' is performed are called yajush - 'Yajubhiryajanti'. That is why rituals are important in Yajurveda. It is worth mentioning that after marriage, there is no such family or religious act in which the Yajna is not done. It takes a pious & religious place in a family even today in a different form. It is a saying in Shatapath Brahman that 'Yajyo vai vishnuh'.[1] It means that yajna covers the world. It has three meanings in itself – Dana, Devpuja & Sangatikarana. Prof. Kumar also explains the idea of Panchamahayajna.[2] They are as follows -

1. Brahmayajna - means performing devpuja, self-study and recitation of the mantras with meanings.

2. Deva yajna - Agnihotra is accomplished by karma. This is the Yajna to all Devtas who give us anything.

---

[1] Shatpatha Brahmana

[2] Manusmriti, 3/70

3. Nriyajna –signifies satisfying mother, father, ancestors, acharyas & other respectable persons.

4. Atithiyajna –Worshiping and serving the scholars coming with love and compassion and welcome them with food, water, clothes etc.

5. Balivaishvadeva yajna – offering of food and water to all living beings.

It means that worship towards all the forms of nature is described the components as Devta. Prof. Kumar suggests and explains the worship of real nature such as Earth, Space, Agni, Vayu etc.

Vedic Vision of Prof. Shashiprabha Kumar regarding Vedartha Prakriya

Prof. Shashiprabha Kumar's views on Vedartha Prakriya are based on the tradition. She says that Veda represents its meaning in its own words. Vaidik literature reflects its knowledge in its own verses. There are many word-meanings can be shown to one Mantra based on grammar, Nirukta & other Vedangas. There are many commentators of Veda too but she mostly follows the meanings given by Maharshi Dayananda. In her book 'Vaidik Anusheelan' she explains many meanings of the term 'Ashwinau'[1] according to Maharshi Dayananda and propagates the variety and beauty of Vedic hymns.

We can also see Prof. Shashiprabha Kumar saying about commentator Dayananda that only spiritual or practical meanings of Vedartha have been mainly used in Veda.[2]. While describing the Yajnas like SomaYajna & Srautramani Yajna etc., traditional scholars present a different image of Ashwinau as a Devta. Western (and

---

1 वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, पृ. 73-96

2 वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, पृ. 94

ancient) scholars sometimes give a natural meaning, but these devtas can also be human beings, this is the brainchild of Rishi Dayanand. Vedartha is completely original and unique for public welfare suggested by Prof. Kumar. In fact, she considers the Vedas to be the book of true knowledge for the whole humanity.

In the view of Maharshi Dayananda as expounded by Prof. Kumar, Vedas are the divine encyclopaedia of all the knowledge and sciences useful for human life. That is why, by giving humanistic, practical (and divine, transcendental) meanings to all the Vedic devtas like Agni, Indra, Marut, Ashwinau etc has not only proved the Vedas to be the basic source of social and universally beneficial knowledge, but also provided a broad and strong foundation to the study of the Vedas.[1]

Therefore, Prof. Shashiprabha Kumar adopts a unique method by giving a completely social and scientific form to the underlying process of Vedartha. Prof. Kumar says that meaning of the mantra can be understood only by understanding the essence of the sage, the devta, the metre and by knowing the nature of the Vedic language in order to explain for those who do not know all this.

Vedic Vision of Prof. Shashiprabha Kumar regarding other aspects

Prof. Shashiprabha Kumar regarding environmental Issues -

Prof. Kumar’s 'Description of Nature in the Avarvavedic Bhumi Sukta',[2] is an attempt to formulate the broad poetic vision of the seer and depict their direct relationship with nature. The hymn considers 'earth' not only as a symbol of land, but as a symbol of the entire

---

[1] Ibid, p.94

[2] Ibid, p.97-117

natural world, water, air, fire, sky, time, directions, seasons, mountains, forests, trees, food, animals, birds, reptiles, gems. Earth has been glorified in various forms such as gems, minerals, fragrances, juices, Gandharvas, nymphs, demons and human beings. Therefore, this Sukta also contains important formulas for nourishment of nature or environmental protection. It is particularly noteworthy that the ideal of intimacy between human and nature, considering the earth as the mother symbolises an emotional bonding in this Sukta, gives an eternal message of establishing proper balance between today's emotionless mechanical human being and the polluted environment.[1]

She says that rapid industrialization and a feeling of indifference towards the future society have greatly helped in increasing the depletion of natural resources and environmental pollution in the world.[2]

Environment and moral values in Vedic education system -

Nature teaches humans to practice the divine virtues and sustain humanity. That is why the emphasis is not just on developing only the body, mind or intellect, but on overall balance and 'self-knowledge' i.e. to identify one's inner self, truth, purity of behavior, human values and morality, natural consciousness and sublime elements like sensitivity towards the environment and other beings etc.

Therefore, in view of the above, it can be said that to give a constructive turn to today's utilitarian education from the point of view of overall development of life, it is necessary that education should include values of life values, education of human relations, education pertaining to environment and nuture, education of emotional balance

---

[1] Ibid, 117

[2] वैदिक अनुशीलन, शशिप्रभा कुमार, पृ.117

e.t.c. Incorporating awareness towards the environment and moral values in education will help in balancing the inner nature and outer nature and the process of creating true, all-round development. Human beings inspired by these spiritual ideals can strengthen the society, which is the centre point of the Vedic education system. Only when there is a combination of initiation with education, it will be meaningful, only then people will be able to recognize their inner power and this teachings of Vedas will be able to inspire them.[1]

Prof. Shashiprabha Kumar's views on Vedic Philosophy

Prof. Shashiprabha Kumar is basically a scholar of Indian Philosophy. She has made her mark as a pioneer in the field of Vaisheshika Philosophy which is very nearer to modern science and also an expansion of Vedic Philosophy. Her Ph. D work is based on it. She has written a book named 'Vaisheshika Darshan mein Padarth Niroopana'. Here she has discussed seven padarthas in a great detail and very minutely. Every researcher who wants to research in the field of Vaisheshika Philosophy, must read this book, because without reading this book his or her research will be incomplete. She has also purusued many commentaries of Vaisheshika Sutras. Infact she has given a new dimension to Vaisheshika Philosophy.

She also describes the most questionable point of Vaidik Darshan in her book 'Vaidik Anusheelan'[2] and that is a brief assessment of death in the Vedic Samhitas and demonstration of man's eternal transcendence towards death.[3]

At last, it can be said that Prof. Shashiprabha Kumar

[1] Ibid, p.30

[2] Ibid, p.147-158

[3] Ibid, p. 12

is an epitome of Vedic womanhood. In my view, she is like ` A Rishika' `A Mother', `One woman Army', A culture conductor, `A Veerini' and much more which I can't express in my limited words.

Bibliography -

1. *Rigveda-Samhita,* Third-Part, Sayanacharyavirachit-Madhvavedarthaprakashasahita, Edited by Srimanmokshamularabhatta H, Krishnadas Academy, Varanasi, 1983
2. *Subodh Bhashya of Rigveda*, Commentator, Shripad Damodar Satwalekar, Swadhyaya Mandal Pardi,Valsad, 1985
3. *Rigvedabhasha-Bhashya*, Dayanandasaraswati, Vedic Library, Kesarganj, Ajmer, Rajasthan, VS, 2030
4. *Yajurvedbhashya*, Dayanandasaraswati, Vedic Library, Kesarganj, Ajmer, Rajasthan, VS, 2030
5. *Atharvaveda,* Dr. Tulsiram, Vijaykumar Govindram Hasanand, Delhi, 2013
6. *Maitrayani Samhita*, Vedkumari Vidyalankar, Bankebihari Prakashan Agra, 1986
7. *Taittiriya Samhita*, Brahmana and Aranyaka File name: tattiriyasamhita.itx Category : upanishhat, svara, upanishad Location : doc - upanishhat Transliterated by : Muralidhara B A muraliba@gmail.com Acknowledge-Permission: Professor Anathakrishna Latest update : March 21, 2018
8. *Kathaka Samhita*, Commentator, Shripad Damodar Satwalekar, Swadhyaya Mandal Pardi,Valsad,1999
9. *Brihaddewata,* Acharya Shaunaka, ed. Umesh Chandra Sharma, Aligarh, 1982
10. *Shatapath Brahman, Sayanacharya virachitam Vedarth prakasha bhashya Samvalitam*, Shree Hariswami bhashya samanvitam, Nag publication, New Delhi, 1990
11. *Manusmriti*, Shri Girijaprasad Dwivedi, Navalkishor CIE Press Lucknow, 1917
12. *Vaidiknighantusangraha,* Dr. Dharamveer, Ramlal Kapur Trust, Amritsar, VS. 2021
13. *Niruktashastra*, Yaska, Bhagwadatta, Ramlal Kapoor Trust, Amritsar, V.S. 2021
14. *Ashtadhyayi*, Panini, Ramlal Kapur trust, Amritsar, 1994
15. *Vaisesika Darsana mein Padartha Nirupana*, II edition, Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2013
16. *Veda Vicharvithi,* (Sanskrit), Prof. Shashiprabha Kumar, Reva Prakashan, 2018

17. *Vedic Anusilana,* Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan,1998
18. *Vedic Vimarsa*, *i*(ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan,1996.
19. *Veda As Word*, (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2007
20. *Vedamrita Bindavah:,Drops of Vedic Nectar*, Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2014
21. *Vedic Prayers for Universal Wellbeing*, Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2024
22. *Self, Society and Value: Reflections on Indian Philosophical Thought,* Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan, 2005
23. *Facets of Indian Philosophical Thought,* Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan, 1999
24. *Bhartiya Samskriti: Vividh Aayam*, II edition, (Ist ed. In 1996) (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan, 2021
25. *Bharatiyam Darsanam,* (Sanskrit), Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan, 1999
26. *Vaisesika Darshan Parisilana*, Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan, 1999, 2010
27. *Relevance of Indian Philosophy in Modern Context,* (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, Nag Prakashan, 1993
28. *Nihshreyas: Towards the Ultimate goal*, (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, Reva Prakashan, 2020
29. *Sanskrit Across cultures*, (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2007
30. *Sanskrit Studies, Vol.3*, (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2014
31. *Sanskrit and other Indian Languages,* (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2007
32. *Kala- Tattva-Chintana,* (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, J.P. Publishing House,1997
33. *Samskriti Samskarashcha,* (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, Vidyanidhi Prakashan, 2024
34. *Sanskrit Maxims from Nyaya-Vaisesika texts in Hindi and English,* Delhi Sanskrit Academy, Delhi, 2001.
35. *Quest for Excellence*, Prof. Shashiprabha Kumar co-editor, 2000.
36. *Nyayamanjari,* Prof. Shashiprabha Kumar, translation of 1st chapter in Hindi, 2001
37. *Garima* (ed.) Prof. Shashiprabha Kumar, 2001

38. *Darshnik Sampratyaya Kosha*, co-publisher Shashiprabha Kumar, Santosh Kumar Shukla, Ramnath Jha, D.K. Printworld Delhi, 2014
39. *Vachaspati Vaibhavam, A* felicitationVolume of Prof. Vachaspati Upadhyaya, co-ed. Prof. Shashiprabha Kumar, D.K. Printworld Delhi, 2011
40. *Rigvedic Rishika: Life and Philosophy,* Dr. Ela Ghosh, Eastern Book Linkers, Delhi, 2007
41. *A Philosopher's Look at the Future,* David E. Williom, Journal of Thought, Vol. 13, No.2, April, 1978
42. *Vedic Literature and Sanskriti*, Vachaspati Gairola, Chaukhamba Samskrit Pratisthan Varanasi, 2013
43. *Vedic Dictionary*, Banaras Hindu University, 1963

कालिदास रचित ग्रन्थों में स्त्रियों का स्थान

DR. DIPTI KUMARI
ASSISTANT PROFESSOR
DEPARTMENT OF SANSKRIT
M.L.T.COLLEGE SAHARSA
B.N.M. UNIVERSITY, MADHEPURA (BIHAR)
Email Id – diptikriya@gmail.com

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वती परमेश्वरौ ।।[1]

रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक के द्वारा ही महाकवि कालिदास ने एक प्रकार से उद्‌घोष कर दिया है कि जिस प्रकार शब्द और अर्थ की अलग–अलग कल्पना नहीं की जा सकती, उसी प्रकार स्त्री और पुरूष भारतीय समाज के समान अंग हैं। विधाता ने यद्यपि स्त्री–पुरूष की प्रकृति भिन्न–भिन्न बनाई है तथापि दोनों का लक्ष्य समाज निर्माण करना ही है। महाकवि ने अपने सभी ग्रन्थों में नारी के चरित्र–निर्माण में कहीं भी अपनी लेखनी को लड़खड़ाने नहीं दिया है। ''कुमारसंभवम्'' में जहाँ माता पार्वती की कठिन तपस्या के वर्णन से स्त्री को दृढ़ निश्चय एवं मजबूत इच्छा शक्ति का प्रतीक बना दिया है वहीं ''रघुवंशम्'' में रघुकुल की स्त्रियों के वर्णन ने उन्हें उपाधियाँ दिलाई हैं। नाट्यशास्त्र में भरत मुनि ने नारी के विषय में कहॉ है ''सर्वप्रयणिलोकोऽयं सुखं इच्छति सर्वदः, सुखस्य च स्त्रियो मूलं नाना शीलधराश्च।'' मनुस्मृति में राजा मनु ने नारी की प्रशंसा करते हुए कहा है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।''

महाकवि कालिदास कृत ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में महाकवि ने शकुंतला के चरित्र को मर्यादाविहीन होने से बचाने के लिए ही 'अभिज्ञान' एवं 'दुर्वासा' ऋषि के श्राप की कल्पना की है। महाभारत के 'शकुन्तलोवाख्यान में शकुंतला के चरित्र वर्णन में वह उदात्तता दृष्टिगोचर नहीं होती है जो ''अभिज्ञानशाकुंतलम्'' में होती है। महाकवि कालिदास ने ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' में पत्नी को 'गृहिणी' पद से सुशोभित किया है– ''अभिजनवतोभर्तुः श्लाघ्यः स्थिता गृहिणी पदे। [2] महाकवि ने अपने खण्डकाव्य ''मेघदूतम्'' में

य़क्ष की स्त्री को पतिव्रत धर्म की ऊचाई पर सुशोभित किया है। यदि य़क्ष अपनी प्रियतमा से दूर होकर कष्ट भोग रहा है तो उसकी पत्नी भी सभी भौतिक सुखों को त्याग कर तिल–तिल जल रही है। यदि कवि एकपक्षीय होकर यक्ष के विरह का ही वर्णन कर छोड़ देते क्या उनका काव्य इतना सुंदर बन पाता?

कूट शब्दः कालिदास, स्त्रियाँ उदात्त चरित्र।

महाकवि कालिदास सर्वप्रिय, सर्वमान्य, सर्वश्रेष्ठ रचनाकार थे। उनकी **रचनाएँ** मानो लेखनी का अमृत निस्यंदन है। महाकवि की **रचनाएँ** विश्ववन्द्य हैं। महाकवि के काव्य में द्राक्षा की माधुरी ज्योत्सना की स्निग्धता और कुंद की मादक सुरभि की उमड़ती पवित्र त्रिवेणी का पावन संगम दिखता है। ऐसे महाकवि के जन्म–स्थान और जन्म–काल के विषय में इतिहासकारों में मतैक्य नहीं है। कोई भी कवि अपनी रचनाओं के माध्यम से ही इस लोक में सदैव जीवित रहता है। कोई भी कवि–कृति लोक में तभी जीवन्त होती है जब उसमें व्यावहारिक सत्य हो, वह यथार्थ पर आधृत हो, लोक–जीवन संबंधित हो। कालिदास के काव्य जन–जीवन से जुड़े हुए हैं। इनके काव्यों का लक्ष्य आदर्शवादी है एवं सुसमृद्ध समाज की स्थापना हेतु प्रेरित करता है, तभी तो इन्होंने मूल कथा में कलंकित–चरित्र पात्रों को ले लेकर उनमें आदर्श भावनाएँ भरकर प्रस्तुत किया है।

जहाँ तक कालिदास के ग्रन्थों में स्त्रियों के स्थान की बात है तो उन्होंने स्त्री–पुरूष के सामाजिक प्रतिष्ठा या समाज में स्त्रियों को उच्च स्थान देने में कहीं कोई कमी नहीं की है। नारी–केन्द्रित उनका सर्वोच्च नाटक अभिज्ञानशाकुंतलम् है जो स्त्री की सामाजिक मर्यादा को बचाए रखने में कहीं कोई सामंजस्य नहीं करता है। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रंथो में स्त्रियों के कई रूपों को अत्यन्त प्रभावशाली रूप में चित्रित किया है। उन्होंने स्त्रियों की जिन विशेषताओं को परिलक्षित किया है उनमें से कुछ निम्न प्रकार से हैः–

1. स्त्री–पुरूष समता, 2.दृढ़ निश्चयी, 3. प्रकृति–प्रेमी, 4. ललित–कला में दक्ष, 5.स्त्रियोचित सौंदर्य 6. चरित्र की उदात्तता।

1. स्त्री–पुरूष समता – यथा शोध–सार में वर्णित है, रघुवंश महाकाव्य के प्रथम सर्ग के प्रथम श्लोक के द्वारा ही महाकवि ने शिव और पार्वती को वाक् और अर्थ के समान बताया है। महाकवि शिव भक्त थे किन्तु उन्होंने माता पार्वती को सदैव उनके बराबर ही सम्मान दिया हैं। ''कुमारसंभवमम्'' महाकवि कालिदास रचित कार्तिकेय के जन्म पर आधारित महाकाव्य है जिसकी गणना संस्कृत के पंच महाकाव्यों में की जाती है। हिमालय वर्णन, तपस्विनी पार्वती, विनयवती पार्वती, तथा प्रगल्भा पार्वती आदि विविध रूपों में नारी का असाधारण चित्रण महाकवि ने किया है। उन्होंने माता पार्वती के कठिन तप का वर्णन कर स्त्री की गंभीरता एवं सक्षमता को भी बखूबी दिखलाया है। महाकवि ने रति के प्रेम की पराकाष्ठा दिखाते हुए कहीं भी उसे कामदेव से कमतर नहीं दिखाया है। रति के विलाप का ऐसा मार्मिक वर्णन महाकवि ने किया है कि देवताओं के हृदय भी विचलित हो गए।[3]

अथ सा पुनरेव विह्वला वसुधालिङ्गन धूसरस्तनी।

विललाप विकीर्णमूर्धजा समदुःखामिव कुर्वतीस्थलीम्।।

रति बसंत से कहती है कि वह और कामदेव एक हैं, यदि कामदेव मृत हैं तो रति को भी मृत समझो और एक ही जलाञ्जलि से दोनों का प्रेत–तर्पण भी करना। [4]

इति चापि विधाय दीयतां सलिलस्याञ्जलिरेक एव नौ

अविभज्य परत्र तं मया सहितः पास्यति ते स बान्धवः।।

यह रति के प्रेम की पराकाष्ठा ही रही कि उसे कामदेव मृत्युपरांत भी प्राप्त हुए।

2. दृढ़ निश्चयी– ''कुमारसंभवम्'' की स्त्री–पात्र पार्वती दृढ़ संकल्पित पात्र का ऐसा स्वरूप है जिससे बढ़कर अन्य कोई पात्र आज तक नहीं हो सका। जब महादेव ने कामदेव को भस्म कर दिया तब पार्वती समझ गईं कि महादेव को केवल सौंदर्य और प्रेम से प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अन्य स्त्री होती तो टूट जाती परंतु उन्होंने दृढ़ निश्चय किया कि वह कठिन तप करेंगी जब तक कि महादेव को अपने स्वामी के रूप में प्राप्त न कर ले। [5]

इयेष सा कर्तुम् वन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।

अवाप्य ते वा कथमन्यथा द्वयं तथाविधं प्रेम पतिश्च तादृशः।।

जब महादेव प्रसन्न नहीं हुए तो वृक्षों से गिरे पत्ते भी खाना छोड़ दिया पार्वती ने जिससे उनका नाम 'अपर्णा' पड़ा।[6]

स्वयं विशीर्णद्रमपर्णवृत्तिता परा हि तसस्तया पुनः।

तदप्यपाकीर्णमतः प्रियंवदां वदन्त्यपर्णेति च तां पुराविदः।।

3. प्रकृति–प्रेमी नारी– महाकवि कालिदास प्रकृति के अनन्य प्रेमी हैं। उनके सभी ग्रन्थ एवं पात्र प्रकृति से अटूट बंधन में बँधे हुए हैं। चाहे वह 'मेघदूत' के य़क्ष एवं यक्षिणी हो, 'अभिज्ञान' की शकुंतला हो 'विक्रमोर्वशीयम्' की उर्वशी हो या '**मालविकाग्निमित्रम्**' की मालविका हो या 'कुमारसंभवम्' की माता पार्वती। सभी पात्र प्रकृति से अभिन्न रूप से संयोजित हैं। प्रकृति की मनोरम छटा के बीच पली–बढ़ी शकुंतला जब ऋषि कण्व के आश्रम से विदा होने को होती है तो प्रकृति ही उसका श्रृंगार करती है। किसी वृक्ष ने चन्द्रमा के **समान** उज्जवल और मांगलिक रेशमी वस्त्र दिया है तो किसी ने महावर।[7]

क्षौमं केनचिदिन्दुपाण्डुतरूणा माङ्गल्यमाविष्कृतं

निष्ठ्यूतश्चरणोपभोगसुलभो लाक्षारसः केनचित्।

अन्येभ्यो वनदेवताकरतलैरापर्वभागोत्थितै–

र्दत्तान्याभरणानि तत्किसलयोद् भेदप्रतिद्वन्द्विभिः।।

इस तरह नारी सौंदर्य के साथ प्रकृति की एकात्मकता अन्यत्र दुर्लभ है। शकुंतला का प्रकृति प्रेम सामान्य बात नहीं हैं। महाकवि के द्वारा नाटक की मुख्य पात्र के द्वारा प्रकृति की सेवा करने से तात्पर्य यह है कि एक स्त्री किस प्रकार प्रकृति संरक्षण कर सकती है, प्रमाणित करना है। शकुंतला पेड़–पौधों के संरक्षण में, पालन–पोषण में इस प्रकार लगी रहती थी कि नवीन पत्तों (किसलय) को और पुष्पों को उनकी डालियों से अलग नहीं करती थी। जैसा कि अभिज्ञानशाकुन्तलम् में महर्षि कण्व ने शकुंतला के विषय में कहा हैं–[8]

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युष्मास्वपीतेषु या

नादत्ते प्रियमण्डनापि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।

आद्ये वः कुसुमप्रसूतिसमये यस्या भवत्युत्सवः

सेयं याति शकुंतला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।

इसके अतिरिक्त शकुंतला के पति गृह जाने के विषय में जानकर हिरण एवं हिरणियों ने कुशों के ग्रासों को छोड़ दिया है। मयूरों ने नाचना बन्द कर दिया है, लताओं ने पीले पत्तों को गिराया है और इस प्रकार से पेड़–पौधे मानों आँसुओं को छोड़ रहे हैं। [9]

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।

अपसृतपाण्डुपत्रा मुचन्त्यश्रूणीव लताः।।

विदाई बेला में शकुन्तला वासन्तीलता से भावविभोर होकर आलिंगन करती है एवं उसे अपनी बहन बताते हुए पिता कण्व से प्रार्थना करती है कि शकुन्तला के समान ही वो वासन्तीलता की देखभाल करे। अपनी दोनों सखियों को धरोहर रूप में वासन्तीलता सौंपती है। [10]

''हला एषा दृयोर्युवयोर्ननु हस्ते निक्षेपः''

प्रकृति संरक्षण का इतना वृहत् संदेश महाकवि ने अपनी नायिका के माध्यम से दिया है क्योंकि एक स्त्री ही पेड़–पौधों से मातृवत् स्नेह कर सकती है एवं उसकी सुरक्षा का पूर्ण ध्यान रखकर इस सृष्टि को सुचारू रूप से चलाने में सहायता कर सकती हैं।

ललित–कला में दक्ष – महाकवि ने अपने ग्रन्थों में स्त्री–पात्रों को अनेक गुणों से भूषित दिखलाया है। नारियों ने अपनी सुकुमारता से अपनी सात्विक भावनाओं को ललित कथाओं के माध्यम से दिखलाया है। सभी प्रकार की कलाओं को ललित रूप मे आरोपित किया है। [11]

''गृहिणी सचिवः सखी मिथ! प्रियशिष्या ललिते कला विधौ''

ललित कला से तात्पर्य काव्य संगीत, नृत्य, चित्रकला आदि से होता है। यथा कालिदास के ''मालविकाग्निमित्रम्'' में नृत्य को ललित शिल्प माना है।[12]

भो वयस्य न केवल रूपे शिल्पेऽय द्वितीया

काव्य कला – दुष्यन्त के प्रणय निवेदय पर शकुन्तला छन्द रचना करती है। यानि कालिदास की स्त्री–पात्रों काव्य–कला में भी पारंगत थी। [13]

''हला चिन्तितं मया गीतवस्तु। न खल संनिहितानि पुनर्लेखन साधनानि।''

अपनी सखियों के कहने पर शकुंतला कमलिनी के हरे पत्ते पर ही नखों से छन्द रचना करती है।

''विक्रमोर्वशीयमृ'' में उर्वशी का काव्य–बन्ध उल्लेख मिलता है।''[14]

''काव्यबन्धः उर्वष्याः''

संगीत कला– महाकवि ने अपनी नायिकाओं को संगीत कला में भी दक्ष दिखलाया है। ''उत्तरमेघ'' में यक्ष प्रिया के इस गुण का पता चलता है। [15]

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्यः निक्षिप्य वीणां

मदगोत्राङ्क विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा।

मेघदूत में य़क्ष की पत्नी वीणा वादन करती है। यक्ष मेघ से कहता है कि चित्र–लेखन या वीणा बजाने में आदि में व्यस्त उसे दिन में मेरा वियोग वैसा न सताएगा। [16]

''सव्यापारामहनि न पीडयेन्मद्वियोगः''

चित्रकला – महाकवि कालिदास ने अपनी स्त्री–पात्रों को चित्रकला में भी पारंगत बताया है। उत्तरमेघ में यक्षिणी द्वारा पद्म शंख के चित्र एवं ''मालविकाग्निमित्रम्'' में नाग मुद्रांकित अंगुलिका वस्तु–चित्र के रूप में प्राप्त होते हैं। (मालविकाग्निमित्रम्) [17]

मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ति (उत्तरमेघ)

कुमारसंभवम् में पार्वती जी ने स्मरण शक्ति के माध्यम मे से भगवान शिव का चित्र बनाया था।

नृत्यकला – महाकवि की नायिकाएँ एवं सह नायिकाएँ नृत्यकला में भी पारंगत थीं। ''मालविकाग्निमित्रम्'' में नायिका मालविका अपने गुरू गणदास की अध्यक्षता में श्रेष्ठ नृत्य कला ''छलिके'' नृत्य राजदरबार में प्रस्तुत करती है। इरावती भी नृत्य करती हैं। राजकुमारी होकर भी राजदरबार में नृत्य करना अपयश का कारण नहीं अपितु स्त्री के समाज में आधुनिक होने की पहचान दिखाता है। महाकवि के हृदय में नारियों को लेकर कोई पक्षपात नहीं था। नृत्य करती हुई मालविका अग्निमित्र के हृदय में घर कर लेती है।[18]

''परिकल्पितो विधात्रा बाणः कामस्य विषदिग्धः ''

महाकवि ने नाट्य–यज्ञ की प्रशंसा नाट्याचार्य गणदास से इन शब्दों में कराई है।[19]

देवानामिदमामनन्ति मुनयः शान्तं क्रतुं चाक्षुषं

रूद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे स्वाङ्ग् विभक्तं द्विधा।

त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते

नाट्यं भिन्नरूचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम्।।

स्त्रियोचित सौंदर्य – महाकवि कविकुल कलाधर के काव्यों में नारी–पात्र काव्य की प्राण वाहिनी धारा है, जिसमे प्रेम स्पंदन होता रहता है। सही मायने में स्त्री ही सुख का मूल आधार, त्रिभुवन का आधार और त्रैलोक्य रूपिणी के रूप में भी शैवागमों में प्रशंसित रही हैं। यद्यपि आचार्य भरत ने स्त्री को सुख का मूल एवं काम का आलंबन माना है तथापि केवल अंग सौदर्य को ही महत्व नहीं दिया है अपितु स्त्री के शील सौजन्य, आचरण की पवित्रता, जीवन की प्रकृति और अवस्था को विशेष महत्व दिया है। स्त्री के जीवन–प्रकृति के अनुरूप ही आचार्य भरत ने अलंकारों की

परिकल्पना की है, जो नारी जीवन को, आंतरिक एवं बाह्य सौंदर्य, सुकुमारता, सलज्जता, पवित्रता और स्नेहशीलता की ज्योति से विभूषित करते हैं।[20]

अलंकारस्तु नाट्यज्ञैरोयाः भावरसाश्रीयाः।

पोवनेआश्रयाधि काः स्त्रीणां विकाराः वक्त्र गात्रजाः।।

आचार्य भरत ने स्त्री की शारीरिक रचना, हृदय सौष्ठव और उसके आकर्षक रूप–विन्यास एवं विलक्षण स्वभाव का विश्लेषण करते हुए उसकी प्राकृतिक भिन्नता के आधार पर उसके तीन प्रकार बताए हैं– i उत्तम, ii मध्यम और iii अधम। महाकवि कालिदास ने अपने ग्रंथों में नारी–चरित्र की संकल्पना करते समय नाट्यशास्त्र में वर्णित स्त्रियोचित गुणों के आधार पर ही अपनी नायिकाओं, सहनायिकाओं का महिमामंडन किया है। कवि कालिदास नारी के सौंदर्य से अच्छी तरह परिचित थे। उन महिमामंडित नारी सौंदर्य पर दृष्टिपात करने पर ऐसी प्रतीति होती है कि मानो उन्होंने नारी को अत्यधिक निकट से देखा और परखा है। महाकवि कालिदास ने अपने स्त्री–पात्रों के मात्र रूप–सौंदर्य का ही वर्णन नहीं किया अपितु अन्य गुणों का भी वर्णन सौंदर्य गुण की तरह करने में कंजूसी नहीं की है। ''कुमारसंभवम्'' के प्रथम सर्ग में पार्वती जी का वर्णन करते हुए कवि लिखते हैं कि– विद्यारम्भ करने की आयु में पहुंचते ही पूर्व जन्म के संस्कारों के कारण उनमें सब विद्यायें इस प्रकार अवतीर्ण होने लगी जैसे शरद आगमन से गंगा में हंस मालाएँ या रात्रि प्रारंभ होते ही हिमालय की दिव्य औषधियों में उनकी स्वाभाविक दिव्य–ज्योति अवतीर्ण हो जाती है।''[21]

तं हंस मालाः शरदीव गंगां महौषधिंनक्तमिवात्मभासः।

स्थिरोपदेशामुपदेश काले प्रपेदिरे प्राक्तन जन्म विद्याः।।

किशोरवास्था के समाप्त होने पर पार्वती उस यौवन को प्राप्त हुई जो उसके मनोहर अंगों का स्वाभाविक अलंकार था, मद्य के अभाव में मद का साधन था और पुरूषों के अतिरिक्त कामदेव का (कोई अन्य) अस्त्र था।[22]

असम्भृतं मण्डनमांगयष्टे रनासवाख्यं करणं मदस्य।

कामस्य पुष्पव्यतिरिक्तमस्त्रं बाल्यात्परं साऽय वयं प्रपेदे।।

चरित्र की उदात्तता – महाकवि ने अपने ग्रन्थों में अपनी नायिकाओं के चरित्र में अपनी लेखनी की कूची से ऐसा रंग भरा है कि नायिकाओं के संग–संग सह नायिकाएँ एवं अन्य महिला पात्र भी सर्वप्रिय एवं सर्वमान्य बन बैठी हैं। 'कुमारसंभवम्' की नायिका माता–पार्वती के चरित्र–चित्रण के विषय में लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के समान है। स्वयं जगत्जननी होकर भी पार्वती शिवजी को देखकर संकोच करती है क्योंकि महाकवि उनको स्त्रियोचित गुणों से भरा हुआ भी दिखाना चाहते हैं।[23]

''अथो वयस्यां परिपार्श्ववर्तिनी विवर्तितानञ्जननेत्रमैक्षत''।।

यह एक उदात्त चरित्र का उदाहरण है। संकोच स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है और पार्वती यद्यपि देवी हैं तथापि महाकवि को पता है कि उनका चरित्र साधारण स्त्रियों के लिए प्रेरणास्रोत है। इसी प्रकार कवि कहते हैं कि जब शिव ने साक्षात् दर्शन देकर पार्वती का हाथ पकड़ा तो हर्ष एवं संकोचवश पार्वती न तो अपने कदम आगे बढ़ा सकी और न रोक सकी।[24]

तं वीक्ष्य वेप्थुमती सरसाङ्ग यष्टिर्निक्षेपणाय पदमुद्धृमुद्वहन्ती।

मार्गाचल व्यतिकराऽऽकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न ययौ न तस्थौ।

बात जब विश्ववन्द्य नाटक ''अभिज्ञानशाकुन्तलम्'' नाटक की नायिका शकुन्तला के चरित्र की आती है तो हमें पता चलता है कि महाकवि के मन में स्त्रियों को लेकर कितना उच्च स्थान है। वो कभी भी अपनी नायिका को अमर्यादित नहीं दिखा सकते। उनके मन में नारी के प्रति जो संवेदना है एवं नारियों को उच्च स्थान पर रखने का जो उनका लक्ष्य है वो इस नाटक में पूर्णतः सिद्ध होता दिखता है। 'अभिज्ञान' की जो मूल कथा है उसमें कण्व फल लाने वन में गये थे। इसी बीच में शकुन्तला का प्रेम–विवाह एवं गर्भाधान हो जाता है। परंतु महाकवि को शकुंतला के मर्यादा की रक्षा करनी थी इसलिए इस नाटक में कण्व

शकुन्तला के अनिष्ट–शमन हेतु सोमतीर्थ गये हैं एवं कई माह बाद वन लौटते हैं। यहाँ कवि इतने ज्यादा समय की कल्पना इस हेतु करते हैं कि शकुन्तला की सामाजिक प्रतिष्ठा का हनन नहीं हो।[25]

''दुहितरं शकुन्तलामतिथिसत्काराय नियुज्य दैवमस्याः प्रतिकूलं शमयितुं सोमतीर्थं गतः।

उपसंहार : महाकवि कालिदास के ग्रन्थों को आत्मसात करने पर हमें उनके द्वारा नारी पात्रों का महिमामंडन ही दृष्टिगोचर होता है।

संदर्भ :

1) रघुवंशम् 1/1
2) अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/18
3) कुमारसंभवम् 4/4
4) कुमारसंभवम् 4/37
5) कुमारसंभवम् 5/2
6) कुमारसंभवम् 5/28
7) अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/4
8) अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/8
9) अभिज्ञान शाकुन्तलम् 4/11
10) अभिज्ञान शाकुन्तलम्, चतुर्थ अंक
11) रघुवंश 8/67
12) मालविकाग्निमित्रम् ,द्वितीय अध्याय
13) अभिज्ञान शाकुन्तलम्,तृतीय अंक
14) विक्रमोर्वशीयम् , द्वितीय अंक
15) मेघदूत, उत्तरमेघ 24
16) मेघदूत , उत्तरमेघ 25
17) उत्तरमेघ ,
18) मालविकाग्निमित्रम्, 2/13
19) मालविकाग्निमित्रम्, ¼
20) नाट्यशास्त्र , 22/4

21) कुमारसंभवम्, 1/30
22)कुमारसंभवम्,1/31
23)कुमारसंभवम्,5/5
24)कुमारसंभवम्,5/85
25)अभिज्ञान शाकुन्तलम्, प्रथम अंक

“डॉ.हर्षदेव माधव वीरचित 'बुभुक्षित: काक:' पुस्तक का समीक्षण”

जया सुनील मुंघाटे
(संशोधक छात्रा)
शासकीय विदर्भ ज्ञान विज्ञान संस्था
अमरावती विद्यापीठ, अमरावती४४४६०४
jayamunghate1988@gmail.com

प्रस्तावना

संस्कृत में बालसाहित्य अत्यल्प हैं। अन्य विद्वान जो मानते हैं कि संस्कृत साहित्य में कोई कमी नहीं हैं, वे रामायण, महाभारत, पंचतंत्र और हितोउपदेश में बालसाहित्य पर भी नजर डालते हैं। वे गर्व से कहते हैं की संस्कृत में सब कुछ उपलब्ध हैं, और बाल साहित्य भी उपलब्ध हैं। बाल साहित्य सृजन के लिए एक विशेष प्रतिभा की आवश्यकता होती हैं। हर कोई बाल साहित्य नहीं रच सकता। डॉ.राधावल्लभ त्रिपाठी 'बुभुक्षित: काक:' इस पुस्तक की प्रस्तावना में कहते हैं, **'केचन प्रतिभासम्पन्नाः महाकवयः क्वचित् बालसाहित्यलेखने स्वशेमुषीं व्यापारयन्ति, बालकानां कृते सत्यमेवोपादेयं साहित्य रचयितुं च प्रभवन्ति।**'1 डॉ.हर्षदेव माधव जी ने संस्कृत बाल साहित्य निर्माण किया हैं। संस्कृत साहित्य में उनका यह योगदान महत्वपूर्ण हैं। उनके 'बुभुक्षित: काक:' इस बालकथा संग्रह का समीक्षण प्रस्तुत शोधपत्र का विषय हैं।

उद्दीष्ट

मैं आचार्य उपाधि के लिए संशोधन रत हुँ। मैने अध्ययन के

लिए पाँच संस्कृत कथा संग्रहों का चयन किया है। उन कथा संग्रहों में डॉ. हर्षदेव माधव जी की 'बुभुक्षीत: काक:' यह बालकथा संग्रह अंतर्भूत है। इसलिए इस पुस्तक का समीक्षण प्रस्तुत लेख में किया है।

व्याप्ती और मर्यादा

डॉ. हर्षदेव माधव गणमान्य लेखक हैं। उन्होंने गुजराती, हिंदी, अंग्रेजी, संस्कृत आदि भाषाओं में विविध प्रकार की ग्रंथरचनाऐं की है। यहाँ केवल 'बुभुक्षित: काक:' इस केवल एक पुस्तक का समीक्षण किया है 1

डॉ. हर्षदेव माधव जी का संक्षिप्त परिचय

बीसवीं शताब्दी की संस्कृत कविता के नूतन घनश्याम कहलाने वाले डॉ. हर्षदेव माधव बीसवी शती के विलक्षण कवि हैं। अपने को राधा नही किंतू मालती का माधव कहलाने वाले 'डॉ. हर्षदेव माधव' जी का मूल नाम हर्षवदन मनसुख लाल जानी हैं। साहित्य जगत में ईंहे हर्षदेव माधव नाम से जाना जाता है। माधव के आध्यात्मिक गुरु नंदकिशोर व्यास हैं। जिन्होने हर्षदेव माधव को **प्रकाशानंदनाथ** नाम प्रदान किया। स्वअलौकिक कला से सृजन को रसास्वादन कारण हेतु इनका जन्म 20 अक्टूबर 1954 को वरतेज ग्राम जिला भावनगर, गुजरात में हुआ। इनके पिता का नाम 'स्व.श्री.मनसुखलाल जानी' तथा माता का नाम नंदन बेन जानी था। इनके सात वर्ष तक पितृसुख प्राप्त कराके विलक्षण प्रेम के सागर पिता पंचतत्व मे विलीन हो गए। प्राथमिकशाला में शिक्षिका का कार्य करने वाली माता ने अपनी ममता से संवर्धन किया। स्नेहिल ज्येष्ठ भ्राता 'भारत' और स्नेह वत्सला भगिनी 'हर्षिका' से प्रेम का सहारा मिला। मैट्रिक पास होने के बाद पालीताना में पोस्ट ऑफिस में टेलीग्राम क्लर्क की सेवा की, किंतु प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण महाविद्यालय शिक्षन संभव

नहीं हो सका। कवि ने न तो संस्कृत परंपरा से सीखी, न महाविद्यालय में विधिवत उच्च शिक्षा प्राप्त की है। न परिवार में कहीं संस्कृत व गुजराती विषय लेकर पढ़ाई की। मेहनत और लगन के साथ-साथ ईश्वर के आशीर्वाद से स्वयं संस्कृत का ज्ञान अर्जन किया। यह एक चमत्कार है।

शासकीय सेवा करते हुए ही डॉ. हर्षदेव माधव जी ने संस्कृत भाषा का ज्ञान प्राप्त किया। उद्योग का श्री गणेश १९७६ में पालीताना में तार विभाग में लिपिक के रूप में किया। १९८१ से १९८७ तक अहमदाबाद स्थित कस्तूरबा गांधी उच्चतर माध्यमिक विद्यालय में शिक्षक के रूप में सेवा प्रदान की। अहमदाबाद में विद्यमान एच.के.[H.K.] आर्ट्स महाविद्यालय में उन्होंने संस्कृत अध्यापन का कार्य किया।2

शैक्षणिक उपलब्धियां

डॉ. हर्षदेव माधव की विद्यालयी शिक्षा का आरंभ वरवेज ग्राम के तालुका विद्यालय में हुआ। माध्यमिक शिक्षा कोलियाक विद्यालय जिला भावनगर गुजरात में प्राप्त की। कक्षा एकादशी से अधिस्नातक पर्यंत संपूर्ण शिक्षण स्वयंपाठी छात्र के रूप में हुआ। इस अवधि में मानस गुरु श्री एम.वी. जोशी का पत्र द्वारा यथा समय मार्गदर्शन प्राप्त हुआ। १९७५ में बी.ए. उपाधि सौराष्ट्र विश्वविद्यालय से प्राप्त की।

- १९८१ में एम.ए. उपाधि अलंकार शास्त्र के साथ सौराष्ट्र विश्वविद्यालय से प्रथम श्रेणी में प्राप्त की।
- १९८३ में गुजरात विश्वविद्यालय से शिक्षा शास्त्री (बी.एड.) उपाधि प्राप्त की।

- १९९० में डॉ.गौतम भाई पटेल के सम्यक मार्गदर्शन में मुख्य पुराणों में श तथा उसका प्रभाव विषय पर गुजरात विश्वविद्यालय से विद्यावारिधी (पीएच.डी) उपाधि प्राप्त की।
- गुरु नंदकिशोर व्यास के सानिध्य में २००५ में शाक्ततंत्र की पूर्णाभिषेक दीक्षा को अंगीकार किया वह तंत्र के विषय में दो ग्रंथों की रचना की है।
- उनको संस्कृत लेखन के लिए 2006 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला 1
- उन्हें अनेक पुरस्कारों से सम्मानित किया गया।

डॉ.हर्षदेव माधव इनके संस्कृत रचनाएॅ

- रथ्यासु जंबुवरणाम सिराणाम (1985)
- अलकनंदा (1990)
- सबदानम निर्मक्षीकेसु ध्वमसावसेसु (1993)
- मृगया (1994)
- लवरासदिग्धः स्वप्नमायाः पर्वताः (१९९६)
- Brhannala (भाग) (1995)
- असिक्का मी मानसी (1996)
- निसर्ग सर्वे (1997)
- पुरा यात्रा श्रोतः (१९९८)
- कालोष्मी (१९९९)
- मृत्युशतकं (1999)
- सुसुमनायण निमग्न नौका (1999)
- भावस्थिरणी जनांतर सौहृदानी (2000)
- कन्नक्य क्षिप्तान माणिक्यानुपुराण (2000-2001),
- सुधासिंधोरमाडये (२००२)
- मानसो नैमिनारणम (2004)
- Rṣeh Kṣubdhe Cetasi (2004)

- तवा विरळ विरळ (2004)
- भाती ते भारतम (2007)
- स्पार्सलज्जाकोमला स्मृती (2006)
- तथास्तु
- उन्होंने 1992 तक संस्कृत में 2022 से अधिक कविताओं की रचनाएँ की।3

संस्कृत-नाटकों का संग्रह

- मृत्युराम कस्तुरीमृगोष्टी (1998)
- कल्पवृक्ष (२००१)

संस्कृत कादंबरी

- मुको रामगिरीभूत्वा (६/३/२००८)

डॉ.हर्षदेव माधव जी के विषय में **श्रीमती अलका गौतम** अपने प्रबंध में लिखती हैं डॉ. हर्षदेव माधव जी ने संस्कृत की समकालीन कविता के आधुनिक चेहरे को साकार करने का उल्लेखनीय कार्य किया हैं। डॉ. हर्षदेव माधव जी अपनी काव्य भाषा को संवेदनशीलता, विश्लेषणपरकता तथा अपने समकाल से जीवंत जुड़ाव के कारण अपनी काव्य भाषा को नवीन तेवर प्रदान करते हैं। डॉ. हर्षदेव माधव जी की कविताएँ एवं ग्रंथ संस्कृत काव्य में नवप्रवर्तन को संभव करने वाली, संश्लिष्ट तथा सार्वभौमिक चेतना संपन्न प्रतिभा के सृजनात्मक रूपांतरण की दृष्टि से यह रचनाएं डॉ.हर्षदेव माधव जी की कविता को संस्कृत के समकालीन कविता की प्रतिनिधि कविता बनाती हैं। और जो संस्कृत की ढांचागत कविता से स्वयं को मुक्त करने वाली कविता का उदाहरण बन जाती हैं।4

'बुभूक्षित: काक:' इस बालकथा संग्रह का संक्षिप्त परिचय

डॉ. हर्षदेव माधव वीरचित **'बुभूक्षित: काक:'** यह बालकथा

संग्रह कवी कुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय (रामटेक) विश्वविद्यालय द्वारा २०२० में नागपुर में आयोजित अखिल भारतीय प्राच्य विद्या परिषद के ५० वें अधिवेशन में प्रकाशित किया गया। 'बुभूक्षित: काक:' इस पुस्तक में कुल १३ बालकथाओं का संग्रह है। पुस्तक के प्रारंभ में कवि कुलगुरू कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय के तत्कालीन कुलगुरु डॉ. श्रीनिवास वरखेड़ी महोदय जी की प्रस्तावना है। तत्पश्चात डॉ. राजेंद्र मिश्र जी की नांदिवाक् और आगे डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जी की एक पठनीय प्रस्तावना है। 'बुभूक्षित: काक:' इस पुस्तक की प्रत्येक कहानी मनोरम है। प्रत्येक कहानी विशेष बालकों को ध्यान में रखकर लिखी गई है। अतः इन कथाओं में चींटी, कौवा, हाथी, बंदर, गधा, सांप आदि पशु-पक्षियों का उल्लेख मिलता है। यह सभी कहानियाँ न केवल मनोरंजन है बल्कि बालकों को व्यावहारिक और नैतिक मूल्य भी सिखाती हैं।

इस पुस्तक में प्रथम कहानी है **'तिस्रः पिपिलिकाः'** यानी तीन चीटियों की कहानी। कथा में तीन चीटियों द्वारा आम्रफल प्राप्त करने के लिए किए गए प्रयासों का वर्णन किया गया है। कहानी के अंत में चीटियों ने आम्रफल खाकर अपनी खुशी व्यक्त की है। मानव जीवन में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के बिना वास्तविक सुख एवं संतुष्टि का अनुभव नहीं किया जा सकता। अतः ऐसा दृष्टिकोण रखकर निरंतर प्रयास से जीवन में अपनी इच्छाओं की पूर्ति की जा सकती है।

दूसरी कहानी है **'तपस: सिद्धि:'** । इस कथा में वर्णित है कि, पुण्य कर्म का फल किस प्रकार लाभकारी होता हैं। इस कहानी में बताया गया हैं, **'सर्वे प्रकृतेः नियमान् पालयन्ति ते निरामयाः सन्ति । यत्र यज्ञाः भवन्ति तत्र पर्जन्यः काले वर्षति।'**5 अर्थात जो लोग प्रकृति के नियमों का पालन करते हैं वे स्वस्थ और निरामय होते हैं। जहां यज्ञ होता है, वहाँ नियमित वर्षा होती हैं। कहानी में कवि ने

पर्यावरण की रक्षा का महत्व बताया हैं। पर्यावरण के प्रति जागरूकता आज की जरूरत हैं।

तृतीय कहानी **'बुभुक्षितः काकः'** यह हैं। इस कहानी में एक कौवे ने रोटी के एक टुकड़े के लिए की हुई कोशिश यह वर्णित हैं।कोई भी चीज कष्ट से मिलती हैं। आसानी से कुछ नहीं मिलता। **'लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्'**6 अर्थात प्रयास से रेत से भी तेल निकाला जा सकता हैं।

अगली कहानी **'रात्रिदिवसौ कथं उभवताम्'** यह हैं। यह कहानी अत्यंत मनोरंजनात्मक हैं। जब इस ब्रह्मांड में कोई नहीं था केवल एक ही शक्ति और प्रजापति थे और उन्हीं से रात और दिन अस्तित्व में आए, साथ ही देवताएं स्वर्ग में मनुष्य पृथ्वी पर और राक्षस नरक में प्रसन्न होते, यह इस कहानी में वर्णित हैं। यह विश्वोत्पत्ती की ज्ञानवर्धक कहानी हैं।

पंचम कथा **'प्राणीनां तीर्थस्ययात्रा'** यह हैं। इस कहानी में हास्य रस परिपूर्ण हैं। अच्छे कर्म का महत्व भी बताया गया हैं। इस कहानी में जो जानवर एक दूसरे के दुश्मन होते हैं वह एक दूसरे के दोस्त बन जाते हैं। आपसी मित्रता और अपनी गलतियों को स्वीकार करना इस कहानी द्वारा दिए गए दो महत्वपूर्ण संदेश हैं।

इसके बाद की कहानी है **'मन्त्राणांशक्तिः'**। यह कहानी अद्भुत, रम्य होकर पाठकों को अवश्य ही पसंद आने वाली हैं। इस कहानी में बताया है कि अपना ज्ञान अपने से कभी भी कोई भी नहीं चुरा सकता। शिव पंडित के ज्ञान के प्रभाव से उनके राज्य की सारी परेशानियाँ दूर हो गई। शिव पंडित ने खुद के ज्ञान से खुद का कल्याण किया। इस कहानी में यह कहावत चरितार्थ है,' **'स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान सर्वत्र पूज्यते।'**7

सातवीं कहानी **'क्रोधालु:ऋषि:'** की हैं। इस कहानी में क्रोध के परिणामों को स्पष्ट रूप से बताया गया हैं। यह एक क्रोधालु ऋषि की कहानी हैं, जिसका क्रोधवश नाम 'क्रोधदर्शन' हो गया था। लेकिन अंततः उसे अपनी गलती का एहसास होता हैं और जैसे ही क्रोध का परिणाम उसके सामने आता हैं, वह क्रोध त्याग देता हैं। और पुनः उसे सुदर्शन नाम प्राप्त होता हैं। यह कहानी 'क्रोधा: नाशस्य कारणम्' एक सिद्धांत को स्पष्ट करती हैं।

अगली कहानी हैं, **'केशव: धीवर: राजकुमार: अभवत्'**। यह कहानी में वर्णित है कि कैसे पूर्व जन्म में किया गया सत्कर्म व्यक्ति का भाग्य बदल सकता हैं। इस कहानी में यह सिद्धांत बताया गया है कि हमेशा अच्छे कर्म करने चाहिए और उसका फल हमेशा अच्छा मिलेगा।

अगली कहानी **'दुर्ललित: शक्तिसिंह:'** यह हैं। यह कहानी बताती है कि एक दुर्लभ बच्चा किस प्रकार कष्ट भोगता है इस कहानी के अंत में गुरु उपदेश देते हैं- **"तिस्रः देवताः वर्तन्ते, माता, पिता गुरुश्च। अतः तेषाम् आज्ञा सदैव शिरोधार्या कर्तव्या सदैव तेषाम् वचनानि श्रोतव्यानि जीवने सदैव कल्याणम् भविष्यती युष्माकम्।"**8

'मातृ देवो भवः, पितृ देवो भवः।

आचार्य देवो भवः, अतिथि देवो भवः।।9

यह अनुष्ठान कहानी देती हैं। यह कवि द्वारा दी गई एक अत्यंत महत्वपूर्ण सलाह हैं।

दसवीं कहानी है **'दयावान राक्षस:'**। इस कथा में दयालु राक्षस के कार्य से मन प्रसन्न होता हैं। सभी राक्षस बुरे नहीं होते, कुछ अच्छे भी होते हैं। उसी का उदाहरण यह कथा हैं। इसमें राक्षस भगवान की पूजा करता हैं। और सबका भला करता हैं।

11वीं कहानी हैं **'बुद्धिमान गोपाल:'**। यह कहानी एक निस्वार्थ गर्दभ और उसके मालिक से संबंधित हैं। इस कहानी में उनके निस्वार्थ भाव का वर्णन किया गया हैं। जानवरों को प्यार करना चाहिए, जैसे हमें कष्ट होता है पशु-पक्षियों को भी कष्ट होता हैं। इस कहानी में कृष्ण नाम का कुंभकार अपने गोपाल नाम के गर्दभ को हमेशा अपने साथ रखता हैं। इसलिए कृष्ण की तरह वह गर्दभ भी निस्वार्थ होकर काम करता हैं। निस्वार्थ भाव से कार्य करना चाहिए यह तत्व इस कहानी में सूचित किया हैं।

अगली कहानी **'भुतस्य शिखा'** यह हैं। इस कहानी में भरपूर हास्य रस हैं। चार किशोरों ने अपने साहसिक कार्य से अपने गाँव का दृश्य बदल दिया। उन्होंने महाकाल नामक भूत का भी हृदय परिवर्तन किया और उसे दोबारा गलत काम न करने की प्रतिज्ञा करवाई। साहसिक कार्य की कोई सीमा और उम्र नहीं होती अच्छे कार्य हमेशा अच्छा फल देते हैं।

अंतिम कहानी हैं **'गोकुलः मृत्युमुखात प्रत्यागच्छती'**। नाम से ही स्पष्ट हैं,की गोकुल मृत्यु के द्वारा से लौट आया हैं। इस कहानी में वर्णित है कि अच्छे कर्मों से मृत्यु भी टल जाती हैं। कथा के अंत में अत्यंत हृदयस्पर्शी उपदेश हैं _

'वत्स । स्मर, त्वं धर्मरहस्यम्। तृषार्तेभ्यः जलम्, बुभुक्षितेभ्यः अन्नम्, पित्रोः शुश्रूषा, अतिथीनां स्वागतं, जीवस्य औदार्यम् एतत् सर्वं महते पुण्याय कल्पते। मनुष्यः सुकृतैः मृत्योः मुखात् अपि स्वात्मानं रक्षितुं क्षमः- इति धर्मस्य रहस्यम् अस्ति।'

इस पुस्तक का अध्ययन करने पर उसकी कुछ खास विशेषताएॅ लक्षित होती हैं

- कवि की भाषा बालकों को भी समझ आएगी इतनी सरल हैं। उन्होंने कहीं भी बड़े-बड़े समास या क्लिष्ट वाक्य नहीं लिखे हैं।
- बालकों को संभाषण के लिए यह पुस्तक उपयुक्त हैं।
- बालकों को इस पुस्तक द्वारा नीति मूल्य सीखाएँ गए हैं।
- इन कहानियों में लघु लघु वाक्यो का प्रयोग किया हैं और कथा के पात्रों का संभाषण अंतर्भूत हैं। इसलिए संस्कृत संभाषण पढ़ाने के लिए यह पुस्तक उपयोगी हैं। उदा. परिश्रम से प्राप्त फल व्यक्ति की पवित्रता को पूरा करता हैं, पुण्य कर्मों का फल लाभकारी होता हैं, कौवे के द्वारा पुण्य कर्मों का महत्व, अच्छे कर्मों का फल सदैव सुखद होता हैं, माता-पिता गुरु और अतिथि सदैव आदरणीय होते हैं, व्यक्ति की बाहरी दिखावट से उसकी परीक्षा नहीं करनी चाहिएँ, करुणा और निस्वार्थता व्यक्ति को हमेशा ऊंचा उठाती हैं, सज्जन व्यक्ति कठोर व्यक्ति का मन भी परिवर्तित कर सकता हैं। इत्यादि नीतिमूल्य इन कथाओं में अंतर्भूत हैं।
- इन सभी कहानियाँ को पढ़ने के बाद पता चला कि यह सभी कहानियां आज की पीढ़ी के बालकों को ज्ञान, नैतिकमूल्य, शिष्टाचार सम्मान, संस्कृत संभाषण कौशल्य, आदि सीखाने में उपयोगी हैं।
- यह सभी कहानियां बहुत ही रोचक और शिक्षाप्रद हैं। कहीं कोई निरसता नहीं हैं।
- इन सभी कहानियों में संवाद उल्लेखनीय हैं। ये कहानी यह समझने के लिए महत्वपूर्ण है की, संभाषण में लघु-लघु वाक्य का प्रयोग कैसे करें, संबोधन कहा और कैसे करना हैं,प्रश्न कैसे पूछना हैं ,इन सबके लिए महत्वपूर्ण हैं।

- इन कथाओं में वर्णित सभी नीतिमूल्य केवल आज के बालकों को ही नहीं तो भविष्य में भी बालकों को यह कथाएं महत्वपूर्ण रहने वाले हैं।
- इन सब कथाओं के पात्र कौआ, चीटी,हाथी,गर्दभ,बंदर, ऐसे पशु पक्षी हैं। पंचतंत्र के समान पशु पक्षियों का उल्लेख कथा में उन्होंने किया हैं। और पशु पक्षियों की विशेषताएँ उन्होंने बताई हैं, जैसे-पिपीलिका की जिज्ञासा और परिश्रमशीलता, हाथी की सहायक शीलता, गर्दभ की आज्ञाकारीका, कौवे की दुर्बलता आदि...
- इन सभी कथाओं में पशु-पक्षी मनुष्य वाणी में बातें करते हैं। पंचतंत्र का यह वैशिष्ट्य कवि ने अपनाया हैं।
- सभी कथाएँ लघु है दीर्घ कथाएँ नहीं हैं।
- यह सब कथाओ में कवि का निसर्ग प्रेम व्यक्त किया हैं। क्योंकि सभी घटकों का अंतर्भाव कवि ने अपनी कहानियों में भी किया हैं।

इन सभी कहानियों में व्यक्ति चित्रण से लेकर पशु-पक्षियों की हर एक अच्छी और बुरी बातें कवि ने यहाँ वर्णित की हैं। और इसीलिए यह पुस्तक सभी उम्र के वर्ग के लिए के पठनीय हैं। पुस्तक की प्रस्तावना में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी कहते हैं_ **'हर्षस्यायं विषयो यद् हर्षदेवमाधवेन बालसाहित्यरचनायै लेखनी व्यापारिता । अस्य कासुचित् कथासु शिशुसुलभस्य निश्छलस्य निर्मलस्य आनन्दस्य सहज उल्लासो विलसति।'**10 यह अभिप्राय यथार्थ हैं। इस पुस्तक के लिए निश्चित ही डॉ.हर्षदेव माधव जी वंदनीय हैं।

संदर्भसूची

१. बुभुक्षितः काकः - पृ.क्र. ६
२. डॉ.अलका गौतम (2016) डॉ. हर्षदेव माधव का (1985-2010) तक के संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन 1

३. आंतरजालीय l
४. डॉ.अलका गौतम (2016) डॉ. हर्षदेव माधव का (1985-2010) तक के संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन l
५. बुभुक्षितः काकः - पृक्र १८
६. नितिशतकम् - मूर्खपद्धती श्लोक क्र.४
७. नितिशतकम् - विद्वत् पद्धती लोक क्र.१६
८. बुभुक्षितः काकः - पृ.क्र. ७3
९. तैतरीय उपनिषद्
१०. बुभुक्षितः काकः - पृ.क्र. ७

संदर्भ ग्रंथसूची

- डॉ. हर्षदेव माधव (२०२०) बुभुक्षितः काकः - कुलसचिव क.का.सं.वि.प्र.भवन रामटेकl
- डॉ.अलका गौतम (2016) डॉ.अलका गौतम (2016) डॉ. हर्षदेव माधव का (1985-2010) तक के संस्कृत गद्य साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन l
- आंतरजालीय l
- भर्तृहरी (१९८४) नीतिशतकम् चौखंबा प्रकाशन l
- तैतरीय उपनिषद् l
- संस्कृत साप्ताहिक भवितव्यम् - डॉ.शारदा गाडगे (लेख)।

पदम पुराण में प्रतिपादित स्त्री विमर्श : एक अवधारणा आधुनिक परिप्रेक्ष्य के विशेष संदर्भ में

मंजु कुमारी
पीएच. डी. शोधच्छात्रा
संस्कृत, पालि एवं प्राकृत विभाग
महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक
E-mail- manju569772@gmail.com

वैदिक वाङ्मय अति विशालकाय प्राचीन ज्ञान–परम्परा का अक्षय माना गया है। जो देववाणी संस्कृत भाषा में अलौकिक एवं लौकिक साहित्य में प्राचीन संस्कृति का स्वर्णकाल उभर कर सामने आता है। जो गर्व का विषय है। जिसमें प्रतिपादित ऋषियों ने गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया है वहां ऋषिकाओं की भी गरिमा धूमिल नहीं की जा सकती। यह उनके तपोबल एवं सात्विक बुद्धि का उज्ज्वल परिणाम है। यही नहीं वैदिक ऋषिकाओं कर्त्तव्य निष्ठा, संयम, समर्पण, पतिव्रता धर्म, तपोबल से आर्य संस्कृति को गौरव के साथ अक्षुण्ण, प्रतिष्ठा, यश व सम्मान को भी प्राप्त किया है। इसी प्रवाह में भारतीय ज्ञान परम्परा के विकास में वेदों का सरल अनुवाद प्रायः पुराण साहित्य में उपलब्ध है। इसलिए पुराणों को वेदों का व्याख्याता कहा है। पुराणों में सृष्टिविज्ञान एवं मानवीय उपादेयता हेतु विविध विषय उद्धृत है। जिससे मानवीय जीवन को नई दिशा व जागृति मिली है। इसी संदर्भ में नारी की स्थिति को बड़ी सचेष्टता से उद्धृत किया है। जिससे समाज के विभिन्न पक्ष प्रभावित हुए हैं। यह कतिपय विषय वर्ण, आश्रम, संस्कार, विवाह आदि का पदम्पुराण में विवेचन हुआ है। अतः पदम्पुराण में स्त्री के भिन्न–भिन्न रूपों का निरुपण प्रस्तुत शोध पत्र के माध्यम से उद्धृत है। जिसमें नारी को सृष्टि विकास में महत्वपूर्ण स्थान माना गया है वहीं आध्यात्मिक क्षेत्र एवं अभ्युदय की उन्नति में जहाँ बाधक के रूप में मानी जाती है। मुक्ति के प्रशस्त मार्ग में भी नारी का अस्तित्व माना गया है।

नारी का समाज में धर्म, अर्थ, काम के क्षेत्र में श्रेष्ठ स्थान

माना गया है।

नारी का स्थान कन्या, **पत्नी** एवं मां के रूप में स्त्री–विमर्श प्रतिपादित है। पुराण साहित्य में कन्या को बहुत ही मान–सम्मान का दृष्टिपात हुआ है। परन्तु यह सर्वविदित है कि पुत्रों का महत्त्व कन्याओं की अपेक्षा अधिक था। तथापि ऐसा कोई स्पष्ट मत की पुष्टि नहीं हुई। कन्यादान पुण्य का प्रतीक माना जाता था। राजा अपनी पुत्री से अधिक स्नेह होने के कारण स्वगृह में जमाता सहित रहने की अनुमती होती थी। परंतु यह कुल एवं मर्यादाओं को क्षीण करता है और धर्म की परकाष्ठा को भी क्षति पहुंचाता है ऐसा ही प्रसंग पदम् पुराण में उद्धृत रानी पद्मावती के मध्यम से उक्त है–

तस्या कन्या महाभागा पद्माक्षी कमलानना।

नाम्ना पद्मावती नाम सत्यं धर्म परायणा।

सा सत्रीणां च गुणैर्युक्ता द्वितीयेव समुद्रजा।।

जिसका विवाह मथुरा के महाराज उग्रसेन से हुआ।[2]

वह परम सुन्दरी, पतिव्रता, सदैव स्वचित पति में ही रत रहता था। वह हमेशा धर्म का ही आचरण करती थी एवं धार्मिक कृत्यों को निपुणता से निर्वहण करती थी। परन्तु राजा सत्यकेतु कन्या के प्रति प्रेम भावना से ओत–प्रोत पद्मावती को विदर्भ देश में संदेश भेज बुला लेता है। **वहाँ** वह सदैव पतिचिन्तन में कल्पनाशील प्रवृत्ति के चलते श्रृंगार करती हुई, हमेशा पति की कामना में रत रहती थी। पतिव्रता स्त्री के लिए पति की अनुपस्थिति में श्रृंगार करना पतिव्रता धर्म की क्षीणता का प्रतीक है जो समाज में पापाचरण को बढ़ाती है। यथा पद्मावती को कंस पुत्र की प्राप्ति का होना यह उपरोक्त स्थिति का ही **दुष्परिणाम** है।

वस्तुतः कहा गया है कि वर्तमान समय में भी यह इन आचरणों से युक्त अनेक दुषप्रव्रतियां समाज के समक्ष उपलब्ध होती रही हैं। यही दुष्ट प्रवृतियों से समाज में अनेक कुरुतियां एवं विषमताएं, घिनौने कृत्य यथा– बलात्कार जैसे कुकर्म निरन्तर होते

रहते हैं।

शप्तुकामासमुद्युक्तादुःखखेना कुलितेक्षणा।

वेपमाना तदा राजन्दुःखभारेण पीड़िता।।[3]

अतः स्त्री को अपने पति के परदेश या किसी अन्यत्र दुरगामी होने पर सदैव पति चिन्तन को त्यागते हुए, श्रृंगार रहित रहना चाहिए। क्योंकि आभूषणों से युक्त स्त्री सुन्दर एवं चकाचौंध करने वाली होती है। मृदुभावी हर किसी के चित को हरण कर लेती है। अतः उनके स्वर्ण जड़ित आभूषणों से ललित होकर भी दुराचारी तथा पथ भ्रष्ट हो जाता है। धर्म के विपरित अनेकानेक दुषित आचरण करता है। ऐसा ही एक प्रसंग यहां उद्धृत है जो माता–पिता का अत्यधिक स्नेह सामाजिक मर्यादाओं एवं पितृलोक सहित अनेक भार से पिड़ित होकर धर्म विक्षुब्ध भाव प्रतिपुष्टित करता है। वसुदत भी अपनी कन्या से अत्यधिक प्रेम भाव[4] के कारण अधर्म के भागी हो गए। उनकी पुत्री सुदेवा पति धर्म की अवहेलना करती है तथा पथ भ्रष्ट होकर अनुचित व्यवहार करती है।[5]

पति रहित स्त्रियों का विशेष आचरण की अवधारणा

इस प्रकार का विवरण महाभारत में उद्धृत है।

नारीणां चिरवासो ही बान्धवेषु न रोचते।

कीर्ति चरित्रधर्मघ्नस्तस्मान्नयत मा चिरम्।।[6]

अतः स्त्री का अधिक समय तक भाई–बन्धुओं सहित रहना धर्म के प्रतिकूल माना गया है। जिससे कुलनाशक, देवत्व क्षीण का प्रतीक कहा गया है, जो कीर्ति शील, पतिव्रता धर्म के नष्ट होने से अनेक विघ्न एवं आपदाएं उपस्थित हो जाया करती हैं। जिससे पारिवारिक ही नहीं अपितु भारतीय संस्कृति एवं प्रतिष्ठा को ठेस पहुँचती है।

पतिव्रता धर्म का महात्म्य एवं परायणता

यमेवावाहयेन्नित्यं वाचा कायेन कर्मभिः।

मनसा पूजयेन्नित्यं सत्य भावेन तत्परा।।[7]

सत्यदेवा एक पतिव्रता स्त्री **थीं**। वह हर परिस्थिति में पति सेवा में तल्लीन **थीं**। मन, वचन एवं कर्म से पूर्ण निष्ठा सहित पति के अनुकुल ही आचरण करती **थीं**। इस प्रसंग में सुदेवा के पतिव्रता धर्म अनुरूपशील आचरण के प्रभाव से सूकरी को अपने पूर्वजन्म के पाप कर्मों के बंधन से घुटकर परम धाम को प्राप्त हुई।[8] **पुण्योदकेन शीतेन तव हस्तगतेन वै अभिषिकते हि मे काये मोहो नष्टो विहाय माम्। यथा मानो सुतेजोभिरन्धकारः प्रयाति सः तथा तवाभिषेकेण ममं पापं गतं शुभे प्रसादात्तव चार्वङ्गि में लब्धं ज्ञानं पुरातनं।।**[9] मार्कण्डेय पुराण में एक पतिव्रता ब्राह्मणी की कथा वार्णित है। जिसमें वह **कोढ़ी** पति की अन्यन भक्ति भाव से सेवा करती थी। वह स्वपति को भगवान के समान मानकर द्वेष रहित होकर प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती है परन्तु उसका पति सदैव क्रोधित प्रवृति पूर्ण व्यवहार करता था। तदापि वह उसके अनुकूल व्यवहार करती **थीं**।

न भर्तारं द्विष्याद्यप्यष्ठीवलः स्यात्पतितो, गहीनो व्याधितोवा पतिर्हि देवता स्त्रीवाम्।[10] अतः कहा भी गया है कि पति के क्रोध आने पर स्त्री को प्रश्न्नमना रहकर उचित व्यवहार करना चाहिए। उसके समक्ष नहीं बोलना चाहिए।

परन्तु स्त्री के निरन्तर सुनना, अनुचित व्यवहार को सहन करना। स्त्रीत्व के सम्मान व प्रतिष्ठा को ठेस तो पहुंचती है परन्तु पारिवारिक जीवन भी बाधित होता है। अतः पुरुष को भी यथा उचित व्यवहार करना चाहिए। जिससे मानसिक संतप्ता दूर **रहता** है। कुल स्त्रियों भर्तृजनस्य भत्र्स्ने, परं हि मोनं प्रवदन्ति साधनम्।[11] अतः ब्राह्मणी के इस आदर्श आचरण से अक्ष्क्षुण कीर्ति को प्राप्त किया।

प्रतिप्रियहिते युक्ता स्वाचारा, विजितेन्द्रिया सेह कीर्तिमवाप्नोति प्रेत्य चानुत्तमा गतिम।[12]

अतः याज्ञवलय स्मृति में भी कहा गया है कि जो स्त्री पतिव्र ता धर्म का आचरण करती है का चिन्तन करती है। सदैव पति हित व प्रिय होने का चिन्तन करती है। वह विजितेन्द्रिय नारी

उत्तम भाग को प्राप्त कर इहलौकिक एवं पारलौकिक परम आनन्द को प्राप्त होने में समर्थ होती है। वस्तुतः सांसारिक ही नहीं अपितु पारलौकिक सुखों का आधार नारी का उत्तम आचरण ही अपेक्षित कहा गया है। जो सभी प्रकार की समृद्धि एवं अभ्युदय का संवर्धन करती है।

आज के युग में निरन्तर दाम्पत्य जीवन पतन की कगार पर है। आए दिन कितनी ही सीता माताएँ काल का ग्रास बन जाती हैं या फिर परिस्थितियों के अनुसार अनेक कर्मों में संलिप्त हो जाती **हैं**। अतः पारिवारिक जीवन में आपसी समायोजन न होने के कारण अनेक विकट **परिस्थितियाँ** समाज में आए दिन होती रहती हैं। जिनका प्रभाव बच्चों पर भी अधिक होता है। जिससे मानसिक संतप्ता के चलते बच्चों का भविष्य मानसिक उधेड़ बुन में चलता रहता है।

जिससे **उनकी** बाल्यावस्था भी क्रुर एवं जधन्यकारी हो जाती है, जिससे मन की शांति अंभग होकर अनेकशः घिनोने कृत्य बच्चों की मानसिकता में झलकती है।

सा च साध्वी महाभागा पतिव्रतपरायणा।[13]

दुःशीलः कामयुक्तो वा धनेर्वा परिवर्तितः।

स्त्रीणामार्य स्वभावानां परमं देवतं पतिः।।[14]

इसी संदर्भ में सुमना नामक विदुषी, सती स्त्री के चरित्र का चित्रण भी परिपाक हुआ है।

नदीनां जाह्नवी श्रेष्ठा प्रमदानां पतिव्रता।

मनुष्याणां प्रजापालो देवनां च जनादैनः।।[15]

यहां इस श्लोक में नारी के संदर्भ में कहा गया है कि जब नदी का प्रवाहित स्वरूप अतिमनमोहक, शीतलता युक्त हुआ करता है, परन्तु वही धारा जिसको विपरित दिशा में प्रवाहित कर दिया जाए। ऐसा दुरुह सामर्थ्य पतिव्रता स्त्री में ही निहित है।

ऐसी नारी घर, परिवार में सौहादर्य पूर्ण व्यवहार ही नहीं अपितु पितृऋण, देवत्व, राजा का क्षत्रियत्व सभी कर्मों का निर्वहण

करती हुई सभी लोकों में कीर्ति को प्राप्त कर मोक्ष प्रदर्शिनी भी कहा गया है।

वस्तुतः पदम् पुराण के सृष्टि खण्ड में पतिव्रता स्त्री का महात्म्य श्रेष्ठ मुनीजन एवं देवताओं ने अराध्या के रूप में प्रतिपादित किया है। ऐसा निरुपण यत्र उद्धृत है।

पतिव्रता प्रतिप्राणा सदा पत्युहितेरता।

देवानामपि साऽऽराध्या मुनीनां ब्रह्मवादिनाम्।।[16]

पतिव्रता नारी का लौकिक दृष्टि से ही महत्व नहीं है अपितु अलौकिक दृष्टि से उनका सामर्थ्य एवं तेजस्वी स्वरूप पति का संरक्षण सदैव पति हित भावना में निहित है। ऐसी स्त्रियों का महात्म्य देवताओं में भी उत्तम एवं ब्रह्मपद प्राप्त श्रेष्ठ मुनीजनों से भी अधिक प्रतिष्ठित कहा गया है।

पदम् पुराण में प्रतिपादित माता का स्वरूप एवं निरुपण

पदम् पुराण में मातृभाव के अस्तित्व में कहा गया है।

नास्तिमातुः परंतिर्थ पुत्राणां च पितुस्तथा।

नारायण से भावेवाविह चैव परत्र च।।[17]

पुत्र के लिए माता–पिता की सेवा से बढ़कर अन्य कोई कर्म अपेक्षित नहीं है। वह अनन्त कार्यों को छोड़कर मातृ–पितृ सेवा में तल्लिन रहने से ही वेदाध्ययन, यज्ञ, दान का अभीष्ट फल प्राप्त कर लेता है। अतः माता–पिता ही सभी तीर्थों में उत्तम माना गया है। जो नारायण प्राप्ति के मार्ग में सुगम साधन के प्रतीक कहे गए हैं। अतः इस लोक एवं परलोक में अन्यत्र कोई तीर्थ व पुण्य नहीं है।

महाभारत में युधिष्ठर को लक्षित करते हुए भीष्म कहते हैं। आचार्य को दस क्षत्रियों से उत्तम, दस आचार्यों में उपाध्याय, दस उपाध्यायों से बढ़कर माता–पिता और माता–पिता से भी उत्तम माँ का स्थान कहा गया है।

जो समस्त भू–भाग का भार स्वयं वहन करके स्वगुरुत्व के महत्व से भी अभिभूत कर मोक्ष प्रदायिनी कहा गया है।[18]

अतः महाभारत के रात्रि–258 / 25–29 में भी कहा गया है।

नास्तित्व मातृसमा छाया नास्ति मातृसमा गतिः।

नास्ति मातृसमं त्राणं नास्ति मातृसमः प्रियः।।

इस लोक में माता के समान अपनी संतान के लिए अन्यत्र कोई संरक्षण हेतु छायात्व नहीं है। वह हर परिस्थिति में मुक्त कराने का सामर्थ्य रखती है। अतः इस लोक एवं पारलौकिक दृष्टि से कोई प्रिय अभीष्ट तथा अनुकूल अन्य कोई कवच नहीं है, परन्तु वही स्त्री यदि मां बनने के सौभाग्य से वंचित रह जाए तो उसे आत्महीनता की भी अनुभुति होती थी। जिससे नारी को समाज में घृणा की द्रष्टि से देखा जाता था, परन्तु यह सब अपमान भारतीय संस्कृति की समृद्धि के लिए अभिशाप माना जाता है।

वर्तमान समय में नारी की स्थिति

प्राचीन संस्कृत साहित्य में नारी के संदर्भ में विविध लेख उद्धृत है। जो उस समय नारी का प्रतिष्ठित स्थान की प्रतिपुष्ठित करते है, परन्तु मध्यकाल के आते–आते स्त्रियों को उपेक्षित दृष्टि से देखा गया। यह भारतीय संस्कृति का दुर्भाग्य है। जहां सामाजिक विषताओं से पीड़ित हर स्त्री इन्ही तुच्छ मानसिकताओं का शिकार होती रही, परन्तु बदलते समय परिवेश में स्त्रियों ने हर क्षेत्र में अग्रणी भूमिका का निर्वहन किया है, किन्तु कहीं–न–कहीं भौतिकवादी युग में अनेक ऐसे व्यवधान है जो पुरुष और नारी में विषमता को जागृत करता हैं। जिसकी सापेक्षता में नारी की स्थिति को सुधारने में अनेक समाज सुधारक हुए जिन्होंने अनेक प्रथाओं एवं कुरूतियों का उन्मूलन करते हुए विभिन्न आंदोलन एवं कानून बनाए गए। जिनमें प्रमुख भारत रत्न डॉ० भीमराव अम्बेडकर हुए जिन्होंने हिन्दू कोड बिल अधिनियम लागू किया जिससे नारी की स्थिति में सुधार तथा परिवर्तन हुए। उनके द्वारा भ्पदकन डंततपंहम ।बज.1955ए जीम भ्पदकन`मबजपवद ।बज–1956 आदि ऐसे कई कानून महिलाओं की सुरक्षा की देख रेख में परित हुए। जो महर्षि दयानन्द पंडित रमाबाई, स्वामी विवेकानन्द, राजा राम मोहन राय, विनोवा भावे, ज्योतिबा फूले आदि के अथक प्रयास का काफी प्रबल प्रभाव रहा।

निष्कर्ष

वर्तमान युग में नारी के संदर्भ में समाज के समक्ष यह एक गंभीर चिंतन का विषय है। यथाः बहुविवाह, तलाक जिससे संस्कार, चरित्र, आत्म–समर्पण, त्याग, कर्तव्य, सहलशीलता ऐसे अनेक गुणों का भी अभाव मानवीय जीवन में परिलक्षित हो रहा है। जिसके परिणाम स्वरूप समाज में विविध **कुरुतियाँ** एवं **विसंगतियाँ** निरन्तर पनपती जा रही है। यथा– दहेज प्रथा, कन्या, भ्रूण हत्या, चोरी, वैश्यावृति, समअम पद त्मसंजपवदेीपचे बलात्कार, स्वार्थभावना, अनैतिकता, भ्रष्टाचार आदि सब भारतीय संस्कृति रूपी वट वृक्ष को दीमक की भांति चाट–चाटकर खोखला कर रही है।

अतः स्त्रियों में ही नहीं अपितु पुरुषों को भी सदैव धर्मपरायण मार्ग का अनुशरण करना चाहिए।

मनुष्य की मानवीय प्रवृत्ति दुष्ट होने के कारण अन्यत्र सुखों की प्राप्ति के लिए मत्र–तत्र विविध कर्मों में संलिप्त रहता है। यह उसी स्थिति को उत्पन्न करता है जो मृग निरन्तर स्वयं की नाभि में स्थित **सुगंध** को छोड़कर अन्यत्र ढुढ़ने का प्रयास करता है। अतः भारतीय शिक्षा नीति में प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों में निहित ज्ञान–परम्परा के माध्यम से समाज एवं राष्ट्र को ओर अधिक उन्नत मार्ग की ओर प्रशस्त करने में समर्थ हो सके।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. पदम्पुराण भूमिखण्ड 48/4–7, संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 282
2. पदम्पुराण भूमि 49/5 संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 284
3. पदम्पुराण भूमिखण्ड 51/29–30 संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 282
4. पदम्पुराण भूमिखण्ड 47/47–64 संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 282
5. महाभारत आदिपर्व 74–12
6. पदम्पुराण भूमिखण्ड 41/62–63 संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 274
7. पदम्पुराण भूमिखण्ड 47/5–7 संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 287
8. पदम्पुराण भूमिखण्ड 52/36–38,46 संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 279
9. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, पृ० 133

10. जानकी हरणम् 9–6

11. याज्ञवल्क्यस्मृति आचार अध्याय– श्लोक सं– 87

12. पदम्पुराण 18–5 संक्षिप्त पदम्पुराण पृ०– 238

13. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, 117–24

14. पदम्पुराण सृष्टिखण्ड 47 / 50

15. पदम्पुराण सृष्टिखण्ड 48 / 5

16. पदम्पुराण भूमिखण्ड 63 / 13

17. पदम्पुराण सृष्टिखण्ड 47 / 64–72

18. मनुस्मृति, अनुवादक, चतुर्वेदी डॉ० ज्वाला प्रसाद, रणधीर बुक सेल्स, प्रकाशन हरिद्वार, द्वितीय संस्करण– 1988

संस्कृत साहित्य के संवर्धन में महिलाओं की भूमिका

नूर सहगल
इंद्रप्रस्थ कॉलेज फॉर वुमेन
दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।"[1]

आधुनिक संस्कृत साहित्यिक के क्षेत्र में स्त्रियों का अतुलनीय योगदान माना जाता हैं साहित्य की हर विधा में अपना सहयोग किया हैं जिससे आज के अर्वाचीन संस्कृत जगत में स्त्रियों का एक महत्वपूर्ण स्थान माना जाता हैं आज के इस युग में जहाँ पुरुष अपने कार्यों को बहुत ही सरलता के साथ में कर लेते हैं वैसे ही स्त्रियों ने भी अपना कार्य बहुत ही प्रेरणा के साथ में करती आ रही हैं कि आज संस्कृत के अर्वाचीन साहित्य की जो भी विधा हो जैसे कहानी, उपन्यास, कथा, नाटक, काव्य शास्त्र, लालित निबन्ध, निबन्ध, पत्र लेखन, गद्य साहित्य आदि जो भी विधा हो हर विधा में अपना महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं इस प्रकार आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती हैं।

जहाँ पर स्त्रियों की पूजा होती हैं वहाँ पर देवता निवास करते हैं और जहाँ पर स्त्रियों का सम्मान नहीं होता हैं वहाँ पर किए गए सारे कार्य व्यर्थ हो जाते हैं और स्वातन्त्र्योत्तरकाल से संस्कृत जगत में

---

[1] मनुस्मृति ३.५६

अनेक प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं संस्कृत जगत का आधुनिक साहित्य के साथ में आ करके अपना सामर्थ्य पुनः स्थापित किया हैं। आज आधुनिक संस्कृत वाङ्ङ्मय में स्त्रियों के सर्वागीण विकास को चित्रित किया गया हैं। स्त्रियों ने प्रबुध्द, प्रगतिशील, वीर, उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर अपने सामर्थ्य शक्ति व बुध्दि से आगे बढ़ती हुई चतुर्दिक विजय-पताका फहरा रही हैं।

स्त्रियों का संस्कृत काव्य के क्षेत्र में हो या कोई भी अन्य क्षेत्र हो हर क्षेत्र में स्त्रियों ने अपना महान योगदान दिया हैं और उनके इसी कार्य के लिए तो वह आज समाज में या कोई अन्य क्षेत्रों के कार्यों में अपना महान योगदान पुरूषों के समान कर रही हैं।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में डा. रमा चौधुरी का भी विशिष्ट स्थान है। संस्कृत भाषा में उन्होंने २५ रूपकों की रचना की थी। श्रीमती कमलारत्नम ने रामायण के व्यापक प्रभाव को प्रकाशित करने के साथ-साथ कालिदास को विदेशों में लोकप्रिय बनाने की प्रमुख भूमिका निभायी थी।

आधुनिक संस्कृत में साहित्य स्त्रियों की भूमिका

१. पंण्डिता क्षमाराव - (१८९०-१९५४)

"वीतरागो जितक्रोधः सत्याहिंसा व्रतो मुनिः।
स्थितधीर्नित्यसत्त्वस्थो महात्मा सोऽभिधीयते ॥"[1]

पण्डिता क्षमाराव का जन्म सन् १८९० ई० को पुणे महाराष्ट्र प्रान्त में हुआ था। इनके पिता का नाम पं० शंकर पाण्डुरंग संस्कृत के उच्चकोटि के विद्वान थे। पंण्डिता क्षमाराव का विवाह बम्बई के उच्चकोटि के शल्य चिकित्सक राधेवेन्द्र जी के साथ हुआ था। इन्होनें १९२० से १९३० तक अंग्रेजी भाषा मे लेखन कार्य किया तथा सन्

---

[1] सत्याग्रहगीता - पण्डिता क्षमाराव्

१९३० से संस्कृत भाषा में ही लेखन कार्य किया। इनकी कथा रचना सन् १९५५ में प्रकाशित कथामुक्तावल्ली तथा कथापञ्चकम् 3 अनुष्टप छन्द मे पाँच कथाएँ संकालित हैं। सन् १९३८ में पंण्डिता की उपाधि से तथा १९४२ में सरस्वती चन्द्रिका उपाधि से आपको सम्मनित किया गया।

अतः स्त्रियों का संस्कृत काव्य के क्षेत्र में हो या कोई भी अन्य क्षेत्र हो हर क्षेत्र में स्त्रियों ने अपना महान योगदान दिया हैं । उनके इसी कायों के लिए तो वह आज समाज में या कोई अन्य क्षेत्रों के कार्यों में अपना महान योगदान पुरूषों के समान कर रही हैं। आज संस्कृत की कोई ऐसी विधा नहीं हैं जिस विधा में वह आपनी रचनाओं के माध्यम से वह अपनी स्थिति को स्थापित नहीं कर रही हो । आधुनिक संस्कृत जगत की यदि बात करें तो इस क्षेत्र में स्त्रियों का महान योगदान हैं। उनकी भूमिका का लोहा आज भी हैं। वह अपनी कृतियों के माध्यम से आज के संस्कृत समाज को एक नया आयाम प्रस्तुत कर रही हैं। उनकी रचनाओं का और उनकी प्रतीभा का योगदान निम्न प्रकार से संस्कृत क्षेत्र में दिखाई देता हैं।

कथामुक्तवली की 'प्रेमरसोद्रेकः, 'परित्यकता', 'तापसस्य', 'पारितोषिकम्', 'बिधबोद्वाहसंकटम्', 'मत्स्यजीवी केवलम्', आदि १५ लघुक्थाओं का संग्रह है। इन कथाओं का विषय प्रमुखतः सामाजिक बुराईयों, दुःखी पीड़ित महिलाओं (विधवा, बन्ध्या, तलाकशुदा) पर आधारित हैं। इनकी कथाएँ प्रायः दुःखान्त हैं।

२. पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

संस्कृत वाङ्मय के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास 'शिवराजविजय' के रचयिता पं० अम्बिकादत्त व्यास का जन्म द्वितीय काशी के रूप में विश्रुत जयपुर नगर में चैत्र मास में नवरात्र की शुक्ला अष्टमी सन् 1858 में हुआ। इनका परिवार पाराशर गोत्रीय था तथा पहले जयपुर

से ग्यारह मील पूर्व दिशा में 'रावत जी का धला' के समीप मानपुर ग्राम में रहता था। इनके पिता का नाम पं० दुर्गादत्त व्यास था, जो कुशल कथावाचक थे।

भेदः कृतो मनुष्येण न धात्रा समदर्शिनः।

शीलं चिह्न सुजातस्य न जातिर्न च जीविका ॥

३.कवयित्री लीलारावदयाल

आधुनिक कवयित्री लीलारावदयाल संस्कृत की सुप्रसिद्ध लेखिका और कवयित्री पण्डिता क्षमाराव की पुत्री हैं। लीलाराव की शिक्षा-दीक्षा अपनी माता की देख-रेख में संपन्न हुई। इनका विवाह उत्तरप्रदेश के एक सभ्य एवं सुसंस्कृत माथुर परिवार में श्री हरीश्वर दयाल से हुआ है। इनके पति भारतीय वैदेशिक सेवा में कार्यरत रहे हैं।

लीलाराव ने 18 रूपकों का प्रणयन किया है, जो इस प्रकार हैं-

1. गिरिजायाः प्रतिज्ञा

2.होलिकोत्सव

3. गणेशचतुर्थी

4. बालविधवा

5.क्षणिक विभ्रम

6. असूयिनी

7. मिथ्याग्रहणम्

8. वीरभा

9. कटुविपाकम्

10. तुकारामचरितम्

11. कपोतालयः

12. ज्ञानेश्वरचरितम्

13. वृत्तशंसिच्छत्र

14. मीराचरितम्

15. स्वर्णपुस्कृषिवलाः

16. जयन्तु कुमाउनीयाः

17. तुलाचलाधिरोहणम्

18. मायाजालम्

इन रचनाओं में से 5 रचनाएँ इनकी माँ के द्वारा रचित रचनाओं का नाटकीय रूपान्तरण हैं-

गिरिजायाः प्रतिज्ञा (आख्यायिका)- गिरिजायाः प्रतिज्ञा
मीरालहरी (काव्य) - मीराचरितम्
ग्रामज्योतिः - कटुविपाकम्
तुकारामचरितम् - तुकारामचरितम्
मायाजालम् (कथा)- मायाजालम्

इसके अतिरिक्त 'कपोतालय' प्रहसन जगदीशचन्द्र माथुर रचित कथा का रूपकांतरण है। इस प्रकार लीलारावदयाल ने आधुनिक संस्कृत-साहित्य में अपना बहुमूल्य अवदान प्रदान किया है।

अपवाह्य त्वया देवि संग्रामान्नष्ट चेतनः
तत्रापि विक्षतः शस्त्रैः पतिस्ते रक्षितस्त्वया ।।[1]

४. डॉ. नलिनी शुक्ला - (८ जून १९४०- २०११)

---

[1] रामायण, अयोध्या काण्ड, नवम सर्ग

डॉ. नलिनी शुक्ला का जन्म ८ जून सन् १९४० कंघेसी ग्राम इटावा में हुआ था। संस्कृत हिन्दी मे लगभग २१ ग्रन्थ प्रकाशित-अप्रकाशित हैं जिसमें रुपक, नाटिका, गीतिकाव्य, कथासंग्रह (कथासप्तकम) आदि ग्रन्थ है।

कथासप्तकमः में सातकथाओं का संकलन किया गया हैं जिसमें स्वयं के द्वारा लिखी गई कथाएँ हैं।

उपसंहार

पुषां त्वेतो नयतु हस्तगृहयाश्विनाः त्वा प्रवहता स्थेन।
गृहा-गच्छ गृहपत्नी यथा सो वशिनी त्वं विदथमा वदासि ||[1]

प्राचीन काल से ही भारत में स्त्रियों ने साहित्य के विभिन्न क्षेत्रों में अपना अतुल्यनीय योगदान दिया हैं संस्कृत साहित्य की बात करें तो इस क्षेत्र में स्त्रियों ने प्राचीन काल से ही अपना महान सहयोग दिया हैं।

आधुनिक साहित्य में नारी एक ओर आदर्श रूप में चित्रित हुई है, दूसरी ओर उसकी उच्छृंखलता का भी यथार्थ चित्रण हुआ है। वह राष्ट्र प्रेमिका भी है और विलासी भी। श्रीमती रमा चौधरी विरचित कविकुलकोकिलम् में राजकन्या विद्यावती कमला देवी का चरित्र प्रधान है। यह रूपसी एवं ज्ञानगर्विता है। शास्त्रार्थ में इसने स्वयं से विवाह के इच्छुक अनेक कुमारों को पराजित एवं अपमानित किया है। परन्तु नारी सुलभ कोमलता उसमें भी विद्यमान है। पति को अपमानित करने के पश्चात् पश्चात्ताप करती है तथा कालिदास के वापस आने पर क्षमा याचना भी करती है।निष्कर्ष रूप से यह कहा जा सकता है कि बीसवीं शताब्दी के महिला लेखिकाओं की रचनाओं में स्त्री मनोविज्ञान ही नहीं अपितु सामाजिक सांस्कृतिक, राजनैतिक,

---

[1] ऋग्वेद भाष्ये दशम मंडल, अध्याय 7

पौराणिक एवं ऐतिहासिक परिवेश का आकलन प्राप्त होता है। इसीलिए इस युग की महिला रचनाकार पुरुष रचनाकारों की तरह अपनी लेखनी को चलाने में कोई संकोच नहीं करती तथा निर्भीक होकर रचना करती है। इसलिए आधुनिक संस्कृत साहित्य में महिलाओं का अद्वितीय योगदान है।

संदर्भ

- कथामुक्तावली (कथासंग्रह) पंण्डिता क्षमाराव
- आधुनिक संस्कृत साहित्य संग्रह

संस्कृत साहित्य के संवर्धन में महिलाओं का योगदान

रिचा माथुर

शोधच्छात्रा, डॉ0 रा0म0लो0 अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

प्रो0 (डॉ0) अभिषेकदत्त त्रिपाठी

अध्यक्ष–संस्कृत विभाग, का0सु0 साकेत पी0जी0 कॉलेज, अयोध्या

संस्कृत विश्व की सबसे प्राचीन ऋग्वेद की भाषा है इस भाषा में भारतीयों का मनन चिन्तन एवं अनुभूति समन्वित है। संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाने में एवं विश्व साहित्य में उच्चतम स्थान दिलाने का श्रेय हमारे प्राचीन और आधुनिक **कवियों** को जाता है इन्होंने अपनी लेखिनी का ऐसा–चमत्कार संस्कृत साहित्य में प्रस्तुत किया है इन महान मूर्धन्य लेखकों ने विभिन्न काव्य विधाओं में रचना करके संस्कृत साहित्य को समृद्ध करने का सफल प्रयास किया है। अनेक महिला चिन्तक, दार्शनिक, विदुषियाँ कवि रहीं **हैं**। राजशेखर दसवीं शताब्दी के महान काव्यशास्त्रीय हुए **हैं** उन्होंने अपनी काव्यमीमांसा में उल्लेख किया है कि **महिलाएँ** भी कवि होती है। राजशेखर को यह श्रेय दिया जाना चाहिए कि उन्होंने इस बात का संज्ञान लिया कि संस्कृत साहित्य के इतिहास में महिला कवियों का बहुत बड़ा योगदान है राजशेखर ने महिला **कवियों** की चर्चा सैंतीस कवि प्रशस्तियों में की है संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ महाकवियों की श्रेणी में यह परिगणनीय है।

संस्कृत साहित्य में उपनिषद्काल की ब्रहमवादिनी **रहीं थीं**। 'गार्गी' और 'मैत्रेयी' का उल्लेख बृह्दराण्ययकोपनिषद में आता है। यह उद्भट शास्त्रज्ञ **हुई** यह साक्षात् ब्रहमज्ञानियों से साक्षात्कार करतीं है ब्रहमवादिनि 'लोपामुद्रा' भी चर्चित थी वह एक 'मन्त्रदृष्टा' हैं 'अपाला', 'घोषा' की भी उपस्थिति थी **ब्रह्मवादिनी** 'गांर्गी' का

समय (सात सौ) ईसा पूर्व का है जो भरी सभा में पुरूष समाज के समक्ष बौद्धिक संवाद करती है, मिथिला में राजा जनक की सभा में हुए संवाद याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ किया, गार्गी बौद्धिक संवाद में तत्व, सृष्टि चिंतन, आत्म विधा से सम्बंधित प्रश्न करतीं थीं उन्होंने कई ज्ञानियों से ब्रहमवाद किया। आठवीं शताब्दी में 'मैत्रेयी' बहुत बड़ी आत्मज्ञानी हुई वह याज्ञवल्क्य की पत्नि थीं। मैत्रेयी ने आत्मज्ञान की प्राप्ति हेतु, पति द्वारा दी जाने वाली धन–संपदा को त्याग कर अपने पति की विचार–सम्पदा को ग्रहण किया। 'सुवर्चला' नाम की ब्रहमवादिनि हुई, इनकी कथा महाभारत के शांतिपर्व में दो सौ बीसवें अध्याय में भीष्म द्वारा निरूपित है, सुवर्चला देवल ऋषि की पुत्री थी ! ऋषि उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु इनके पति थे। विवाह से पहले श्वेतकेतु का सुवर्चला से अद्भुत संवाद हुआ।

चतुर्थ शताब्दी में शीला भट्टारिका एक विलक्षण कवि हुई। काव्यमीमांसा के लेखक राजशेखर ने कहा कि शब्द और अर्थ का समान गुंफन पांचाली रीति है जो शीलाभट्टारिका और बाणभट्ट की वाणीं में है इन्होंने शीलाभट्टारिका को पहला स्थान दिया है बाणभट्ट को दूसरा यह बाणभट्ट के समकालीन थीं शीला ने बहुत सुन्दर कविताऐं लिखीं, यह पांचाली रीति की कवि थीं, इनके पध अलंकारशास्त्र के ग्रन्थों में मिलते हैं प्राचीन रत्नकोश जो 12वीं शताब्दी का है, सूक्ती मुक्तावली जल्हणकृत 13वी शताब्दी, वल्लभदेव की सुभाषितावली 15वी शताब्दी में, इन सभी में शीलाभट्टारिका के पध मिलते है, कुछ उदाहरण इनके प्रस्तुत हैं–

"यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपास्ते
चोन्मीलितमालती सुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्र सुरतव्यापार लीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरूतले चेतः समुत्कण्ठते।"

इस श्रृंखला में कवि विज्जिका (विजयांका) हैं। यह आचार्यों की प्रिय कवि रहीं हैं। राजशेखर ने इन्हें कर्नाटक की सरस्वती

की उपाधि दी। विज्जिका का समय 8वीं शताब्दी है, विजयांका द्वारा 'कौमुदी महोत्सव' प्राचीन नाट्क की रचना हुई। विज्जिका अपनी गर्वोक्तियों के लिए भी जानी जातीं है गर्वोक्तियों का प्रर्वतन ही संस्कृत काव्य परम्परा में विज्जिका से प्रारंभ हुआ –

दण्डी के काव्यादर्श का पधः–

"चतुर्मुखाम्भोजवनहंससवधूर्मम।

मानसे रमतां नित्यं सर्वशुक्ला सरस्वती।।"

विज्जिका का उत्तर –

"नीलोत्पलदलशुभ्रां विज्जिकामामजानता।

वृथैव दण्डिना प्रोक्ता सर्वशुक्ला सरस्वती।।"

विज्जिका ने दण्डी की आलोचना की है क्या श्यामवर्ण की सरस्वती नहीं होतीं अर्थात् मैं सरस्वती हूँ! विज्जिका का एक पध बड़ा ही सुन्दर वर्षा ऋतु के वर्णन का है जो इस प्रकार है–

"मलिनहुत भुग्धूमश्यामैर्दिशो मलिना घनै

रविरलतृणैः श्यामा भूमिर्नवोदूत कन्दलैः।

सुरतसुभगो नूनं कालः स एव समागतो

मरणशरणा यस्मिन्नेते भवन्ति वियोगिनः।।"

अवन्तिसुन्दरी का साहित्यशास्त्र के चिन्तन में मौलिक योगदान रहा। इनका समय 10वीं शताब्दी था। महाकवि राजशेखर की यह पत्नि थीं। राजशेखर ने कर्पूरमंजरी में अवन्तिसुन्दरी के साथ लेखन कार्य किया। काव्यशास्त्र में राजशेखर ने बताया कि अवन्तिसुन्दरी 'वामन' की बात को खण्डित करते हुए कहती है :–

"इयमशक्तिर्न पुनः ऽइत्यवन्तिसुन्दरी।

यदेकस्मिन्वस्तुनि महाकवीनामेनकोऽपि पाठः

परिपाकवान् भवति, तस्माद्रसोचित शब्दार्थ सूक्ति निबन्धनः पाकः।"

अवन्तिसुन्दरी का दूसरा मत है–

"वस्तुस्वभावोऽत्र कवेरतन्त्रों गुणागुणावुक्तिवशेन काव्ये।

स्ववत्रिवध्रात्यमृतांशुमिन्दुं निन्दंस्तु दोषाकरमाह धूर्तः।"

राजशेखर इसके विषय में – **'उभयमुपपन्नम्' इति यायावरीयः।**

6वीं शताब्दी के लगभग रहीं विदुषि दक्षिण प्रदेश की भद्राकुण्डलकेशी की गाथाएँ पालि भाषा में मिलती हैं इनके द्वारा पाँच गाथाएँ रची गई जो अपने आप में सुन्दर कविता हैं। शास्त्रार्थ मे निपुणता के कारण एंव अपने पाण्डित्य, वैदुष्य के कारण यह प्रसिद्ध थीं सर्वश्रेष्ठ कवियों में बड़ी कवि 'गंगादेवी' का 'मधुराविजय' नामक संस्कृत साहित्य का एतिहासिक महाकाव्य है यह 14वीं शताब्दी की कवि थी जो आंध्रप्रदेश के उरूगल प्रान्त की राजकुमारी थी इनका विवाह वीर कम्पणराय से हुआ जो विजय नगर के राजा थे, 'मधुराविजय' में गंगादेवी ने अपने पति वीर कम्पणराय के प्रति प्रेम, उनके शासनकाल, पराक्रम का चित्रण के साथ मुगलों का इतिहास, उनके आक्रमण, तुगलक साम्राज्य का विस्तार इन सभी का वर्णन 'मधुराविजय' में किया है 'मधुराविजय' महाकाव्य में विजयनगर साम्राज्य की नींव तथा विजयनगर का सांस्कृतिक वैभव का चित्रण किया।

'लक्ष्मणा ठकुराज्ञी' एक विलक्षण कवि है 15 वीं शताब्दी इनका समय है मिथिला इनकी भूमि रही है। इनका विवाह राजा शिवसिंह से हुआ। लक्ष्मणा राज्ञी के संस्कृत पध, उमेश मिश्र द्वारा सम्पादित विधाकर सहस्क्रम सुभाषित संग्रह में मिलते हैं एक सुन्दर पध लक्ष्मणा का है जो शार्दूलविक्रीड़ित छंद में है, इसमें लखिमा ठकुराइन ने अभूतपूर्व पाण्डित्य प्रदर्शित कर दिया है–

"आक्रान्ता दशमध्वजस्य गतिना सम्मूर्च्छिता निर्जले

तूर्यद्वादशवद्द्वितीयमति मन्नेकाददशाभस्तनी।

सा षष्ठी कटिपचमी च नवमभ्रूः सप्तमीवर्जिता

प्राप्नोत्यष्टमवेदनां त्वमधुना तूर्ण तृतीयो भव।।"

15वीं से 17वीं शताब्दी में 'तंजोर' से जुड़ी हुई 'रामभद्राम्बा', 'तिरूमलाम्बा', मधुरवाणी इन महिला कवियों का योगदान बहुत बड़ा है इनके कवित्व को देखा जाए तो संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवियों में इनका स्थान है! तिरूमलाम्बा, अच्युत देव राय की पत्नी थी यह राजपरिवार से थी इन्होने 'वरदाम्बिका परिणय' चम्पू लिखा संस्कृत चम्पूकाव्य का इतिहास इसके बिना पूर्ण नहीं होता है। इस चम्पू में इन्होंने अपने प्रेम, विवाह, अपने पुत्र का जन्म, पुत्र का राज्याभिषेक और विजयनगर साम्राज्य का वर्णन किया है।रामभद्राम्बा ने 'रघुनाथावहृदय' महाकाव्य लिखा,यह राजा रघुनाथ नायक की रानी थी, रघुनाथ नायक ने संस्कृत के अनेक ग्रंथ लिखे,, इन्हें अपने समय के साहित्यकार के रूप में ख्याति प्राप्त हुई। रामभद्राम्बा ने अपने महाकाव्य में सम्राट रघुनाथ नायक का इतिहास, उनके पराक्रम का, चोल देश का, तंजौर का सांस्कृतिक इतिहास का वर्णन एवं रघुनाथ के साहित्य अनुराग की भी चर्चा की है।

मधुरवाणी तंजौर राज्य से थीं। मधुरवाणी सम्राट रघुनाथ नायक के राजसभा की कवि रहीं है मधुरवाणी ने 'रघुनाथाभ्युदय' महाकाव्य की रचना की यह रघुनाथ नायक द्वारा तेलगू भाषा में महाकाव्य रामायण लिखा गया जिसका संस्कृत अनुवाद मधुरवाणी ने किया है! रघुनाथ नायक चिंतित थे कि उनके तेलगू भाषा के रामायण महाकाव्य का सरस अनुवाद कैसै, कराया जाए यह सोचते हुए वह सो गए तभी रघुनाथ नायक के स्वप्न में 'श्रीराम' प्रकट हुए और कहा कि तुम्हारे महाकाव्य के अनुवाद कार्य को 'मधुरवाणी' करेगीं यह कार्य उन्हें सौंप दो, अगले ही दिन मधुरवाणी को कार्य सौंप दिया गया। फरीदपुर की महिला विदूषि 'प्रियंवदा' का उल्लेख श्रीधर भास्कर वर्णेकर जी, कृष्णमहाचारियर ने किया है, पण्डित शिवराम की यह पुत्री थी, प्रियंवदा ने 'श्यामा रहस्य' नामक काव्य लिखा जयदेव की भक्ति भाव माधुरी में इनकी कविता रची है 'श्यामा रहस्य' में बड़े सुन्दर पध इनके मिलते हैं। इस काव्य में शार्दूलविक्रीडित छन्द है। फरीदपुर की ही 'वैजयन्ती' कवि भी रहीं 17वीं शताब्दी इनका समय था। वैजयन्ती मीमांसा

की आचार्य रहीं इनका विवाह पण्डित कृष्णासार भौम से हुआ जो स्वयं मीमांसा दर्शन के अच्छे पण्डित थे। महान विद्वानों ने यह उल्लेख किया है कि कृष्णासार भौम को जब मीमांसा की कोई गुत्थी समझ नहीं आती तब वैजयन्ती से वह परामर्श करते थे कृष्णासार ने 'आनन्दलतिका' चम्पू की रचना को वैजयन्ती की सहायता से पूर्ण किया !

कवि 'आनन्दमयी देवी' का जन्म मीमांसकों के परिवार में हुआ इनका वैदिक ग्रंथों पर अच्छा अधिकार था यह श्रौतयाग की जानकार थीं इनका 'हरिलीला' काव्य है जिसमें इनका अनोखा योगदान है, आनन्दमयी देवी के साथ 'उमादेवी' का भी उल्लेख मिलता है। जिन्होनें 'आभाणक माला' नामक पुस्तक लिखी थी। इन्होंने आभाणकों का, संस्कृत कहावतों का उल्लेख किया है यह 18वीं शताब्दी की महिला कवि है। 'गोपेन्द्रमुखापाध्याय' ने बांग्ला भाषा में अनेक महिला कवियों पर लिखा है जिनमें आनन्दमयी के साथ उमादेवी का वर्णन किया है! त्रिवेणी 19वीं शताब्दी की सर्वप्रथम विदुषी महिला रहीं है इनका समय 1817 ईसवी से 1888 ईसवी तक का है यह उदयेन्द्रपुर के अनन्ताचार्य की पुत्री थीं। वैकन्टाचार्य से इनका विवाह हुआ। समस्यापूर्ति काव्य इन्होंने लिखे, स्त्रोत काव्य भी लिखे जिनमें 'लक्ष्मी सहरत्रम', 'रंगनाथ सहरत्रम' का उल्लेख मिलता है। दो दूतकाव्य 'शुकसंदेश' एवं 'भृंगसंदेश' भी प्राप्त हैं। 'रंगाभ्युदय' और 'संपतकुमार विजय' यह इनके एतिहासिक काव्य है। 'रंगराट समुदाय' और 'तत्वमुद्रा भद्रोदय' यह प्रतीक नाटक हमारे साहित्य को सुशोभित करते हैं।

एक महत्वपूर्ण महिला कवि 'ज्ञानसुन्दरी' हैं। यह 18वीं शताब्दी की कवि रहीं 'हालास्य चम्पू' इनकी सुन्दर रचना है, स्वयं ज्ञानसुन्दरी ने इस चम्पूकाव्य में लिखा कि 'इस चम्पू के अतिरिक्त अन्य काव्यों की रचना मैंनें की है' दुर्भाग्य से हमें इस चम्पू के अतिरिक्त कोई काव्य नहीं प्राप्त होता है मैसूर के राजा ने ज्ञानसुन्दरी को 'कविरत्न' की उपाधि दी। इनके हालास्य चम्पू में मीनाक्षी और सुन्दरेश के विवाह का आकर्षक चित्रण किया है

ज्ञानसुन्दरी पधो में अनुप्रास की जो लड़ियाँ गूँथती है वह बहुत ही लुभाने वाला हैं। संस्कृत साहित्य की महान कविओं में 'वामती मिश्र', 'विकटनितंबा, म्यूरिका, फल्गुहस्तिनी, सुभद्रा इन सभी अपनी महान कृतित्व, रचनाओं से अपनी पहचान ऐतिहासिक रूप में बनायी है जो बहुत ही मूल्यवान है। प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय में संस्कृत साहित्य की धारा निरंतर प्रवाहित हो रही है संस्कृत का आधुनिक काल महान विद्वानों के अनुसार 1773 में माना गया है।

आधुनिक काल में पुरूषों के वर्चस्व वाले संसार में महिला वक्ता 'रमाबाई' का नाम आता है, 'पण्डिता रमाबाई' अनन्तशास्त्री डोगेरे की बेटी थी। रमाबाई ने अपनी आत्मकथा लिखी। रमाबाई को अपने पिता से विरासत में ज्ञान प्राप्त हुआ, संस्कृत पुराणों के अठारह हजार श्लोक उन्हें कंठस्थ थे संस्कृत की सेवा में इन्होंने अपना जीवन अर्पण कर दिया। यह एक प्रखर वक्ता के रू॰ में उभरने लगी, अखबारों में उनके भाषणों की खबर छपने लगी वह देश–विदेश में प्रसिद्ध हुई। 1878 में इंग्लैण्ड के पत्रकार डब्ल्यू. डब्ल्यू. हण्टर ने इनकी खबरें पढ़ी, हण्टर ने अपनी पुस्तक 'इग्लैण्ड वर्क इन इण्डिया' में रमाबाई पर एक विस्तृत टिप्पणी की है। रमाबाई को 'पण्डिता की उपाधि' बंगाल के हिन्दु समाज के नेता महाराजा ज्योचिन्द्र मोहन ठाकुर ने एक आयोजन में उनको दी एंव 'सरस्वती' की उपाधि बंगाल के सुधारवादी प्रगतिवादी समाज की ओर से दी गई।

आधुनिक काल में दो ही महिलाओं को 'पण्डिता' की उपाधि मिली जिनमें दूसरी 'पण्डिता क्षमाराव' हैं, 20वीं शताब्दी की क्षमाराव प्रसिद्ध कवि का जन्म पुणे महाराष्ट्र में 1890 को हुआ इनके पिता शंकर पाण्डुरंग थे। पण्डिता क्षमाराव ने पिता शंकर पाण्डुरंग पर 'शंकर जीवनाख्यानम्' महाकाव्य लिखा, पण्डिता क्षमाराव ने लगभग पचास रचनाएँ लिखी हैं। इनकी प्रसिद्ध गद्य रचना 'कथापंचक' ग्रामज्योति, कथामुक्तावलीं, प्रकाशित हुई। इनके

महाकाव्य 'श्री तुकाराम चरित' ,श्री रामदास चरित इत्यादि, एक ग्रंथ 'सत्याग्रहगीता' के कारण इनकी प्रसिद्धि आधुनिक संस्कृत साहित्य में बढ़ **गई**, इस ग्रंथ में गांधी जीवन पर वर्णन हुआ है। इनका 'मीरालहरी' नामक मुक्तक रचना है जिसमें मीरा से सम्बंधित पद्य लिखे हैं 'विचित्र–परिषद–यात्री' ग्रंथ भी इनका ही है। क्षमाराव का संस्कृत गद्य प्रवाहपूर्ण, अलंकृत तथा भावानुरूप है

संस्कृत व्याकरणशास्त्र की विदुषी 'पुष्पा दीक्षित' का अद्भुत अवदान रहा है। पुष्पा दीक्षित ने व्याकरण ग्रंथ 'अष्टाध्यायी सहज बोध' लिखा, इसमें महर्षि पाणिनि प्रणीत अष्टाध्यायी का **इन्होंने** अत्यंत वैज्ञानिक और सहज रूप प्रस्तुत किया। 'नव्यसिद्धांतकौमुदी''**तिङन्तकोषः**', 'कृदन्तकोष', '**अष्टाध्यायीसूत्रपाठः**', 'शीघ्रबोधव्याकरण', पाणिनीयधातुपाठः, 'पाणिनीय वैदिक व्याकरणम्' इत्यादि **रचनाएँ** की हैं। इनकी काव्य **रचनाएँ** अग्निशिखा, शाम्भवी इत्यादि हैं, इनके अनुवाद कार्य में 'सौन्दर्यलहरी' शंकराचार्य विरचित का अनुवाद किया तथा '**अपराजितध्रुव** महाकाव्य' पूर्णचंद्र शास्त्री का इन महाकाव्यों का हिन्दी अनुवाद किया। इसके अतिरिक्त अनेक शैक्षणिक चैनलों पर इनका कार्यक्रम प्रसारित हुआ करते हैं, पुष्पा दीक्षित को 'संस्कृतात्मा' सम्मान से सम्मानित किया गया। मध्यप्रदेश सरकार द्वारा राजकुमारी पटनायक सम्मान प्राप्त हुआ। उत्तराखण्ड सरकार द्वारा 'वेद वेदांग सम्मान' प्राप्त हुआ। उत्कृष्ट सेवा और कार्य के लिए राष्ट्रपति अब्दुल कलाम द्वारा सम्मानित किया गया है। 'अग्निशिखा' का एक श्लोक विचारणीय है–

> **न वर्णैस्तद्वर्ण्यं प्रिय यदनुभूतं हनद मया**
>
> **क्षरत्वं गच्छेन्मेऽनवरत विलापेऽक्षरकुलम् ।**
>
> **विभिन्नैः शब्दार्थैर्विपुल विपुलः कोशकिरः**
>
> **क्षमो नो क्षन्ता वा विशकलितमेतत्कलयुतम्।।**

यह अपने 'अग्निशिखा' में नारी ह्रदय की ममन्तिक वेदना और उसके निश्छल प्रेम का वर्णन करती हैं वे नारी के प्रेम को

जाति, धर्म, रंग और रूप की सीमा से परे ले जाती है।

इसी श्रृखला में 'मिथिलेश कुमारी मिश्र' संस्कृत के साथ हिन्दी, पाली, प्राकृत एंव दक्षिण भारत की अनेक भाषाओं का ज्ञान था इन सभी भाषाओं से अपनी सेवा से इन्होने अनोखा योगदान दिया। इनका जन्म 1953 ईसवी को हरदोई के कटियारी क्षेत्र के एक गाँव में हुआ। इनके पिता रामगोपाल मिश्र तथा माता भगवती देवी थी। पण्डित मूलचन्द्र मिश्र जो सरल व्यक्तित्व के धनी थे इनसे इनका विवाह हुआ। मिथिलेश ने 'बिहार राष्ट्र भाषा परिषद' पटना के निर्देशक पद पर कार्य किया। मिथिलेश ने 'तमिल रामायण' का हिन्दी अनुवाद किया और इन्हे 'तमिल प्रेमी' पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया। साहित्य मिथिलेश की साँसों में बसा हुआ है मिथिलेश जो अपनी कृतित्व के माध्यम से हमेशा चिरकाल तक अमर रहेंगी, जिसमें संस्कृत का 'चन्द्रचतिम्' महाकाव्य सुभाषित सुमनोन्जलि, व्यासशतकम्, काव्यायनी (काव्य संग्रह), आम्रपाली, दशमस्त्वमसि, तुलसीदासः(नाटक), जिगीषा (उपन्यास), लघुकथा एंव आधुनिक (कहानी संग्रह) हैं। दुबई, नेपाल में आपको पुरस्कृत व सम्मानित किया गया, थाइलैण्ड की राजकुमारी ने आपको संपादकीय मण्डल में सक्रिय सदस्य रहें तथा बिहार पटना की 135 वर्ष से 'संस्कृत संजीवन समाज' त्रैमासिक पत्रिका की संपादिका का दायित्व का निर्वहन करतीं आयी हैं इस प्रकार से इनका भी विशेष अवदान साहित्य जगत में रहा।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में श्रीमती 'कमलारत्नम' कवि एंव नाट्यकत्री के रूप मे विख्यात हैं। पण्डित क्षमाराव की पुत्री श्रीमती लीलाराव दयाल ने लगभग 24 रूपकों की रचना की इनमें होलिकोत्सवः, क्षमाचतिम् इत्यादि है। डॉ रमा चौधरी का भी संस्कृत साहित्य में विशिष्ट योगदान है 25 रूपकों की रचना रमा चौधरी ने की। डॉ कमला पाण्डेय ने रक्षतगंगम्, गंगा दण्डकम् की रचना की। डॉ नालिनी शुक्ला ने राधानुनय, मुक्तिमहोत्सव नाट्य रचनाएँ की। डॉ मनोरमा तिवारी ने संस्कृत गीतमालिका की रचना की थी। डॉ वनमाला भवालकर ने गौतम धर्मसंग्रह तथा गीर्वाण गद्य प्रदीप पुस्तकें लिखी हैं, डॉ महाश्वेता चतुर्वेदी ने उपमन्यु परीक्षा,

ज्योति कलश, विवेक विजय नामक **रचनाएँ** की थी। डॉ शशी तिवारी ने वाणी वन्दना, पश्य मम भारतम् आदि काव्यों की रचना की, डॉ सावित्री देवी शर्मा ने काव्यलोक नामक ग्रंथ लिखा है तथा संस्कृतगीतांजलि भी इनका ही है। डॉ सिम्मी कन्धारी ने कर्तव्यम्, आगच्छत्वम्, स्नेहक्रीडा, ह्रदयभावसप्तकम्, गजलिका आदि **रचनाएँ** साहित्य में दी हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :–

राधावल्लभ त्रिपाठी – संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास
डॉ0 शिवानी मिश्रा – संस्कृत साहित्य की कवयित्रियाँ
राधावल्लभ त्रिपाठी – आधुनिक संस्कृत साहित्य का समग्र इतिहास
महाकवि राजशेखर – काव्यमीमांसा
वाद और संवाद की भारतीय परम्पराऐ – प्रो0 राधावल्लभ त्रिपाठी
वैदिक साहित्य संस्कृति का इतिहास – ओमप्रकाश पाण्डेय
पुष्पा दीक्षित – पाणिनीय धातुपाठः
पुष्पा दीक्षित – अग्निशिखा
राजशेखर – कर्पूरमंजरी
दण्डी – काव्यादर्श
जल्हण – सूक्तीमुक्तावली
वल्लभदेव – सुभाषितावली
श्रीकृष्णमहाचारियर – हिस्ट्री ऑफ क्लासिकल संस्कृत लिटरेचर
पण्डित बलदेव उपाध्याय – संस्कृत साहित्य का इतिहास
पण्डित बलदेव उपाध्याय – संस्कृत सुकवि समीक्षा
डॉ0 मीरा द्विवेदी – आधुनिक संस्कृत महिला नाटयकार
वनमाला भवालकर – आधुनिक संस्कृत साहित्ये स्त्रीणां योगदान
डॉ0 अर्चना कुमारी दुबे – आधुनिक संस्कृत कवयित्रीयाँ

वैदिक साहित्य में स्त्री विमर्श

डॉ ऋषिका वर्मा
सहायक आचार्य
दर्शन विभाग
हेमवती नन्दन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय
श्रीनगर गढ़वाल, उत्तराखण्ड
मोबाइल नं0 9990469933
ई मेल rishika.verma75@gmail.com

शोध–सारांशः आज स्त्री विमर्श पूरे विश्व में एक विमर्श और चर्चा के रूप में व्याप्त हो चुका है, जिसमें स्त्री के सभी पक्षों को पुरुष के सापेक्ष रखकर देखा जाने लगा है। स्त्री विमर्श एक ऐसा संवाद और बहस हैं, जिसमें स्त्री अपने–अपने अधिकारों की माँग करती है। इन अधिकारों के अन्तर्गत लिंग के आधार पर समानता, निर्णय, अस्तित्व, अस्मिता, स्वतन्त्रता और मुक्ति का सवाल भी उभर कर सामने आता है। कहा जाता है कि किसी भी **सम्यक** समाज और संस्कृति का सही अनुमान उस समाज में रहने वाली स्त्रियों की स्थिति से लगाया जा सकता है।

ऋग्वेद भारत में स्त्री–विमर्श का सबसे पहला उपलब्ध दस्तावेज है। ऋग्वेद मूलतः मंत्रों का संग्रह है। इन मंत्रों की रचना का श्रेय ऋषियों और तत्कालीन विदुषी ऋषिकाओं को दिया जाता है। इन ऋचाओं में देवताओं की स्तुति के साथ–साथ तत्कालीन स्त्रियों की स्थिति एवं उनकी अस्मिता से जुड़े सवालों के छुटपुट संकेत मिलते हैं। स्त्री लेखन के इस दस्तावेद को स्त्रीवादी दृष्टिकोण से समझना और **उनकी** रचनात्मक सामर्थ्य को प्रकाश में लाना आवश्यक है। इस शोध आलेख का उद्‌देश्य वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति को प्रकाश में लाना, वैदिक ऋषिकाओं की उक्तियों का अध्ययन करना और **उनके** उक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त स्त्री संवेदनाओं को प्रकाश में लाना है।

मुख्य बिन्दुः स्त्री–विमर्श, स्त्री, अधिकार, ऋग्वेद, पुरुष,

समानता, ऋषिकाऐं, मन्त्र, अध्ययन–अध्यापन, पुत्री

प्रस्तावनाः

''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः।''

भारत में महिलाओं की स्थिति समय–समय पर परिवर्तित होती रही है। प्राचीन काल में नारियों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। उन्हें सुख–समृद्धि, शान्ति, वैभव और ज्ञान का प्रतीक माना जाता था। इसीलिए दुर्गा, लक्ष्मी, सरस्वती के रूप में उनकी पूजा करने का विधान रहा है। मनुस्मृति के अनुसार ''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूजयन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।'' अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता निवास करते हैं और जहाँ इनकी पूजा नहीं होती वहाँ सभी कार्य निष्फल होते हैं। वैदिक काल में भारतीय समाज में नारियों की स्थिति उन्नत थी। नारी को समाज और परिवार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। नारी को अर्द्धांगिनी कहा जाता था। पति–**पत्नी** दोनों मिलकर यज्ञ करते थे। बिना नारी के धार्मिक कार्य अधूरा माना जाता था। ऋग्वेद में दमपति (दम्+पति अर्थात् **पत्नी**+पति) शब्द का वर्णन है जिसमें पति से पूर्व पत्नी शब्द का प्रयोग किया गया है। वैदिक काल में कन्या अपनी इच्छा से विवाह कर सकती थी। नारियों में बाल विवाह, पर्दा प्रथा नहीं थी। वे घर से बाहर स्वछन्दतापूर्वक आ–जा सकती थीं। विधवाएँ पुनर्विवाह कर सकती थीं। अथर्ववेद में वर्णन है कि ''नववधू तू जिस घर में जा रही है, वहाँ कर तू साम्राज्ञी है। तेरे ससुर, सास, देवर व अन्य तूझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनन्दित हैं।'' यजुर्वेद के अनुसार नारियों को संध्या करने तथा उपनयन संस्कार के अधिकार प्राप्त थे। जहाँ तक शिक्षा का सम्बन्ध था, स्त्री–पुरुष में कोई विशेष भेद नहीं था और इस युग में दोनों की सामाजिक स्थिति समान रूप से महत्त्वपूर्ण थी।

स्त्री विमर्श एक ऐसा विमर्श है जो जाति, धर्म, वर्ग, वंश, प्रांत और देश आदि से अलग हटकर है। जहाँ स्त्री अपने ऊपर हो रहे अन्याय, अत्याचार, शोषण–उत्पीड़न और उपेक्षा आदि का विरोध करती है। स्त्री विमर्श को पश्चिम से आई एक अवधारणा के रूप में देखा और विचार किया जा सकता हें विशेष रूप से

यह विकासशील देशों की सभ्यता के परिणामस्वरूप स्त्रियों में आई जागृति से उत्पन्न हुआ है। लिंग के आधार पर पितृसत्तात्मक समाज में जहाँ सारे नियम, कानून, वर्चस्व पुरुषों के हैं, वहाँ स्त्री का अपना कुछ भी नहीं है। स्त्री एक ऐसी प्राणी बन चुकी है जो इस पुरुषवादी समाज की कठपुतली और विवशता के साथ निरीह प्राणी के समान जीवन व्यतीत कर रही है। स्त्री के स्वभाव, उसके मन और उसकी संवेदनाओं को समझने के लिए स्त्री–विमर्श एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि है। स्त्री–विमर्श कोई संस्कार नहीं है और न ही कोई विचारधारा है, बल्कि इस बदलते हुए समाज में स्त्री के पारंपरिक मानदंडों को तोड़ने की एक पहल है जिससे स्त्री को समानता का अधिकार, सम्मान, अस्तित्व और स्वतंत्रता प्राप्त हो सके।[1]

स्त्री–विमर्श केवल विमर्श या बहस का मुद्दा नहीं है जितना यह चेतना और जागृति का मुद्दा है। इसमें परम्परा और आधुनिकता दोनों है। स्त्री की विभिन्न समस्याएँ हैं, उनके अपने सवाल हैं और उनके अपने अधिकार हैं यह सब स्त्री–विमर्श के अन्तर्गत सम्मिलित हैं। पश्चिमी और भारतीय स्त्री आंदोलन और संघर्ष का इतिहास काफी पुराना है। स्त्री–विमर्श और स्त्रीवाद दोनों अलग–अलग हैं किन्तु दोनों के केन्द्र में स्त्री और पितृसत्तात्मक व्यवस्था ही है। स्त्रीवाद किसी न किसी विचारधारा या सिद्धान्त के आधार से स्त्री के बारे में विचार करता है और अपनी प्रतिक्रिया भी प्रस्तुत करता है, जबकि स्त्री–विमर्श केवल एक विमर्श और बहस है जो स्त्री से जुड़े किसी भी मुद्दे पर किया जा सकता है।

आज स्त्री विमर्श पूरे विश्व में एक विमर्श और चर्चा के रूप में व्याप्त हो चुका है, जिसमें स्त्री के सभी पक्षों को पुरुष के सापेक्ष रखकर देखा जाने लगा है। स्त्री विमर्श एक ऐसा संवाद और बहस हैं, जिसमें स्त्री अपने–अपने अधिकारों की माँग करती है। इन अधिकारों के अन्तर्गत लिंग के आधार पर समानता, निर्णय, अस्तित्व, अस्मिता, स्वतन्त्रता और मुक्ति का सवाल भी

---

[1] स्त्री विमर्श की उत्तर गाथा, अनामिका सामयिक प्रकाशन, दरियागंज, नईदिल्ली, पृ0 78

उभर कर सामने आता है। कहा जाता है कि किसी भी सभ्य समाज और संस्कृति का सही अनुमान उस समाज में रहने वाली स्त्रियों की स्थिति से लगाया जा सकता है।

वैदिक काल में पहले पहल स्त्रियों को अध्ययन–अध्यापन, शिक्षा, जीवन साथी चुनने की स्वतंत्रता, विवाह से संबंधित निर्णय आदि की स्वतंत्रता थी। उसे सामाजिक समारोहों अथावा विभिन्न कार्यक्रमों में सहभागिता दर्ज करने की खुली छूट, अस्त्र–शस्त्र चलाने की छूट तथा पिता की संपत्ति में भी हकदार माना जाता था। धार्मिक कार्यक्रमों, पूजापाठ में भी स्त्री को महत्त्व दिया जाता था। स्त्रियों को दर्शनशास्त्र का भी ज्ञान दिया जाता था। वे धार्मिक ग्रंथों का भी पाठ कर सकती थीं। इस युग में विधवा स्त्रियों को अपने मृत पति के भाई के साथ विवाह करने की भी अनुमति थी यदि समग्र रूप से देखें तो कहा जा सकता है कि वैदिक युग में स्त्री काफी हद तक स्वतंत्र थी तथा समाज ने स्वतंत्रता के साथ एक व्यक्ति के रूप में उसे स्वीकार किया था।

प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्वर्णिम काल अर्थात् वैदिक काल में नारी, पुरुष वर्ग के साथ समान रूप से समाज के अभ्युत्थान, उत्कर्ष एवं परिष्कार में सहायक थी। इसलिए वैदिक संहिता काल को नारी की स्थिति का स्वर्णिम काल कहा जाता है। नारी की शक्तियों को पूर्णरूपेण विकसित करने हेतु जितनी सुविधाएँ एवं सुअवसर वैदिक युग में प्रदत्त थे, उतना आज के युग में मानव कल्पना से परे है। वैदिक काल में नारी महत्वपूर्ण स्थान की अधिकारिणी थी।[1] तत्कालीन नारी अपने ज्ञानदायिनी, ऐश्वर्यप्रदायिनी एवं शक्तिस्वरूपिणी सभी रूपों में दृष्टिगोचर होती है। वृहदारण्यकोपनिषद् में स्त्री को सृष्टि की रिक्तता को पूर्ण करने वाली कहा गया है– ''अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यते।''[2] ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्म की संज्ञा से विभूषित किया गया है–'' स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।''[3] ऋग्वैदिक काल में कन्या समाज में पुत्र की ही भाँति पर्याप्त रूप से समादृत थी, जिसका प्रमाण हमें एक ऋग्वैदिक

---

[1] डॉ0 मालती शर्मा, ''वैदिक संहिताओं में नारी'', पृ0 1

[2] वृहदारण्यकोपनिषद्, 1/4/3।

[3] सेती वीरेन्द्र चन्द्र, भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, पृ0 83

मन्त्र से प्राप्त होता है, जिसमें दंपति अपने पुत्र–पुत्रियों के दीर्घायु होने की कामना करता है।[1] अन्यत्र भी माता–पिता के वक्षस्थल पर लेटी हुई अबोध कन्याओं का वर्णन प्राप्त होता है, जो कन्याओं के प्रियता का साक्षी है।[2]

वैदिक काल में नारी एवं पुरुष दोनों का संस्कारों से संस्कृत होना आवश्यक था। कतिपय संस्कार जो आज मात्र पुरुष वर्ग के लिए ही आरक्षित हो गये हैं, उस काल में नारियों के लिए भी विधेय थे। कन्या की शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण के कारण उनका उपनयन संस्कार से संस्कारित होना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी था। कन्याएँ यज्ञोपवीत धारण कर ज्ञानार्जन हेतु गुरुकुलों में निवास करती थीं। यज्ञोपवीता नारी का उल्लेख ऋग्वेद संहिता[3] में प्राप्त होता है। अथर्ववेद संहिता भी नारी के उपनयन एवं वेदाध्ययन के अधिकार का समर्थन करती है। वैदिक काल में बौद्धिक क्षेत्र में नारी की उत्कृष्ट स्थिति अनेक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित होती है। तत्कालीन अनेक मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख वैदिक वाङ्.मय में प्राप्त होता है। ऋषियों की भाँति ऋषि कन्याएँ भी ऋचाओं का निर्माण करती हुई दृष्टिगत होती हैं जो इस तथ्य का पोषक है कि नारियों को वेदमन्त्रों के अध्ययन एवं सृजन से विरत नहीं रखा जाता था। वैदिक काल में स्त्री जीवनपर्यनत नैष्ठिक जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मवादिनी रहने के लिए पूर्ण स्वतंत्र थी। उस काल में स्त्रियों के दो भेद प्राप्त होते हैं– ब्रह्मवादिनी एवं सद्योवाह।[4] सद्योवाह वह नारियाँ थी जो अपने ब्रह्मचर्याश्रम पर्यनत विद्या ग्रहण करने तथावेदाध्ययन करने के लिए अधिकृत थी ताकि विवाहोपरान्त वे विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कार एवं पूजा–पाठ सम्पन्न करके अपना दायित्व पूर्ण कर सकें। ब्रह्मवादिनी नारियाँ शिक्षा के सर्वोच्च शिखर पर जाने हेतु स्वतंत्र थी। वे वैदिक ऋचाओं के अध्ययन के साथ–साथ

---

[1] ऋग्वेद, 8/31/8।

[2] ऋग्वेद, 3/31/1–2।

[3] ऋग्वेद, 10/109/4।

[4] तत्र ब्रह्मवादिनी नामग्नीन्धनं वेदाध्ययन स्वगृहे च भिक्षाचर्येति।
सूद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः।। हारीत, वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, भाग 1–2, पृ0 402।

मन्त्र–दर्शन, ऋचा–सृजन, मीमांसा जैसे गूढ़ विषयों के अध्ययन हेतु अपना जीवन समर्पित करती थीं। ऋषिकाओं की पदवी नारी समाज के लिए सुलभ थी क्योंकि वैदिक संहिताकाल में मन्त्रद्रष्ट्री नारियाँ यथा अदिति, इन्द्राणी, लोपामुद्रा, सिकता–निवावरी, जुहू, सूया–सावित्री, रोमशा–कक्षीवान्, वाक्–आम्भृणी, शची–पौलोमी, शाश्वती–आंगिरसी, घोषा–काक्षीवती, श्रद्धा–कामायनी, मैत्रेयी इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है जिनके द्वारा विभन्न ऋचाएँ साक्षात्कृत हैं। सम्यकरूपेण शिक्षित नारियाँ पुरुषों की भाँति अध्यापन कार्य भी करते हुए अध्यापिका, आचार्य, उपाध्याया, उपाध्यायी आदि पदों को सुशोभित करती थी। अतः शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता एवं समान अधिकार प्राप्त थे।

उपसंहारः अतः कहा जा सकता है कि ऋग्वेद भारत में स्त्री–विमर्श का सबसे पहला उपलब्ध दस्तावेज है। ऋग्वेद मूलतः मंत्रों का संग्रह है। इन मंत्रों की रचना का श्रेय ऋषियों और तत्कालीन विदुषी ऋषिकाओं को दिया जाता है। इन ऋचाओं में देवताओं की स्तुति के साथ–साथ तत्कालीन स्त्रियों की स्थिति एवं उनकी अस्मिता से जुड़े सवालों के छुटपुट संकेत मिलते हैं। स्त्री लेखन के इस दस्तावेद को स्त्रीवादी दृष्टिकोण से समझना और उनके रचनात्मक सामर्थ्य को प्रकाश में लाना आवश्यक है। इस शोध आलेख का उद्‌देश्य वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति को प्रकाश में लाना, वैदिक ऋषिकाओं की उक्तियों का अध्ययन करना और उनकी उक्तियों के माध्यम से अभिव्यक्त स्त्री संवेदनाओं को प्रकाश में लाना है।

राष्ट्रीय चारि़त्र्य निर्मिती में नारी का योगदान

डॉ. शुचिता ला. दलाल
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज नागपूर विद्यापीठ,
नागपूर महाराष्ट्र.440 033

प्रस्तुत शीर्षक के अंतर्गत **महिलाऐं** कोई काल्पनिक कथावस्तुओं की नही है। **बल्कि** राष्ट्रीय चारि़त्र्य निर्मिती में जो योगदान **उन्होंने** किया हैं, उनकाही परिचय इस शोधनिबंध में प्रस्तुत किया जा रहा है।

अर्वाचीन संस्कृत विभूतीकाव्यों में राष्ट्रनायक की सहकारी **महिलाऐं** थी उन्ही का सत्यरूप विवेचन किया गया है। उनका राष्ट्रहितार्थ कार्य दुर्लक्षीत नही होना चाहिऐं, इसी उद्देश सें ही उन प्रभावी स्त्रियों का वर्णन अर्वाचीन कवियों ने किया है। वैयक्तिक या स्वार्थ का त्याग करते **हुएं** राष्ट्र,समाज,दीनदलितों के लिऐं उनका **महत्वपूर्ण** योगदान था, यह उक्ति अनुचित नही है।

प्रस्तुत शीर्षक दो भागों में विभाजित होगा। विभूतीकाव्यों में

1.भारतीय नारी का सहकार्य

2.विदेशी नारी का सहकार्य

तन–मन–धन सें देशभक्ती में स्वयं को समर्पित करनेवाली इन भारतीय महिलाओं ने सेवासुश्रुताओं में भी संझोयां था।मॅडम कामा, मणिबेन, बेला दत्ता, कॅप्टन लक्ष्मी,स्वरूपराणी, श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित, कस्तुरबा गांधी, कमला नेहरू,डॅा.सुशीला नायर,मनू गांधी आदी स्त्रियों का वर्णन अर्वाचीन संस्कृत **विभूतिकाव्यों** अर्वाचीन कवियों ने किया है।

मॅडम कामाः

समाजवादी आंतरराष्ट्रीय संमेलन में 22 ऑगस्ट 1907 कों जर्मनीस्थित स्ट्रटगार्ड्ढ में हिंदुस्थान की प्रतिनिधी के रूप में मॅडम कामा उपस्थित थी। गंगाधर विष्णु ठेकेदार 'केदार' विरचित स्वातंत्र्यवीरगाथा नामक विभूतीकाव्य में उल्लेखित किया है।

कामादेवी तु धैर्येण सभायां समुपस्थिता।

दधौ ध्वजं त्रिरङ्गं स्वं सभा सुविस्मिता।।[1]

मॅडम कामांने देश स्वतंत्र न होते हुए भी अत्यंत धैर्य से तिरंगे को लहराया था। संपूर्ण सभा स्थब्ध हो गई।तिरंगे में 'वन्दे मातरम्' सह बीजमंत्र तथा सूर्य,चन्द्र,अष्टकमल थे। मॅडम कामा के इस कार्य को किसीने मॅकडोनाल आदीने विरोध किया तथा हाईडमन आदीने मान्यता देते हुए ठराव पास किया।[2] मॅडम कामा के यह लहराता हुआ तिरंगा परराष्टीय्र तथा परदेशीय नेताओं के सहायता से सम्मत होकर **ब्रिटीशों** को झुकना पडा। भारतीय स्वात़ंत्र्य युद्ध का **पहला** उदाहरण माना जाता है।

मणिबेनः

सरदार वल्लभभाई पटेल **की** यह कन्या गुजरात **विश्वविद्यालय** से स्नातक थी। जब तक देश स्वतंत्र नही होता तब तक विवाह का नाम भी उसने नही लिया था। अपने पिता को आदर्श मानते हुए देश सेवा में वह कार्यरत हो **गई**।[3]

आदर्श पितुरनुसृत्यसाथबाला भालस्थं खलु विदधे व्रतं तदीयम्।

स्वातंत्र्यं भजति न मातृभूस्तुयावत ्तावन्नोपयमकथेति निर्णयन्ति।।

साबरमती आश्रम में महिलाओं की संस्था का मंत्री पद का भार इन्होने संभाला। निरपेक्ष भाव से समाजसेवा करते हुए अन्य स्त्रियों को भी इस कार्य में प्रेरित किया।

इसप्रकार अपनी मातृभूमी के लिए श्रद्धापूर्वक अपना जीवन

अर्पित किया।

बेला दत्ता:

बेला दत्ता सुभाषचंद्र के स्त्री सैनिक में कार्यरत थी। धैर्य तथा सेवा की प्रतिमूर्ति अपना कार्य सावधानरित्या नियोजित करती थी। चिकित्सालय में परिचारिकारूप में सैनिकों की सेवा करती थी। बेला दत्ता एक दिन विस्फोटक प्रहार की शिकार बन **गई**। संस्कृत कवियोंने इस पूजनीय बेला दत्ता को अपनें काव्यों में उसके देशभक्त प्राणार्पण की स्तुतीकी है। श्री सुभाषचरितम् काव्य जो श्री.त्रिगुणानंद शुक्ल ने लिखा है,उसमे से यह दर्शनिय है–

धैर्यस्यसेवाकरणस्यमूर्तिबेलाख्यदत्तास्वनियोदकार्ये

दत्तावधाना हि चिकित्सनार्थं वायौ च विस्फोकरवं निशम्य

कर्तव्यनिष्ठा परिचारिका सा सेवारताचातुरसेकानाम्।। ।

13.18,19 श्रीसुभाषचरितम्

कैप्टन लक्ष्मी:

'**झाँसी** कि **रानी**'नामक सेना के संचालन का कार्यभार सुभाषचंद्र बोस इन्होने लक्ष्मी कुमारी को दिया था। आठ **कोस** पैदल चलके अपने पीठपर खाद्यांन लेकर **युद्ध भूमि पर पहुँच गई**। वीरांगना महिलाओं की संघटना स्थापित हुई थी। इसी में कप्टन लक्ष्मी राष्ट्रसेवा की। संस्कृत **कवियों**[4] उनकी वीरता को पूजनीय मानते थे।

राज्ञी यथाऽसीदतिवीरलक्ष्मीस्मथैव सैन्यस्य महीयसी सा।

लक्ष्मीति नेत्र सुमहत्प्रतिष्ठा बभूव तत्सैन्यसुचालयीत्रि।।

श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित:

धार्मिक कार्य में **रुचि** रहनेवाली श्रीमती विजयालक्ष्मी पंडित मोतीलाल नेहरु की ज्येष्ठ कन्या थी। **गुणों** में वैविध्य उनके देषकार्य में स्पष्टतया दिखते है। जवाहरलाल नेहरु का अनुसरण

करके विजयालक्ष्मी पंडित ने अपने आप को तन–मन–धन से सतर्पित किया था। परंतु विदेशी शासकों ने इन्हे जेल में बंदा किया।[5]

मोतीलालमहोदयस्य महतः कन्या वरिष्ठा श्रुताः मान्या सा विजयेतिपूर्वपदका लक्ष्मीगुणैर्भूषिता। राष्ट्रेऽन्यत्र च कीर्तिमर्जितवती देषस्य कार्येण या। तुष्यन्तीह विराजते जननुते श्रीराष्ट्रपे धार्मिके।।

कस्तुरबा गांधीः

अहिंसा का प्रथम मार्गदर्शन गांधीजीं को कस्तुरबा से ही मिला था। 'अहिंसाया असौ तस्मै पाठं हि प्रथमं ददौ। [6] ख्रिश्चन के व्यतिरिक्त अन्य के विवाह को अवैध ठरानेवाला कायदा[7] इसके विरोध में कस्तुरबाजीने लड़ना शुरू किया। ट्रांसवाल में उन्होने सोला जनों को लेकर प्रवेश किया। वहाँ उन्हे अटक की गई। तुरूंग में उन्होने निकृष्ठ व्यवस्था के कारण उपोषण शुरू किया। चौबीसदिन से भी जादा समय के बाद सुविधा मिलनेपर उपोषण बंद हुआ।[7]

कृत्वा सर्वेत्वुपासांचतुराधिक दिनेष्वाप्तावन्तःसुखानि।

देशहितार्थ कस्तुरबा जी जनता की सेवा के लिए राजकोट में प्रवेश किया था।[8] 22 फरवरी 1944 को आगाखान पैलेस में कस्तुरबा जी का देहत्याग हुआ।

कमला नेहरूः

कमला नेहरू भारत के पहले प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू जीं की धर्मपत्नी थी। तथा भारत की पहली प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी जी की माता थीं। विदेशी व्यापार के खरेदी.विक्रीका व्यवहार विरोध में जनता को रूकवाने का प्रयास करते थे। विदेशी शिक्षा भी उन्हें मान्य नहीं था। इसके लिए अनेक सभाओं में भाषण करके स्वदेष के लिए जागृत करती थीं। विद्यालयों में जाकर छात्रों को भी

स्वदेषसंरक्षणार्थ व्याख्यान देते थे।[9]

कमला नेहरू जी ने सत्याग्रह में कष्ट होने के कारण वह क्षीण, **कृश** तथा जर्जर हो **गई**। क्षयरोग होने के कारण पं. जवाहरलाल **नेहरू जी** तथा इंदिरा जी ने **उन्हें स्विट्जरलैंड** ले **गई**। तबीयत में **सुधार** होने के बाद वह **पुनः** सत्याग्रह में ग्रीष्मऋतु में काम करने लगे। किन्तु **अत्यधिक** उष्णते के कारण वह बेषुद्ध हो **गई**। उसी समय फिरोज गांधी नामक युवक ने **उन्हें** घर लेके **गए**। किंतु प्रकृति अस्वास्थ्य के कारण प्रतिक्षण क्षीण होती **गई**। उसी कारण वह स्वर्गवासी हो **गई**।[10]

डॉ.सुषीला नायर तथा मनू गांधी ,दोनो ने कस्तुरबा गांधी तथा गांधीजी की षुश्रुषा, सेवा करते थे। गांधीजी की जीवन्ताक्षणी मनू गांधी सेवाव्रत **थीं**। मनू गांधी की सेवामें कस्तुरबा गांधी तथा गांधीजी प्रसन्न रहते थे।[11] इस प्रकार त्याग, साहस, कर्तव्यपरायणता, सेवा इत्यादिकी मानो **मूर्तियों** राष्ट्रीय चारि़त्र्य निर्मिती में भारतीय स्त्रीयों का अनन्य साधारण निस्संदेह सहकार्य था। आदर्ष माता, **आदर्श** पत्नी, **आदर्श** कन्या, **आदर्श** भगिनी इन्होने अपने **देश** के लिए तथा भारत की **संस्कृति** के हितार्थ अपना जीवन समर्पित किया।

विदेशी स्त्रियों का सहकार्यः

अर्वाचीन विभूतिकाव्यों मे **विदेशी स्त्रियों के** स्वतंत्र भारत के लिए **किए** गए योगदान वर्णित है।

डॉ.ॲनी बेझंटः

डॉ.ॲनी बेझंट विदेषी होकर भी भारत वर्ष को कर्मभूमी मानती थी। भारत के राजकीय क्षेत्र में वह कार्यरत थी। **अध्यात्मवादि** डॉ.ॲनी बेझंट[12] **काशी** में स्थित थी।

स्वदेषादागतां साध्वौ'मेनीबेझण्टं नामिकाम्। अध्यात्मवादिनीं

काष्यां दृष्ट्वा चित्ते जहर्ष सः।

लोकमान्य **तिलक जी** के **'होमरूल चलवल'**में वह सक्रिय **थीं**। ब्रिटन को झुकाने का यही योग्य समय है, यही उनका मत था। **काशी** में डॉ.ॲनी बेझंट को महात्मा गांधी जी की **भेंट** हुई थी।[13]

मेडलिन स्लेड/मीरा बहनः

साबरमती आश्रम में कुछ **ब्रिटिश महिलाओं ने दी** थी। उसमें मेडलिन स्लेड भी थी। उसने गांधीजी की **शिष्य** होने की इच्छा व्यक्त की थी।[14]

साबर्मत्यारमे काचिद्ब्रिटिषामहिलाऽऽगता।

नामिका मेडलिन्स्लेडईप्सा तस्याश्च षिश्यता।।

मेडलिन स्लेडका नाम मीरा बेन में बदला गया। मीरा बेन के विचार आषादायी थे। धर्म तथा वर्णभेद भूलकर समता का व्यवहार **होना चाहिए**, यह उसका मत था। सम्पूर्णतः हिंसा तथा असत्य मूल से नष्ट **होना** चाहिए, यह ईश्वरभक्त मीरा बेन का प्रयत्न था।[15]

मार्गारेट सङ्गराः

अमेरिकन यात्रा से मार्गारेट सङ्गरा गांधीजी के वर्धा आश्रम मे स्थित हो **गई**। लोकसंख्या का नियंत्रण **यही** उसका मूल **उद्देश्य** था। यही विषय के प्रबोधन के प्रचार हेतु मार्गारेट सङ्गरा भारत में **आई थीं**।[16]

भगिनि निवेदिताः

लण्डन **निवासी** मार्गारेट विवेकानन्द स्थापित रामकृष्ण मठ में भगिनि निवेदिता हो **गई**। विवेकानन्द के विचार से वह प्रभावित हुई **थीं**। जीवन के अंतिम क्षण तक परिचारिका का कार्य उसने किया था।[17]श्रीस्वामीविवककानंदचरितम् के कवि लिखते **हैं**-

अनया किल भारतावनेः परिचर्याव्रतमन्तिमक्षणम्।
उररीकृतमस्य कोपमा समयेऽस्मिन्क्वचिदीक्षिता क्षितौ।

भगिनि निवेदिता के व्रत की कोई भी उपमा पृथ्वि पर नहीं है।

मिसेस हेलः

स्वामी विवेकानंद को अमेरिका मे अत्यंत सहकार्य मिसेस हेल ने किया था। सर्वधर्म समेलन के लिए स्वामी विवेकानंद अमेरिका मे गए थे। मिसेस हेल ने बोस्टन में अपने घर में रहने की व्यवस्था की थी। स्वामी विवेकानंद को यह घर माता के घर के समान लगता था।[18]

कुटुम्बिभिश्चैतमियं सिषेवे तन्मंदिरं मातृगृहं सयेने। हेलमहिलासतर्पितघृतोत्तरीयाम्बरः।[19]

विदेशी स्त्रियों के कार्य में **जाती**, धर्म, वर्ण, प्रदेशों में कोई भी घटक ने **प्रवेश नहीं** किया था। मानवी मूल्य उनके लिए महत्त्वपूर्ण **थे**। विश्व बंधुत्व की भावना ही उनके नंस नंस में बैठी थी। अतः इन महिलाओं की निरपेक्ष सेवा कवि ने अपने मन में सुचारू रूप से प्रतिबिम्बित की है।

अन्य **महिलाएं** जैसे सरोजिनी नायडू,इंदिरा गांधी का भी राष्ट्रीय चारित्र्य निर्मिती सहभाग था।

इस प्रकार भारतीय महिला तथा **विदेशी महिलाओं** का सहकार्य अतुलनीय है। **स्त्रियों** के सहकार्य से प्रेम ,विश्वास तथा सौहार्द की भावना उत्पन्न होती है। यही स्त्री पात्रों का राष्ट्रीय चारित्र्य निर्मिती के लिए **उद्देश्य** है।

श्री **शिव प्रसाद** भारद्वाज ने अपने ऐतिहासिक लौहपुरुषावदान महाकाव्य में सरदार वल्लभभाई पटेलजी का स्त्रीयों के प्रति उनका मत प्रकट करते है। कवि लिखते **हैं**-

द्वारे रुद्धवा इमा नारी र्नियत्या सबला अपि।
उपेक्ष गुरुकार्येषु स्वयं कुरुथ निर्बलाः।।
अंसेनासं समाजस्य भवद्भिः सह ता अपि
ससाहसं नियुध्यन्तां लभन्तां च जयश्रियम्।।

संदर्भः

1. गंगाधर विष्णु ठेकेदार 'केदार' विरचित स्वातंत्र्यवीरगाथा ,काळ प्रकाशन,1404,सदाशिव पेठ,पुणे
2. केदार 'कृत स्वातंत्र्यवीरगाथा,2.45 काळ प्रकाशन,1404,सदाशिव पेठ,पुणे
3. 23.37 शिवप्रसाद भारद्वाजकृत लौहपुरुषावदानम् भारद्वाज निकेतन,हरिपूर कॉवली,जयदेव महादेव सिंह रोड,लिंक रोड,देहरादून
4. 13.13 श्री.त्रिगुणानंद शुक्लकृत श्री सुभाषचरितम्
5. इंदिरागांधीचरितम् 20,21डॉ.सत्यव्रतशास्त्री ,भारतीय विद्या प्रकाशन,103बंग्लो रोड,जवाहरनगर,दिल्ली–7
6. 1.61'महात्मायन्',कवि केदार,जयदीप प्रकाशन,10,नारायण पेठ,पुणे 411030
7. 4.69श्रीगांधीगौरवम्,शिवगोविंद त्रिपाठी,मातृशरणम्,ए–65,जयपूर
8. परिजातापहार 1/55
9. इंदिरागांधी चरितम् सर्ग 23 डॉ.सत्यव्रतशास्त्री ,भारतीय विद्या प्रकाशन,103, बंग्लो रोड, जवाहरनगर, दिल्ली–7
10. इंदिरागांधी चरितम् सर्ग 12.34,डॉ.सत्यव्रतषास्त्री ,भारतीय विद्या प्रकाषन,103,बंग्लो रोड,जवाहरनगर,दिल्ली–7
11. प्रषंसापत्रकं लब्धं वैद्यकीयाधिकारिणःमनुर्नाम पुरा तत्र प्रेषिता बन्दिनी पुनः।।11.129'महात्मायन्',कवि केदार,जयदीप प्रकाशन,10,नारायण पेठ,पुणे 411030
12. 3.7169श्रीगांधीगौरवम्,शिवगोविनद त्रिपाठी,मातृशरणम्,ए–65,जयपूर
13. 5.44'महात्मायन्',कवि केदार,जयदीप प्रकाशन,10,नारायण पेठ,पुणे 411030
14. 'महात्मायन्',कवि केदार,जयदीप प्रकाशन,10,नारायण पेठ,पुणे 411030
15. 10/107'महात्मायन्',कवि केदार,जयदीप प्रकाशन,10,नारायण पेठ,पुणे 411030
16. 10.84,96'महात्मायन्',कवि केदार,जयदीप प्रकाशन,10,नारायण पेठ,पुणे

411030

17. 12.4 श्रीस्वामीविवककानंदचरितम्,श्री. त्र्यंबक शर्मा भण्डारकर,चौखम्बा संस्कृत सीरीज,गोपाळ मंदिर लेन,वाराणसी

18. 9.47 श्रीस्वामीविवककानंदचरितम्

19. 10.6 श्रीस्वामीविवककानंदचरितम

20. 24.63,64, श्री शिवप्रसाद भारद्वाजकृत लौहपुरुषावदान, भारद्वाज निकेतन,हरीपूर कॉलनी, लिंक रोड,देहरादून,248001

Women and Jainism: A special reference to Jinasena's *Ādipurāṇa*

Hetal M. Kamdar
Ph.D. student
Department of Sanskrit, University of Mumbai
9821166462
Kamdarhetal9@gmail.com

Abstract

The topics of women, femininity, their position, and role are of enduring interest and importance in the context of Indian culture and society. The sanskrit literary texts abound with examples where the female gender in its role as a 'mother' has been revered. However, her role as a 'woman' raises the question of agency. The treatment of the female gender and femininity has been mostly a case of paradoxes. In Jainism, there exists a debate on the spiritual potential of women. This has led to the biggest schism in the religion with the formation of the two major sects – namely, the *Digambaras* and the *Śvetāmbaras*. The former do not believe that women are capable of spiritual salvation whereas the latter refute this stance. However, a predominance of women as nuns and laywomen through sheer numbers, puts them on a slightly even keel in comparison to the men. They are a part of the community which drives the religion forward. It is fascinating to see how they have been portrayed in the Jaina sanskrit literary works and the *Ādipurāṇa,* makes for an engrossing depiction. We find several examples of the women in the role of a mother, as a spiritual companion, and as someone who follows her own path.

Introduction

The topics of women, femininity, their position, and role are of enduring interest and importance in the context

of Indian culture and society. The sanskrit literary texts abound with instances of women being revered as the 'Divine Mother' or the embodiment of the female principle in terms of regeneration and reproduction. Nevertheless, one of the questions that arises is that of agency when we talk of their position and role as a woman beyond motherhood; with her own ideas and opinions. The treatment of the female gender, therefore, we find has been mostly a case of paradoxes.

As we study the ancient and medieval literature of the sub-continent however; we do see some portrayals of strong women which have endured through the centuries.

Significance in Jainism

A study of the Jaina texts will reveal that philosophically the Jainas do not agree to any discretion based on gender, caste, creed, status. Nonetheless, there exists a debate on the spiritual potential of women. This is one of the major causes of the schism in the religion which has led to the formation of the major sects – namely, the *Digambaras* and the *Śvetāmbaras*. The former do not hold with the view that women are capable of spiritual salvation whereas the latter refute this stance. This belief has percolated down into the literary texts of the Jainas and is reflected in the portrayal of the women. However, there is a difference between the writings, preachings and the 'lived religion.' While the theoretical and philosophical debate may swing between acceptance to the theory of women being capable of achieving the highest goal or not; depending on which side of the debate one is on, in the mundane life it is possible that the popular social tradition intrudes and takes over to an extent.

Leaving aside the debate on spiritual achievement by women within the sphere of the Jaina religion, the women have a specific role to play. Jainism as its foundation has

the four-fold congregation which holds a unique significance. Every *Tīrthaṅkara*, on achieving Omniscience is required to form this congregation. This fourfold congregation is made up of monks, nuns, male laity, and female laity. As a rule, all four are of equal substance. In fact, in the details pertaining to the *Tīrthaṅkaras,* it has been recorded that the nuns and female laity outnumber the monks and the male laymen. It is therefore noteworthy, that the women play a significant role in driving the religion ahead. This predominance of the women in the religion has led to the formation of some unsaid rules of virtue and behavior leading to the concept of *Satī* in Jainism as well. However, there is a major point of distinction - the *satī* in Hinduism must show superior virtue and fidelity in connection with her husband whereas, in Jainism the women's inclusion in this category is for acts of veneration and pursuing of the Jaina principles against all odds. A few of the *satīs* like Candanabālā, Sulasā, and Rājīmatī, are enduring symbols of chastity and virtue towards the religion and their stories are often quoted in the literary texts.

The story of Sulasā is especially inspiring from a woman's point of view. Her strength of character and forbearance are truly impelling. Sulasā was married to Nāga. However, the two were not blessed with any children, and this was a cause of great anxiety for her husband Nāga. He was worried that he would die childless and especially sonless. He believed that this would lead him to hell after death. When he talked about his concerns to Sulasā, she did not lose her equanimity and advised him about the tenets of Jaina *dharma*. Through the understanding of these tenets, it was her firm belief that it was only through one's pious and exemplary deeds and actions that one could prevent a rebirth in the hellish regions. The idea that the performance of the funeral rites by a son would help one in getting heaven; according to

her; was erroneous. However, Nāga would not be swayed from his beliefs, and therefore, Sulasā suggested that he take a second wife. This was not possible as Nāga had taken the vow of only ever having one wife. Sulasā was also steadfast in her own beliefs and suggested that they just be good Jaina laymen. However, Sulasā's dedication invited the attention of the god Harinagameṣī. He decided to reward her and therefore, came to her house posing as a Jaina monk. He offered her a boon, and Sulasā asked for a son for her husband. She was granted her heart's desire; however, this came with a catch. Though she conceived thirty-two sons, she was told that they would all die on the same day. Nevertheless, for the sake of her husband she accepted the boon. The sons grew up and were the guards for the King Śreṇika. They fought for him and consequently, died in battle. Nāga was inconsolable, but Sulasā continued to be calm and asked him to walk on the path of Emancipation. Sulasā committed herself to the religion even more vigorously and later became the first laywoman of the congregation formed by Mahāvīra.

The Sulasā story is an ideal example of the difference between the religion preached and the lived religion. In a given circumstance, sometimes the actions of the women are dictated by her upbringing rather than any coercion. As the desire for a son only to perform the funeral rites is not a part of the ideology of the religion, she initially tries to dissuade her husband by explaining to him the Jaina *karma* theory. We see that though she is doing what is expected to do as per the social tradition of the age, her internal passions are solely in her control. This story has been beautifully analysed by M. Whitney Kelting in her book.[1] Sulasā shows detachment to the entire proceedings and

---

[1] M. Whitney Kelting, *Heroic Wives – Rituals, Stories, And the Virtues of Jain Wifehood,* Oxford University Press, New York, 2009, p.36 ff

unwavering focus on liberation, she is not as enamoured of wifehood or even motherhood as per the expectations of society. Even though she is devoted to her husband and sons her commitment is steadfastly for the religion and her sights are firmly set on achieving her own liberation. Nevertheless, the desire to put her husband first as far as possible is still undeniable as a part of the upbringing and social mores.

Portrayal in *Ādipurāṇa*

We see these paradoxes in some famous Jaina literary texts as well. The *Ādipurāṇa* makes for a good case study. It is an encyclopedic text of the 9th century from the Deccan region written by a Jaina monk, Jinasena; of the *Digambara* sect. He belonged to the court of the *Rāṣṭrakūta* King Amoghavarṣa and was his spiritual preceptor.

In this text, we can divide the portrayal of women into three broad points:

1. As a mother figure
2. As a spiritual companion; and as
3. As an individual who works on her own emancipation

The *Ādipurāṇa* is the story of Ādinātha, and it includes a narration of the stories from his previous births until the birth as a *Tīrthaṅkara.* An important portent of the birth of a *Tīrthaṅkara,* is an event connected to the mother-to-be, seeing the sixteen/fourteen dreams. In the *Digambara* ideology, the mother of a *Tīrthaṅkara* sees sixteen dreams, whereas the *Śvetāmbaras* believe that it is fourteen dreams. After waking up, Marudevī in turn describes them to her husband, the King Nābhirāja. The king was knowledgeable on the interpretation of dreams about and could immediately know the meaning of her dreams. He informs her about how great and a possessor of

virtues her son would be. Thereafter, Marudevī was always accompanied by the goddesses of heaven who served and entertained her in several different ways. She was never left alone or troubled. She was constantly protected and pampered. This is a classic instance of the portrayal of the mother figure. She is revered and respected as the mother of a great man.

Another reference which occurs; also connected to motherhood, accords the respect a mother is due by virtue of the genes she passes on to her child. She is not just the vessel which carries the child; while the upbringing of the child is based on traditional norms. She is a part of the upbringing and is the cause of the child's good and favourable qualities. In one of the cantos, there is mention of the Jaina *saṁskāras*, wherein it is acknowledged that the newborn is blessed because it has all the good and favorable qualities and characteristics of the mother. This is a better way of recognizing that the mother is also a contributor to the child's good qualities as well as intellect[1].

Coming to the second point, the women are very frequently seen in the capacity of a wife of a religious thinker and therefore, his spiritual companion. As such, the woman is then not the initiator of her own destiny but a secondary character in that of her husband's life. In one of the prior births of Ādinātha, he is King Vajrajaṅgha and his wife is Śrīmatī. All throughout their life, Śrīmatī is a worthy supporter and companion to her husband who is slated for bigger things. She herself is also on a path of eventual self-realization. Their *karmas* are such that they both die together and because both have the same state of mind at death, are also born in the same place in their next birth. However, she is following her husband, and

---

1 Pannalal Jain (Ed. & Tr.), Ācārya Jinasena's *Ādipurāṇa Part II*, Bharatiya Jnanpith, Delhi, 2017 (2007), p. 304

therefore, he is the primary character in the narration.

Nonetheless, there are also references to women treading the path of penances and austerities that will eventually lead to the achievement of the highest goal. In the third component, thus; is the description of a woman who in her individual capacity walks on the path of self-attainment on her own journey. The soul of Śrīmatī, in one of the earlier births was born in adverse conditions and was a generally neglected child of an extremely poor family. However, she does not let these conditions drag her down and works to support herself. When she meets a Jaina ascetic, she asks him the reason of her present condition. On being recounted her behavior in an earlier birth, she resolves to perform penances and austerities and to improve her condition spiritually[1]. We thus, see a woman who is determined to improve her lot. She is a young girl who could have thought marriage would solve her problems as a husband would take care of her responsibilities. But here, it is not so. Jaina values do not consider the life of a householder to be either compulsory or inevitable. It is not the primary reason for ones being which includes wifehood and motherhood or even being a husband and a father. The soul of Śrīmatī, therefore, decides to take matters into her own hands and she takes the refuge of religion.

There are some more references to independent women. In her birth as Śrīmatī, she is shown to be an intelligent woman, capable of making her own decisions. She is a princess who is well versed in the art of strategy and also knows how to draw and paint. Śrīmatī tells her nanny that only women help women in times of duress. This is a very striking statement. In the world of men, it would have been necessary to have other women in one's

---

1 Pannalal Jain (Ed. & Tr.), Ācārya Jinasena's *Ādipurāṇa Part I*, Bharatiya Jnanpith, Delhi, 2017 (2007), p. 130

confidence to be able to do something beyond the acceptable limits or something which may have been expressly forbidden. We see here a camaraderie between the women.

Another significant example of a woman who is taught to be independent is by Ādinātha himself. When Ādinātha wanted to speak about art and the other knowledges, he spoke to his daughters. It has been beautifully conveyed by Ādinātha to his daughters, that they were physically beautiful and rich of character and if they had education then their births would be successful. This is a powerful departure from the usual advice given to women that their births are successful if they have a husband, or if they have children and particularly a son. He further says that in this world a person with knowledge is respected even by the learned and a well-educated woman can succeed in securing the best position – may it be materially or spiritually. It is further emphasized that education alone showers glory, welfare on humans and is the means to fulfil all desires. Education is a true friend and the only wealth which always accompanies one. After enumerating the various advantages of education, he insists to his daughters that this was the time for them to get educated. The girls are taught alphabets and numbers. Brāhmī learned reading and writing and Sundarī learnt numbers and mathematics. The first learning was about literature; which consisted of a combination of grammar, metres, and figures of speech.

To Conclude

Looking at the references discussed we are assured that from the Jaina viewpoint, at the highest level the women are principally treated as equals. However, several portrayals as already mentioned, are paradoxes and some are even contradictory in showing the women. The roles that women are assigned range from a *satī* to a celestial

damsel, a semi-divine being, a revered mother, royalty, women of the royal court, and poor women. These characters are wide ranging and there are some truly inspiring women shown in these literary masterpieces, however, their stories are still sparse compared to the male characters. The sample references quoted above show the women as potentially capable of thinking on their own, and while many are able to act on it, others simply fail to do so either because of their upbringing or the popular social tradition of the time. Nevertheless, what is heartening is that the women characters may not be the primary characters in a narrative, but realistically we know that they had more of a presence and importance socially and in the religious sphere which may not reflect in these tales.

References

- Jain, Pannalal (Ed. & Tr.). Ācārya Jinasena's *Ādipurāṇa Part II*, Bharatiya Jnanpith, Delhi, 2017 (2007)
- Jain, Pannalal (Ed. & Tr.). Āchārya Jinasena's *Ādipurāṇa Part I*, Bharatiya Jnanpith, New Delhi, 2017 (2007)
- Kelting, M. Whitney. *Heroic Wives – Rituals, Stories, And the Virtues of Jain Wifehood,* Oxford University Press, New York, 2009
- Muni, Śrī Jina Vijaya (Ed.). *Dhūrtākhyāna of Haribhadra Suri*, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay, 1944

WOMEN IN VEDIC LITERATURE

Dr. Sistla Sailaja
ssailaja@gmail.com
Keshav Smarak Junior College
Hyderabad

Abstract:

Vedic Literature is the most important and valuable contribution of the Aryans to Indian Culture. The term Veda or Vedic Literature refers to the sacred literature of the Vedic and Brahmanical religion. This Vedic Literature consists of four different classes of literary works like the Samhita, the Brahmanic, Aranyakas and the Upanishads. The earliest literary compositions of Vedas are the most important and valuable contribution of the Aryans to the Indian Culture.

In Vedic times, the social status of every individual depended on the religions, privileges and disabilities seen in contrast to the modern times, where the social status generally depends upon education, economic conditions and political privileges. The religion and social welfare of women first began to take shape during the Vedic times.

The position of women in Vedic Literature has not occupied high positions. Women important in social and religious life were generally exploited by the seekers of power. Women were adored and regarded as the shakti or mother goddess in the Vedic period i.e.. 1500-1000BC, who is considered a symbol of life with enormous ability for tolerance and sacrifice which led them attain a respectable place in the society. Women were also associated with property in the Epics and Puranas.

The goddesses and semi-divine apsaras are seen

included in the shrines of the Vedas. Only few goddesses were invoked. 21 hymns are addressed to goddesses Ushas, one to the goddess Ratri, one to Prithvi, 4 to the goddess Aapa, one to goddess Vaak and three hymns to the Goddess Saraswati. Aditi and Saraswati are listed among the major Goddesses of Rig Veda. Ushas is the major goddess of Rig Veda. Ushas is the graceful goddess who adorns the Vedic heavens. 'सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः| सह दयुम्नेन बृहता विभावरि राया देविदास्वती (Rig Veda-I-48.1)

The study of the position of women in Vedic Literature becomes important as it analyses the various aspects of the status of women in the Samhitas, Brahmanas, the Aranyakas and the Upanishads. Women like Gargi, Maitreyi, Apala, Ghosa, Sita, Savitri and Draupadi etc… can be said as role models with their accomplishments. Vedic Literature has distinguished itself by the contribution of women with an extraordinary high calibre and very significant position.

Key Words: Vedic Literature , Women, Vedas, Upanishads, Samhitas, Brahmanas, Aranyakas, Gargi, Saraswathi, Goddess, Epics, Puranas.

The term Veda or Vedic Literature refers to the sacred literature of the Vedic and Brahmanic religion. This Vedic Literature consists of four different classes of literary works like the Samhita, the Brahmanas, Aranyakas and the Upanishads. The earliest literary compositions of Vedas are the most important and valuable contributions of the Aryans to the Indian Culture.

In Vedic times the social status of every individual depended on the religion and privileges seen in contrast to the modern times, where the social status generally depends upon education, economic conditions and political privileges. The religion and social welfare of women first began to take shape during the Vedic times.

The position of women in Vedic Literature has not occupied high positions, but was always prominent the walks of life. Women important in social and religious life were exploited by the seekers of power.

What is woman? What is she?

- Worthy, Wonderful
- Open minded, obedient
- Marvellous, Multi-tasking
- Attentive, All rounder
- Noble, Nurturing

She is no more a weaker sex. Multi-skilling thy passion, preferences are thy mode, choices include A to Z professions. Marriage is not an issue, she is equal to opposite gender, follows what she decides, she is bold enough to carry out the responsibilities, very firm where mind does not gets disturbed, she does not get easily influenced, perfection is her motto, she is shakti too. She leads and fulfills all her responsibilities and duties. Woman is adjusting, builds family, communicates wisely, depends on father, husband, brother when required, makes path easy in life, facilitates the social ethos, guides the children, honors elders, nurtures children, integrates activities, makes the journey together, manages both work and house, nurtures children, has positive thinking of social, political, financial and emotional situations, has quality living.

Yasyām bhūtam samabhāvāt
Yasāṃ viśvamidam jagat
Tāmadya gāthām gāsyāmi
Yā strīṇāmuttamam yaśah

(Paraskara Gruhasutra - 1.7.2)

It is also said कार्येषु दासी करणेषु मन्त्री, भोज्येषु माता, सयनेषु

रम्भा क्षमया धरित्री. Women is a beautiful creation by God. The Vedic depiction of women not only portrays their role in the family and society but also their affinity with the cosmic creative process and their identity as symbol of power and glory, The Vedic view of woman is holistic in which male and female are integrally complementary, none is better or worse half, they are just two equal halves of the same, two aspects of the same reality. (Brihadaranyaka Upanishad - 1.4.3).

It is observed in Vedic Literature that women were given equal rights and were given respect. They played a very active and important role in running the family to manage and maintain the social order. Education was given to all women irrespective of the varna or class.

Women were adored and regarded as the Shakti or Mother goddess in the Vedic period i.e.. 1500 -1000 BC who is considered a symbol of life with enormous ability for tolerance and sacrifice which led them attain a respectable place in society. Women were also associated with property in the Epics and Puranas. Manu in Manusmriti mentions that a woman would be dependent on her father in childhood, her spouse in youth and her children in old age.

Vedic Literature has distinguished itself by the contribution of women with an extraordinary high calibre and a very significant position. Women were also well versed in arts and possessed scholarship. They also have acquired name and fame in other fields of knowledge. Among the authors of the hymns of Rig Veda, there are some women who contributed among who are Lopamudra and Apala. Lopamudra is referred to in the Anukramani which is a testimony about the women in Vedic Literature and their contribution.

In the early Vedic ages women enjoyed an honored

place in the society. Rig Veda mentions the names of some learned ladies like Viswavara, Apala and Ghosa who composed mantras and attained the rank of rishis.

The goddesses and semi-divine apsaras are seen included in the shrines of the Vedas. Only few goddesses were invoked. 21 hymns are addressed to Goddesses Uṣas, 1 to the Goddesses Rātrī, 1 to Pṛthvi, 4 to the Goddesses Āpa, 1 to Goddesses Vāk and 3 hymns to the Goddesses Saraswathi. Aditi and Saraswathi are listed among the major Goddessess of the Rig Veda. Uṣas is the graceful Goddess who adorns the Vedic heavens.

सह वामने न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः |
सह दयुम्नेन बृहता विभावरी शया देविदास्वती ||

(Rig Veda I.48.1)

Aditi is often described as the Deva mātā i.e.. mother of the Gods. The tradition of Aditi being the mother of the Gods is found even in the Purāṇās. The most important goddess seems to be the Earth Goddess who is invoked as the ‘great mother’. The grandeur of mother Earth has commanded reverential praise from her sons too. It is said ‘Great is our mother Earth’

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः (Atharvaveda XII 1.12)

In ancient India women had enjoyed an honourable position in the household and in society. Position of women was comparatively high in the Vedic period particularly in the period of Rig Veda. The Vedic Literature says that the marriage for a woman was equivalent of the Upanayana for a man.

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम् | (Atharvaveda XI.5.18)

The Strīdhana literally means the woman’s property. P.V.Kane in his book ‘The History of Dharmaśāstra’ says that the gems of Strīdhana are traced in the Vedic

Literature. (P.V.Kane, History of Dharmasastra, P456).

The Taittiriya Samhita affirmatively declares that women are not shareholders of property of their husbands and hence it recommends affectionate treatment.

पत्यन्वारभते पत्नी हि परिणह्यस्येशे

(Taittiriya Samhita - VI.2.1.1)

Manusmṛti clearly indicates the dignity and respect towards women.

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता |

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः ||

(Manusmriti -3.56)

Which means where women are honoured, divinity blossoms there and where women are dishonoured all actions, no matter how noble they remain unfruitful.

Women like Gargi, Maitreyi, Apala, Ghosa, Sita, Savitri and Draupadi can be said as role models with their accomplishments. They were mantra perceivers who undertook huge penances and achieved great power and divinity. Gosha, Apapla, Lopamudra, Sachi and Vishvavara have penned hymns and rose to prominence as intellectuals.

Gods like Brahma, Vishnu, Rudra, Indra and others are worshipped inVedic Hymns, while Goddesses like Saraswathi, Lakshmi and Mahashakti are also given equal honor and prominence. The Vedic traditionhas held a high regard for the qualities of women.

In Mahabharata Anushasana Parva, Bheeshma explains that in the lineage where daughters and daughters-in-law are saddened by ill treatment, that lineage is destroyed. When out of their grief these women curse these households such households lose their charm, happiness

and prosperity.

पौरुषं विप्रनष्टं मे स्त्रीत्वं केनापि मेऽभवत्

स्त्रीभावात् कथमश्वं तु पुनरारोढुमुत्सहे

महतात्वथ खेदेन आरुह्याश्वं नराधिपः

In the matter of dharma in Vedic Literature women stood as a decisive force in spirituality and the foundation of moral development. Women in Vedic Literature not only expounded hymns but also performed sacrifices like priests offered oblations to the gods.

In Vedic Literature we come across many Brahmavadini ladies like Lopamudra, Gargi and Maitreyi who took part in the great discourses and expressed unparalleled knowledge of Supreme self. In Vedic age daughter received education equally like son. Brihadaranyaka Upanishad presents a father who wished his daughter to be a scholar. "दुहिता मे पण्डिता जायते" (5.4.17)

Taking an example from Mahabharata, it can be said that Gandhari was a virtuous woman who endured suffering in her life and is considered to be her extreme internal strength. She lived her entire married life as a blind folded women which shows her devotion and faithfulness as a wife. Gandhari also urged her children to follow the principles of right pathway and conciliate with Pandavas.

In Ramayana, Sita is one of the characters who possessess all the great qualities that make her a great woman. Sita can be said a woman with vigorous character who has picked up the Shiva Dhanush as a kid. She was also a woman with emotional and mental strength. She very faithfully and very strongly stood by her husband in the hardest times. She had a calm mind and taught the world how to face hardships and not lose faith. She personified how a human being should be and how to lead a good life.

In Mahabharata, Shanti Parva(30.9) stating about the motherhood and family it can be understood that usually women provide the love, understanding and nurturing for the development of children which is unlikely for most men.

Bhishma in Mahabharatam said that "the teacher who teaches true knowledge is more important than ten instructors. The father is more important than ten such teachers of true knowledge and the mother is more important than the ten such fathers. There is no greater guru than mother". Women were always given a high stature in all the walks of life.

Women have taken pany central roles in Hindu Dharma, let it be the birthers, nurturers, instigators of wars and propagators of knowledge. Adi Shakti is the ancient and pure form of energy and thus femininity evolved. In this context the Panchakanyas can be taken as examples. Nature manifests in five forms - earth, water, fire, wind and sky. Each of the Pancha Kanyas is born from one of these elements. The Pancha Kanyas are Ahalya, Draupadi, Sita, Tara and Mandodari.

अहल्या द्रौपदी सीता तारा मण्डोदरी तथः |
पञ्च्कयाः स्मरेन्नित्यम् महापातकनाशिनीम् ||

In a view the Pancha Kanya are thought highly of as exemplary women and chaste wives. The power owing to their celibate kind was the result of leading a pious, rightful and responsible life in thought, word and action, thereby the purest and most sincere of conduct even in the most challenging times. They stood exemplary lives.

The study of the position of women in the Vedic Literature becomes important as it analyses the various aspects of the status of women in the Samhitas, the Brahmanas, the Aaranyakas and the Upanishads.

REFERENCES:

- Valmiki Ramayanam. Gita Press, Gorakhpur
- Mahabharatam, Gita Press, Gorakhpur
- Position of Women in the Vedic Ritual, Jatindra Bimal Chaudhuri, Calcutta
- Position of Women in Hindu Civilization, A.S. Altekar, Motilal Banarsidass
- Status of Women in Ancient India, Prof.Indira, Motilal Banarasidass
- Women in the Vedic Age, Shakuntala Rao Shastri, Bharatiya Vidya Bhavan
- Women in Rig Veda, Bhagawat Saran Upadhya, Nand Kishore & Bros, Benaras
- Position of Women in Hindu Civilization, Kumud Lata Saxena, Allahabad.

वैदिक काल में स्त्रीविमर्श

डॉ. चन्द्र भूषण
सहायक प्राध्यापक
संस्कृत विभाग
एस एल के कालेज, सीतामढ़ी
दूरभाष - 9934760505

सारांश

वैदिक काल को नारी की स्थिति का स्वर्णिम काल कहा जाता है। इस काल में नारी पुरुष के साथ समान रूप से समाज के उत्थान में सहायक थी। नारी को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था तथा उसे लक्ष्मी, देवी, साम्राज्ञी आदि सम्मानसूचक नामों से अभिहित किया जाता था। विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना नारी का सृष्टि के विकास क्रम में प्रभूत योगदान है अतएव ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्मा की संज्ञा से विभूषित किया गया है- **"स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"**। इस काल में कन्या को समाज में पुत्र के समान आदर प्राप्त था। कन्या को पुत्र के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। शिक्षा के प्रारंभ से पूर्व पुत्री को भी उपनयन संस्कार से संस्कारित कर अध्ययन करने का अधिकारी बनाया जाता था। वैदिक काल में नारी एवं पुरुष दोनों का संस्कारों से संस्कृत होना परम आवश्यक माना जाता था। वैदिक युग में बौद्धिक क्षेत्र में नारी की उत्कृष्ट स्थिति दृष्टिगोचर होती है। अनेक मंत्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख वैदिक संहिता में प्राप्त होता है। ऋषियों की भांति ऋषि कन्याएं भी ऋचाओं का साक्षात्कार करती थी। विवाह के क्षेत्र में भी नारी की स्थिति उत्कृष्ट थी। बाल विवाह की प्रथा नहीं थी कन्याओं का विवाह परिपक्वावस्था में होता था। वे विवाह के संबंध में स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थीं। परिवार में उनका अत्यंत उच्च एवं प्रतिष्ठित स्थान हुआ करता था।

परिवार की बड़ी वधू समस्त गृह प्रबंध में प्रधान संचालिका हुआ करती थीं। घर के समस्त कार्य तथा दायित्व उसके संरक्षण में तथा उसकी इच्छानुसार संपादित किए जाते थे। परिवार के समस्त सदस्य उनका आदर करते थे और आज्ञा का पालन करते थे। वैदिक युग में नारी को पत्नी के रूप में बहुत आदर प्राप्त था। आर्य पत्नी को घर मानते थे। पत्नी पुरुष की अर्धांगिनी होती है अतः पत्नी के बिना पति अपूर्ण है। तत्कालीन महिलाएं पति के साथ युद्ध में भी जाती थीं और उनके रथों का संचालन करती थीं। इसके अतिरिक्त दौत्य कर्म में भी निपुण हुआ करती थीं।

कुंजी शब्द - साम्राज्ञी, स्त्री शिक्षा, अर्धांगिनी, ऋषि कन्याएं, मंत्रद्रष्टा, दौत्य कर्म ।

परिचय

भारतीय संस्कृति सदैव ही **"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"** सिद्धान्त का अनुगामी रही है। इसकी जड़ें हमें वैदिक ऋचाओं में प्राप्त होती हैं। वैदिक काल को नारी की आदर्श स्थिति का स्वर्णिम काल कहा जाता है। इस काल में नारी पुरुष के साथ समान रूप से समाज के उत्थान,परिष्कार तथा संस्कार में सहायक थी। नारी को समाज में अत्यन्त सम्मान एवं उच्च स्थान प्राप्त था तथा उसे लक्ष्मी, देवी, साम्राज्ञी[1], महिषी आदि सम्मानसूचक नामों से अभिहित किया जाता था| वह शरीर में नाड़ी की भाँति समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी।[2] वह विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना के रूप में समादृत थी और उसका सृष्टि के विकास- क्रम में प्रभूत

---

[1] ऋग्वेद 10.85.46

"साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रां भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु"।।

[2] शर्मा, डा. मालती – वैदिक संहिताओं नारी, पृष्ठ 1

योगदान है। इसलिए बृहदारण्यकोपनिषद् में उसे सृष्टि की रिक्तता को पूर्ण करने वाली कहा गया है – **"अयमाकाश: स्त्रिया पूर्यते"**।[1] ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्मा की संज्ञा से विभूषित किया गया है – **"स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"**[2]

ऋग्वैदिक समाज में नारी पुरुष के समक्ष समानता का स्थान रखती थी[3]। पुरुष के साथ नारी की समता अर्धांगिनी शब्द से स्पष्टतया व्यक्त होती है। दंपति शब्द भी नारी एवं पुरुष के समान रूप से स्वामी होने का संकेतक है। वैदिक साहित्य में वर्णित नारी एवं पुरुष की उत्पत्ति की कथा उनके मध्य समत्व भाव की द्योतिका है[4]।

ऋग्वेद काल में पुत्री को समाज में पुत्र की ही भाँति समान आदर प्राप्त था इसका संकेत हमें ऋग्वेद के एक मन्त्र में मिलता है जिसमें दम्पति अपने पुत्र पुत्रियों के दीर्घायु होने की कामना करता है।[5] एक अन्य ऋचा में माता – पिता के वक्ष पर लेटी हुई कन्याओं का वर्णन प्राप्त होता है जो कन्याओं के प्रति अपार[6] स्नेह का साक्षी है। यद्यपि कतिपय स्थानों पर यथा अथर्ववेद संहिता[7] तथा ऐतरय ब्राह्मण[8] में अवश्य कन्या के प्रति उदासीन दृष्टिकोण प्राप्त होता है

---

1 बृहदारण्यकोपनिषद् - 1.4.3

2 सोती वीरेंद्र चंद्र, - 'भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व', पृष्ठ 83

3 Upadhyay H C, "Status of women in India" p39

4 शतपथ ब्राह्मण – 14,4,2,1,5

5 ऋग्वेद – 8.31.8

6 ऋग्वेद – 3.31.1-2

7 अथर्ववेद – 6.11.3 –
"प्रजापतिरनुमतिः सिनीवल्यचीकलृपत् ।
स्त्रैषुयमन्यत्र दधत् पुमान् समु दधदिह" ।।

8 ऐतरेय ब्राह्मण – 33.1 – "कृपणं हि दुहिता ज्योतिर्हि पुत्रः"

तथापि इन अल्प संकेतों से हेय दृष्टिकोण की पुष्टि नहीं होती। अपितु बृहदारण्यकोपनिषद् में विदुषी पुत्री की प्राप्ति की कामना की गई है[1] तथा उसके निमित्त पूजा – पद्धति का वर्णन है ।

वैदिक काल में स्त्री शिक्षा एवं संस्कार

वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा का पर्याप्त प्रचार-प्रसार था। कन्या को पुत्र की भाँति समान शिक्षा - दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार था।[2] शिक्षा के प्रारंभ से पूर्व पुत्री को भी उपनयन संस्कार से संस्कारित कर अध्ययन करने का अधिकारी बनाया जाता था। वे गुरुकुल में रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए यज्ञोपवीत, मौञ्जी, मेखला तथा वल्कल वस्त्र धारण करते हुए शिक्षा प्राप्त करती थीं। **यमस्मृति** में इसका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है-

पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धमिष्यते।

अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा ।।[3]

इस निमित्त यजुर्वेद में कन्याओं को सुशिक्षित करने हेतु उपदेश भी प्राप्त होता है-

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद।

---

1 बृहदारण्यकोपनिषद् - 4.4.18 –
"अथ यः इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत ।
तिलौदनो पाचयित्वा अश्नीयातामिति ।।"

2 Prabhu P.H. – "Hindu Social Organization" p-28
"So far as education was concerned the position of women was generally not unequal to that of men. Women had similar education as that of men. She took part in philosophic debates like men."

3 यम – वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, भाग 1-2, पृष्ठ 402

परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद।।[1]

अथर्ववेद में एक स्थान पर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए विद्या ग्रहण करने वाली कन्याओं द्वारा शिक्षा की परिसमाप्ति पर योग्य वर को प्राप्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है - **ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।**[2]

वैदिक संहिताओं में यत्र तत्र अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं यथा बह्वृची (संहिताओं के अधिकाधिक मन्त्रों की पंडिता, कठी (कठ शाखा का अध्ययन करने वाली), आपिशला (आचार्य आपिशलि के व्याकरण की अध्ययनकर्ती) इत्यादि जिनसे नारी द्वारा उच्च वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की पुष्टि होती है। वेद में स्त्री को चतुष्कपर्दा अर्थात् धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष- इन चार तत्वों की ज्ञाता अथवा चतुष्कोण वेदी की निर्माण - प्रक्रिया को समझने वाली कहा गया है[3]।

वैदिक शिक्षा के अतिरिक्त वे युद्धविद्या, परा एवं अपरा विद्या, गणित, शिल्प, नृत्य, गीत-संगीत इत्यादि विद्याओं के अध्ययन का अधिकार रखती थीं। वैदिक सूक्तों में विष्पला, वध्रिमती, मुद्गलानी[4] आदि महिला योद्धाओं का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में नृत्य संगीत में कुशल नारियों का वर्णन भी प्राप्त होता है[5]।

---

1 यजुर्वेद – 12.53

2 अथर्ववेद – 11.5.18

3 ऋग्वेद – 10.114.3 –
"चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतपतीका वयुनानि वस्ते।
तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतुर्यत्र देवा दधि"।।

4 ऋग्वेद 10.102

5 ऋग्वेद 1.92.4
विमल चन्द्र पाण्डेय – "प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास", पृष्ठ 111 से उद्धृत -

वैदिक काल में नारी एवं पुरुष दोनों का विभिन्न धार्मिक संस्कारों से सुसंस्कृत होना परम आवश्यक माना जाता था। कतिपय संस्कार जो आज मात्र पुरुष वर्ग के लिए ही आरक्षित हो गए हैं उस काल में नारी वर्ग के लिए भी विधेय थे। कन्या की शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण होने के कारण उनका उपनयन संस्कार से संस्कारित होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था। कन्याएं यज्ञोपवीत धारण कर ज्ञानार्जन हेतु गुरुकुलों में निवास करती थीं। यज्ञोपविता नारी का उल्लेख हमें ऋग्वेद संहिता[1] में प्राप्त होता है। अथर्ववेद संहिता भी नारी के उपनयन एवं विद्या अध्ययन के अधिकार का समर्थन करती है।

वैदिक युग में बौद्धिक क्षेत्र में नारी की उत्कृष्ट स्थिति अनेक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित होती है। तत्कालीन अनेक मंत्र द्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है। ऋषियों की भाँति ऋषिकाएं (ऋषि कन्याएं) भी ऋचाओं का साक्षात्कार करती हुई दृष्टिगत होती हैं जो इस तथ्य का पोषक है कि नारियों को वेद मन्त्रों के अध्ययन एवं सृजन से विरत नहीं रखा जाता था। उस काल में नारी जीवनपर्यन्त नैष्ठिक जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मवादिनी रहने के लिए पूर्ण स्वतंत्र थी। उस काल में स्त्रियों के दो भेद प्राप्त होते हैं- **ब्रह्मवादिनी** एवं **सद्योवाह**[2]। सद्योवाह वे स्त्रियां होती थीं जो अपने ब्रह्मचर्याश्रम पर्यंत विद्या ग्रहण करने तथा वेदाध्ययन करने के लिए

---

1 ऋग्वेद 10.109.4 –
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ।।

2 हारीत – वीरमित्रोदय,संस्कारप्रकाश, भाग 1-2, पृष्ठ 402
द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवाह्यश्च ।
तत्र ब्रह्मवादिनी नामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्येति।।
सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः।

अधिकृत थीं ताकि विवाहोपरान्त वे विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कार एवं पूजा पाठ संपन्न करके अपना दायित्व पूर्ण कर सके। ब्रह्मवादिनी नारियां शिक्षा के सर्वोच्च शिखर पर जाने हेतु स्वतंत्र थीं। वे वैदिक ऋचाओं के अध्ययन के साथ-साथ मंत्रदर्शन, ऋचासृजन, काव्य-रचना, मीमांसा जैसे गूढ़ विषयों के अध्ययन हेतु अपना पूरा जीवन समर्पित करती थीं। ऋषिकाओं की पदवी नारी समाज के लिए सुलभ थी क्योंकि वैदिक संहिता काल में मंत्रद्रष्ट्री नारियां यथा अदिति, इंद्राणी, लोपामुद्रा, सिकता-निवावरी, जूहु, सूर्या - सावित्री, रोमशा-कक्षीवान्, वाक्-आम्भृणी, शची-पौलोमी, शाश्वती- आङ्गिरसी, घोषा-कक्षिवती, श्रद्धा - कामायनी, मैत्रेयी इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है जिनके द्वारा विभिन्न ऋचाएं साक्षात्कृत हैं। सुशिक्षित नारियां पुरुषों की भाँति अध्यापन कार्य करते हुए अध्यापिका, आचार्या, उपाध्याया, उपाध्यायी आदि गरिमामय पदों को सुशोभित करती थीं अतः शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता एवं समान अधिकार प्राप्त थे[1]।

विवाह एवं स्त्रियों की स्थिति

वैदिक युग में चूँकि नारियां वेदाध्ययन के लिए स्वतन्त्र थीं अतः उन्हें पुरुष के समान याज्ञिक अधिकार प्राप्त थे। अथर्ववेद में एक स्थान पर नारी को यज्ञ में भाग लेने, यज्ञ करने तथा दूसरों को

---

1 Dharma Dr. P.C.- "Status of Women in Vedic Age"
Quoted in Journal of Indian History, 1948
"They were educated in spiritual and the secular subjects.The secular side of their education consisted of fine arts and military science. There was lady Risis in Rigvedic times who composed verses, performed sacrifices, offered hymns to the Gods and won glory and fame, e.g. Surya, Saci, Sarparanj, mamta etc."

यज्ञ कराने के लिए अधिकृत किया गया है।[1] इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से सम्पादित अनुष्ठानों के विवरण प्राप्त होते हैं।[2] ऋग्वेद के दशम मण्डल का 114 वाँ सूक्त भी नारी के यज्ञ करने के जन्म-सिद्ध अधिकार की पुष्टि करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि गृहस्थ को पत्नी के बिना अकेले यज्ञ करने का अधिकार नहीं है – "*अयज्ञियो वा एषः योऽपत्नीकः*"[3]

पत्नी के अभाव में यज्ञानुष्ठान पूर्ण नहीं माना जाता था। पति द्वारा दी गई आहुति देवताओं द्वारा स्वीकार नहीं की जाती थी। अतः विभिन्न धार्मिक कर्मकाण्डों, संस्कारों एवं अनुष्ठानों को संपादित करने का भी अधिकार नारी को पूर्णरूप से प्राप्त था।

विवाह के क्षेत्र में भी नारी की स्थिति अत्यन्त उत्कृष्ट थी। बाल- विवाह की प्रथा नहीं थी। कन्याओं का विवाह परिपक्वावस्था में होता था तथा वह विवाह के संबंध में स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थीं।[4] ऋग्वेद में कहा गया है कि उस समय विवाह योग्य किसी भी युवती को अपने मनोनुकूल वर चुनने की स्वतन्त्रता थी।[5]

वेद में लिखा है- **"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानम् विन्दते पतिम्"**[6]अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर कन्या शिक्षा ग्रहण करती

---

1 अथर्ववेद 6.122.5
"शुद्धा पूता योषितो यज्ञियो इमा ब्रह्माणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु मे"।।

2 ऋग्वेद 10.72.5/17

3 तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3.3.3 (भट्टभास्कर मिश्र टीका)

4 आष्टिकर डा मधुकर, वेदकालीन स्त्रियाँ, पृष्ठ 11

5 ऋग्वेद 10.27.12 –
"कियती योषामर्यतों वध्यो परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशा स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।।"

6 अथर्ववेद 11.5.18

हुई विवाह करें। क्षत्रिय समाज में स्वयंवर[1] की प्रथा प्रचलित थी जिससे यह ज्ञात होता है कि कन्या का विवाह प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने के पश्चात होता था जब वह इस निर्णायक क्षेत्र में निर्णय लेने में सक्षम होती थी। ऋक् संहिता[2] के एक मंत्र के सूक्ष्मानुशीलन से यह ज्ञात होता है कि विवाह के समय वधू पूर्ण परिपक्व एवं विकसित होती थी। वैदिक समाज में दो पूर्णतया विकसित व्यक्तियों के संबंध को विवाह की संज्ञा दी जाती थी।[3] इसके अतिरिक्त वैदिक काल में अंतर्जातीय विवाह[4] के संकेत भी प्राप्त होते हैं ये सभी दृष्टांत संहिता काल में विवाह- संबन्धी स्वतन्त्र विचारधारा के द्योतक हैं।

विवाह के बाद पति – पत्नी को एकरूप, एकप्राण माना जाता था। पति या पत्नी किसी भी कारण से विवाह विच्छेद नहीं कर सकते थे। समाज में एक पत्नीव्रत का आदर्श था। ऋग्वेद में एक प्रसिद्ध उपमा इस प्रकार है कि ये दो पक्षी पति-पत्नी की तरह सतत एक साथ रहते हैं और एकसाथ उड़ते हैं। ऋग्वेद के अनेक ऋचाओं (1.124.7, 4.3.2, 10.71.4) में एक पत्नीव्रत की प्रथा के प्राप्त दृष्टान्तों से भी नारी की सशक्त स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। दूसरा विवाह करना समाज में निंदनीय माना जाता था।[5]

वैदिक कालीन समाज में नारी समाज को आहत करने वाली सती कुप्रथा का प्रचलन नहीं था। पति के निधन होने पर स्त्री का

---

1 ऋग्वेद 10.27.12

2 ऋग्वेद 10.22.4-6

3 वैदिक इण्डेक्स, पृष्ठ 536-537

4 (क)ऋग्वेद 1.112.19
पाण्डेय, विमल चन्द्र “प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास” पृष्ठ 110
(ख)ऋग्वेद 5.61.17-19 तथा 10.63.1

5 आष्टिकर, डॉ मधुकर , वेदकालीन स्त्रियाँ, पृष्ठ 11

पुनर्विवाह अथवा विधवा विवाह का उल्लेख प्राप्त होता हैं।[1] ऋग्वेद में विधवा स्त्री के विषय में कहा गया है कि वह मृत पति का त्याग कर भावी पति को प्राप्त करे।[2] अथर्ववेद (9.5.27-28) में भी पुनर्विवाह अथवा विधवा-विवाह का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद में पति के मृत होने पर युवती का देवर के साथ विवाह करने का वर्णन प्राप्त होता है।[3] डा० ए सी दास और श्री केणी प्रभृति विद्वानों ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि वेदकाल में सती प्रथा का अस्तित्व ही नहीं था, अपितु उस समय पुनर्विवाह की परंपरा थी।[4]

संहिता कालीन समाज में नियोग प्रथा का संकेत प्राप्त होता है। नियोग से तात्पर्य है कि नि:संतान पत्नी अथवा विधवा स्त्री का पुत्र- प्राप्ति हेतु अपने देवर अथवा पूर्व निर्धारित पुरुष के साथ नियुक्त होना। इसके संकेत ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों[5] में प्राप्त होते हैं जो नारी के प्रति अत्यंत उदार दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

वैदिककालीन समाज में पर्दा अथवा अवगुण्ठन की प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियाँ पर्दे से रहित होकर स्वतन्त्रतापूर्वक सबसे मिल सकती थीं| वे विदथ (सभा तथा समिति) एवं समन (उत्सव

---

1 आष्टिकर, डॉ मधुकर, वेदकालीन स्त्रियाँ, पृ0 11
"अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्।
अंधेन यत् तमसा प्रकृतासीत् प्राक्तो अषाचीमनयं तदेनाम्।। अथर्ववेद"

2 अथर्ववेद 9.5.27-28
"या पूर्वं पतिं वित्वाथान्यं विंदतेऽपरम् ।
पच्चौदनं च तावजं ददातों न वियोंषतः।।"

3 उदीर्ण्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभ्यस्यं दिधीषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ।। ऋग्वेद
डा मधुकर अष्टिकर – "वेदकालीन स्त्रियाँ" पृष्ठ 13 से उद्धृत

4 वही , पृष्ठ 13

5 ऋग्वेद 1.167.5-6

तथा मेला) में स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित होती थी तथा अपने विचारों का आदान-प्रदान करती थीं।[1] ऋग्वेद[2] में एक स्थान पर स्त्री के लिए सभावती शब्द का प्रयोग हुआ है जिससे उनके सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने का संकेत प्राप्त होता है। एक स्थान पर सौभाग्यशाली नववधू को आशीर्वाद प्राप्ति हेतु सभी आगंतुकों को दिखाए जाने का भी उल्लेख मिलता है।[3] वैदिक काल में सह-शिक्षा तथा कन्याओं के लिए उच्च शिक्षा प्राप्ति की स्वतंत्रता इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं क्योंकि यदि पर्दा प्रथा होती तो कन्याएं उच्च स्तर पर शिक्षित नहीं हो पाती तथा अनेक ऋषिकाओं के विवरण जो ऋषियों की भांति वेद की शिक्षा देती थीं वेदकाल में इस प्रथा के अभाव को दर्शाते हैं। अथर्ववेद[4] में कतिपय स्थलों पर नारी द्वारा अपने सम्पत्ति विषयक अधिकार हेतु न्यायालय जाने का वर्णन है अतः वैदिक काल में पर्दा प्रथा के अभाव होने के कारण स्त्रियों ने अबाधगति से जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने मार्ग प्रशस्त किए।

वैदिक काल में स्त्रियों की आर्थिक स्थिति

वैदिक काल में आर्थिक क्षेत्र में भी नारी सबल तथा अत्यन्त समृद्ध थी। उसे सम्पत्ति संबंधी अनेक अधिकार प्राप्त थे। पुत्रियाँ पुत्र की भाँति पिता की सम्पत्ति में समान अधिकार रखती थीं।[5] अभ्रातृक

---

1 अथर्ववेद 14.1.20
“गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदसि।“

2 1.167.3

3 ऋग्वेद 10.85.33
“सुमंगलरियं वधुरिमां समेत पश्यत ।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तिं परतेन ।।“

4 अथर्ववेद 2.36.1- “जुष्टा वरेयु समनेषु वल्गुः”

5 ऋग्वेद 2.17.7

कन्या तो अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी।[1] वे कन्याएँ जो अविवाहित रहकर अपने पिता के घर में जीवन व्यतीत करती थीं उनके लिए भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार हेतु प्रार्थनाएँ ऋग्वेद[2] और अथर्ववेद[3] में प्राप्त होती हैं। स्त्री का अपने पति की सम्पत्ति में सह स्वामित्व था। पति द्वारा विवाह के समय यह शपथ ली जाती थी कि आर्थिक मामलों में किसी भी प्रकार पत्नी के अधिकार एवं हित का अतिक्रमण नहीं किया जाएगा।[4] नारी की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के लिए स्त्रीधन की व्यवस्था की गई थी। विवाह के समय स्त्री को उपहार स्वरूप प्राप्त होने वाली वस्तुएं जिस पर स्त्री का एकमात्र अधिकार होता था, स्त्री - धन कहलाता था। इस संपत्ति को **पारिणाह्य** कहा जाता था जिसका उल्लेख तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त होता है- **'पत्नी वै पारिणाह्यस्य ईशः'** (तैत्तिरीय संहिता 6.2.1.1) अर्थात् उपहार के रूप में नारी को प्राप्त होने वाली वस्तुओं पर नारी का अधिकार होता था। विधवा स्त्री हेतु धन की व्यवस्था करने का संकेत अथर्ववेद में प्राप्त होता है।[5] ये सभी संकेत वैदिक संहिता- काल में नारी समुदाय की आर्थिक सबलता तथा सुसम्पन्नता के द्योतक हैं ।

युद्ध-क्षेत्र एवं प्रशासन में स्त्रियों की भूमिका

ऋग्वेद में महर्षि मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी द्वारा युद्धक्षेत्र में

---

1 ऋग्वेद 1.124.7 – "अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचो गर्तारूगिव सनये धनानांम्।"

2 ऋग्वेद 10.85.13 तथा 38

3 अथर्ववेद 14.1.13

4 अथर्ववेद 10.35.5 तथा 12.3.14
Shastri, Madhu – "Status of Hindu Women" से उद्धृत

5 अथर्ववेद 18.3.1
"इयं नारी पतिलोकं वृणानां निपद्यते उपत्व मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं च धेहि ।।"

उनके साथ जाने तथा रथ संचालन का वर्णन प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिककालीन नारी ने युद्ध-भूमि में भी अपने शौर्य एवं पराक्रम से पुरुष समुदाय को अभिभूत कर दिया था।[1] वे न्यायकर्त्री के रूप में भी कुशल थीं। ऋग्वेद में वे कुशल न्याय द्वारा राजप्रबन्ध में सुस्थिरता स्थापित करती दृष्टिगोचर होती हैं| तत्कालीन नारी दौत्य कर्म में भी निपुण हुआ करती थी जिसका प्रमाण सरमा-पणि संवाद से प्राप्त होता है। सरमा इन्द्र की ओर से दूत बन कर पणि नामक असुर के पास गई थी। सरमा-पणि संवाद तत्कालीन महिलाओं के प्रखर बुद्धि का अद्भुत उदाहरण है।[2]

इसके अतिरिक्त संहिताकालीन नारी विधाननिर्मात्री, ज्योतिर्विद्, भूगर्भविद् आदि अनेक रूपों में हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं जिससे यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन नारी प्रत्येक कर्म एवं क्षेत्र में कुशल और सक्षम थी।

वैदिककालीन स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

वैदिक काल में परिवार में उनका अत्यंत उच्च एवं प्रतिष्ठित स्थान था। परिवार की बड़ी वधू समस्त गृह प्रबंध में प्रधान संचालिका हुआ करती थीं। घर के समस्त कार्य तथा दायित्व उसके संरक्षण में तथा उसकी इच्छानुसार संपादित किए जाते थे। परिवार के समस्त सदस्य उनका आदर करते थे और आज्ञा का पालन करते थे।[3]

वैदिक युग में नारी को पत्नी के रूप में बहुत आदर प्राप्त था। आर्य पत्नी को घर मानते थे- "**गृहिणी गृहमित्याहुः न गृहं गृहिणीं**

1 ऋग्वेद 10.102.2 "रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे।"

2 ऋग्वेद 10.108वाँ सूक्त

3 ऋग्वेद 10.85.46

विना"।[1] पत्नी पुरुष की अर्धांगिनी होती है अतः पत्नी के बिना पति अपूर्ण है। वह पुरुष के साथ समत्व भाव से जीवन यापन करते हुए उसके लिए सदैव से प्रेरणा एवं शक्ति के स्रोत थी।[2] माता के रूप में वह बच्चों में उत्तम शिक्षा द्वारा संस्कार का आधान करते हुए उन के भविष्य की निर्मात्री है- **"माता निर्माता भवति।"**[3] इसीलिए माता गुरुओं में प्रथम है- **"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"**।[4] शतपथब्राह्मण के अनुसार संस्कृति के उत्थान, उन्नयन एवं उत्कर्ष में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान है। वैदिक मंत्रों में नारी के सहनशीलता,सौम्यता, सौष्ठवता, ममता प्रभृति गुणों की बारम्बार प्रशंसा की गई है। उनकों अदिति, सरस्वती, चंद्रा, ज्योति आदि अनेक महिमापूर्ण विशेषणों से विभूषित किया गया है।[5] उन्हें अमृतरसदायिनी कहा गया है तथा मधुर एवं सत्य वचनों की प्रेरक तथा सन्मति से सम्पन्न बताया गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक काल में नारी की स्थिति अत्यन्त उदात्त एवं गरिमापूर्ण थी। वे समाज में अत्यन्त उत्कृष्ट एवं सम्माननीय पद पर आसीन थीं। नारी को धर्म, राजनीति, ज्ञान-विज्ञान, समाज-व्यवस्था सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान अधिकार एवं

---

1 सोती, वीरेंद्र चन्द्र – "भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व", पृष्ठ 88

2 ऋग्वेद 1.3.11
"चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती"।।

3 यास्क, निरुक्त

4 सरस्वती, महर्षि दयानंद, "सत्यर्थप्रकाश" के द्वितीय समुल्लास से उद्धृत

5 यजुर्वेद 8.43
"इडे रन्ते हव्ये काम्ये चंद्रे ज्योते अदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतम्"।।

स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वह पुरुष के साथ समान रूप से समाज के अभ्युत्थान, परिष्कार एवं संस्कार में सहायक थी। नारी की शक्तियों को विकसित करने के लिए जितनी सुविधाएँ, सुअवसर एवं संसाधन संहिता काल में प्राप्त थे वे आधुनिक युग में कल्पनातीत थे। यह काल परवर्ती समाज में नारी के अधिकारों तथा शक्तियों के लिए सदैव पथप्रदर्शक रहा है।

नागपूरविदुषि श्रीमती दुर्गाताई पारखी

डॉ. अबोली व्यास
एल.ए.डी महाविद्यालय,
नागपूर, महाराष्ट्र
8806690900
abolirajnish@gmail.com

संस्कृत साहित्य का अनेक दृष्टियों से अध्ययन किया जाता है। संस्कृत साहित्य का हर एक वैशिष्ट्य रसिकों को आनंद प्रदान करने वाला, आकर्षित करने वाला, अभ्यासकों को प्रेरित करने वाला है। संस्कृत साहित्य में रहने वाले रस, पात्र, उनके स्वभाव विशेष, भाषा, तत्कालीन शिष्टाचार, हर एक कवि की जीवन विषय दृष्टि, साहित्य शास्त्रीय दृष्टि से किया गया काव्य का मूल्यमापन ये सारी चीजें वैशिष्ट्य पूर्ण है। इसीलिए अभ्यसनीय भी है। शास्त्रीय ग्रंथ ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिए अभ्यास के विषय है। इतना ही नहीं छोटे बच्चों के लिए पंचतंत्र, नीति शतकम् जैसे पुस्तक संस्कृत भाषा का अपना अलग वैशिष्ट्य है। संस्कृत भाषा का विविध अंगों से अभ्यास आज तक प्रचुरमात्रा में हुआ है, और आज भी हो रहा है। इसका कार्य नागपुर में भी अविरत शुरू है। संस्कृत साहित्य निर्मिती के कार्य में नागपुर अग्रेसर है। नागपुर का संस्कृत सेवा का इतिहास मनोज्ञ है। इस सुनहरे इतिहास के पन्नों को लिखने में नागपुर की महिलाएं अग्रेगण्य है। डॉ लीना रस्तोगी, डॉ शारदा गाडगे, श्रीमती दुर्गा पारखी, डॉ वीणा गानु, डॉ हंसश्री मराठे, डॉ स्मिता होटे, स्व.ललिता शास्त्री आर्विकर, डॉ विभाग क्षीरसागर, डॉ मंजूषा चन्ने इन सभी विदुषियों का सहभाग उल्लेखनीय है। प्रस्तुत लेख में केवल नागपुर में स्थित श्रीमती दुर्गा ताई पारखी महोदया की रचनाओं का विवेचन करने का मानस किया है।

श्रीमती दुर्गा ताई पारखी महोदया ने नागपुर विद्यापीठ की वाङ्मय पारंगत परीक्षा प्रथम क्रमांक से उत्तीर्ण की हुई हैं। आप एम्.फिल् डिग्री से सम्मानित हुई है। श्रीमती दुर्गा ताई पारखी नागपूर स्थित विद्यालय की निवृत्त शालेय शिक्षिका है। आप अध्यापन कार्य में बहुत ही कुशल है। नागपुर विद्यापीठ और कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय इन दोनों से ही आप संबंध है। प्रौढ़ जनों के लिए संभाषण वर्ग का आयोजन आप हमेशा से ही करती आई है। आप छात्रप्रिय शिक्षिका है। संस्कृत का प्रचार करने में आप अग्रेसर है। आपको महाराष्ट्र शासन ने 2016 में कालिदास संस्कृत साधना पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

श्रीमती दुर्गा पारखी महोदया की संस्कृति रचनाएं

- प्रहेलिका शतकम्
- बालनाट्यवल्लरी
- कथासुमनसौरभम्
- काबुलीवाला

अपनी इन संस्कृत रचनाओं से श्रीमती दुर्गा ताई पारखी इन्होंने संस्कृत सरस्वती का गर्भगृह परिपूर्ण किया हुआ है। इनमें से प्रहेलिकाशतकम् यह स्फुट काव्य है। यह पुस्तक विश्व-संस्कृत-पुस्तक मेला बेंगलुरु यहां पर 2011 साल में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का विशिष्ट है, छोटे बच्चों को संस्कृत भाषा की तरफ खींचना और संस्कृत भाषा पर प्रेम निर्माण करना। इसी हेतु से डॉक्टर पारखी ने पहेलियों की रचना की हुई है। कहीं-कहीं एक ही उत्तर की दो या तीन पहेलीयां का भी इन्होंने इस पुस्तक में रची हुई है में इस पुस्तक में पहेलियों के उत्त रऔर कठिन शब्दों के अर्थ संस्कृत, मराठी, हिंदी और इंग्लिश इन चारों ही भाषाओं में दिए हुए हैं। हर एक पहेली

एक विशिष्ट छंद में लिखी हुई है। पहेलियां के बाजू में ही छंद का नाम भी दिया हुआ है। पहले छह पहेलिकाएं मंगलाचरण की है। शुरू शुरू में बहुत ही आसान और बाद में थोड़े से कठिन ऐसे इन पहेलियों का क्रम है। यह पुस्तक पारखी महोदया ने अपने चाचा चाचा और पिताजी इनको समर्पित किया हुआ है। इसकी भाषा सुबोध सरल है। प्रत्येक पहेलियों में दिए हुए छंद पर से लेखिका छंद पर प्रभुत्व रखती है, यह स्पष्ट होता है। संस्कृत साहित्य में प्रहेलिका यह काव्य प्रकार कुछ नया नहीं है। लेकिन आज के युग को देखते हुए नए-नए वस्तुओं पर रची गई हुई यह प्रहेलिकाएं बहुत ही मनोरंजक है। इन प्रहेलिकाओं की वजह से बच्चे आसानी से संस्कृत भाषा की और खींचे चले आते हैं। बच्चों की मानसिकता को देखते हुए डॉ पारखी ने यह उपक्रम किया हुआ है। प्रहेलिका यह ऐसा काव्य प्रकार है जो हर उम्र में मनोरंजक ही लगता है। डॉ लीना रस्तोगी महोदया ने पारखी महोदया के लिए प्रहेलिका शतकम इस स्फुट काव्य के प्राक्कथन में कहा है कि-

शैशवमिति निष्पापा रम्या चेतोहरा दशा।
शिशूनां रञ्जनं नाम सत्कृत्यं मङ्गलं परम् ॥

अहो किन्तु महान् कोऽयं कालस्य महिमा यथा।
व्यामूढः शिशुवृन्दोऽयं वैपरीत्यं भजत्यहो ।
माध्यमैर्दृश्यश्राव्यैस्ते निर्जिता इव बालकाः।
काव्यशास्त्रविनोदेन नेहन्ते कालयापनम् ।।
तेषां बुद्धिविकासार्थं प्रत्युत्पन्नमतिप्रदा।
प्रहेलिकारत्नमयी माला ह्येषा विराजते ।।
अष्टोत्तरशती माला मङ्गलाचरणैर्युता ।
भाषाज्ञानेऽपि च्छात्राणां रुचिं संवर्धयेत्तराम् ॥
एतादृशीः कृतीर्बह्वीः सरसा सुमनोहराः।
दुर्गाभगिनिकाऽस्माकं निर्मिमीतां निरन्तरम् ॥ इति शम्।

पारखी महोदया की दूसरी संस्कृत रचना है कथा सुमनसौरभम्। यह कथा संग्रह उन्होंने अपने पिताजी और दादादादी - को अर्पण किया हुआ है। इसके मुख्य पृष्ठ पर फूल का चित्र है तो उसके पृष्ठ भाग पर लेखिका इनका खुद का परिचय दिया हुआ है। यह कथा संग्रह विश्व संस्कृत मेला जानेवारी 2011 में प्रकाशित हुआ हुआ है। इस कथा संग्रह में कुल मिलाकर 11 कथाएं हैं। प्रत्येक कथा अलगअलग विषयों के ऊपर लेकिन बहुत ही आसान भाषा में - लिखी हुई है। रूप वर्ण से भिन्न होने के कारण यहकथासंग्रह बहुत ही चित्ताकर्षक है। कहीं पर फूलों को समेटेते हुए फूलों से भी कोमल हृदय तो कहीं अपने लड़के के लिए वधू संशोधन करने वाली मां का प्रबल मन यहां पर वर्णित किया हुआ है। हनुमान के जैसे भक्ति करनी चाहिए ऐसा संदेश भी कहींकहीं पर दिया हुआ है-। तो कहींकहीं पश्चाताप में द-ग्ध मन भी यहां पर वर्णित किया गया हुआ है। यह सारी कथाएं बहुत ही सुंदर है। इन सारी कथाओं की भाषा बहुत ही सरल और आसान है। कभीकभी कथाओं में संभाषण भी - लिया हुआ है। लेखिका को अलंकार का आकर्षण बिल्कुल भी नहीं है। लेखिका कहीं पर भी बड़ेबड़े परिचय-, प्रदीर्घ वर्णन, लंबेलंबे - वाक्य, बड़ेबड़े समास- नहीं लेती है। लेखिका का निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म है और उनका संस्कृत भाषा के ऊपर विलक्षण प्रभुत्व है ऐसा यह कथा संग्रह पढ़ने के बाद प्रकर्ष रूप से महसूस होता है।

अनूदित संस्कृत रचना में भी पारखी महोदया अग्रगण्य है। काबुलीवाला रूपक श्रीमती दुर्गा पारखी महोदया ने संस्कृत भाषा में अनूदित किया हुआ है। इसके मूल लेखक महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर है। काबुलीवाला यह गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर इनकी कादंबरी है। जो अत्यंत लोकप्रिय है। इस कादंबरी का मराठी में अनूवाद नागपुर के एक श्रेष्ठ नाट्य कर्मी श्री रंजन दार्व्हेकर इन्होंने किया हुआ है। इस मराठी अनुवाद का संस्कृत अनुवाद और दुर्गा पारखी महोदया ने

किया हुआ है। काबुलीवाला इसका मूल कथानक ऐसा है कि, कोई एक व्यापारी खुद का काबूल देश छोड़कर भारत में उपजीविका के लिए आता है। और अंगूर आदि फल बेचता है। जिसकी माँ नहीं है और जो अपने बच्ची की याद मे दुखी है ऐसा काबुलीवाला और उसका पितृ ह्रदय यहां पर वर्णित किया गया हुआ है। शुरू में काबुलीवाला की तरफ अपराधी के नजर से लोग देखते हैं लेकिन उसके बाद में पितृ ह्रदय उसका जानकार उसे अपनाते हैं। यह सारा कथा भाग इस काबुलीवाला रूपक में आया हुआ है। इस रूपक को प्रकाशित श्री अरविंद पारखी जी ने किया हुआ है। बाल साहित्य होने की वजह से इसमें कहीं पर भी क्लिष्टता नहीं है। भाषा के परिवर्तन के हिसाब से कहींकहीं पर भाव का भी परिवर्तन- होना सहजता से आ जाता है। लेकिन ऐसा कुछ भी इस अनूदित रूपक मैं नहीं हुआ है। मुष्टा- मुष्टी, केशा-केशी, शब्दा-शब्दी ऐसे शब्दों का प्रयोग इसमें आता है। कहीं कहीं पर मिने-मिनटले इस प्रकार के मराठी शब्दों का उपयोग भी यहाँ पर दिखता है।

श्रीमती दुर्गा पारखी महोदया का बाल नाट्यसंग्रह है, बालनाट्यवल्लरी। यह पुस्तक संस्कृत भारती ने प्रकाशित किया हुआ है। इस नाट्य संग्रह में कुल मिलाकर 30 बाल नाटक है। छात्राओं को उद्देश्य कर कर इन नाटकों की रचना की गई हुई है। छात्रों को नीति मूल्य सिखाने का कवयित्री का यह प्रयास बहुत ही स्तुत्य है।

श्रीमती दुर्गा महोदया की इन सारी रचनाओं का अभ्यास करने के बाद कुछ वैशिष्ट्य दृष्टि पथ पर आए। वह ऐसे-

श्रीमती दुर्गा महोदया की कहीं पर भी कठिन भाषा का उपयोग नहीं करती है। कथा में आने वाले मनःस्थिती के वर्णन से महोदया की संवेदनशीलता का भी परिचय होता है। संस्कृत का प्रचार करना

यह उनकी प्राथमिकता होने की वजह से वह अपनी हर रचना में बहुत ही सरलता का प्रयोग करती है। बच्चों के मानसिक विकास का अभ्यास करते हुए कवयित्री ने बाल साहित्य की रचना अधिक की हुई हैं। काबुलीवाला रूपक का अनुवाद कर कर अनुवाद कार्य में भी आप अग्रेसर है यह सिद्ध होता है। प्रहेलिका शतकम में आने वाले छंदों के नाम से कवयित्री का छंदों के ऊपर होने वाला प्रेम भी स्पष्ट होता है। कवियत्री की सारी रचनाएं आबल वृद्धो के लिए, संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिए बहुत ही उत्तम है। इसी प्रकार की रचनाएं वह और भी करें, रचनाओं के लिए ईश्वर उनको शक्ति दे और लंबी उम्र दे ऐसी ईश्वर को प्रार्थना करते हैं।

संदर्भ ग्रंथ-

प्रहेलिका शतकम्, (श्रीमती दुर्गाताई पारखी)

बालनाट्यवल्लरी, (श्रीमती दुर्गाताई पारखी)

कथासुमनसौरभम्, (श्रीमती दुर्गाताई पारखी)

काबुलीवाला, (श्रीमती दुर्गाताई पारखी)

नागनगरीतील संस्कृत साहित्य, (डॉ. अबोली र. व्यास)

रघुवंश में नारी विमर्श

Dr. Nirmla Devi,
Assistant Professor-Sanskrit,
Govt. College, Hisar, Haryana
Gmail:- nirmlajnu31@gmail.com

Mobile:- 8607762036

महाकवि कालिदास की रचना रघुवंश काव्यशास्त्र की दृष्टि से एक महाकाव्य है । रघुवंश में राजा दिलीप से लेकर अन्तिम राजा अग्निवर्ण तक राम के पूर्ववर्ती व परवर्ती राजाओं का वर्णन किया गया है। इनमें से कुछ ही राजाओं की रानियों के नामोल्लेख प्राप्त होते हैं। रघुवंश में अनेक प्रकार के स्त्री पात्रों का सन्निवेश है। महाकाव्य के लक्षण के अनुसार अनेक पात्रों का सन्निवेश है। इनमें रानी, तपस्विनी, राक्षसी, दासी तथा वेश्या प्रभृति नारियों के चित्र उभर के आते हैं। रघुवंश जो कि सूर्यवंश है इनमें राजाओं का प्राधान्य है । अधिकांश राजा धीरोद्धत प्रवृत्ति के हैं। २९ से अधिक राजाओं में से केवल कुश तक के राजाओं की पत्नी का नाम्ना उल्लेख मिलता है। प्रस्तुत शोधपत्र महाकाव्य में नारी की स्थिति का विमर्श करना है।

राजा दिलीप के अनेक रानियाँ थी, परन्तु वे मगधवंशीया सुदक्षिणा[1] से ही अधिक प्रेम करते थे। इसलिए राज्य के उत्तराधिकारी के रूप में वे सुदक्षिणा से ही सन्तान प्राप्ति चाहते थे। राज्य के उत्तराधिकारी के लिए भी वे मुनि वसिष्ठ के आश्रम में सुदक्षिणा के साथ जाते हैं। मुनि द्वारा निर्दिष्ट होने पर वे दोनों तन्मयता से नन्दिनी की सेवा करते हैं। रानी सुदक्षिणा पतिव्रताओं में

---

[1] रघुवंशमहाकाव्यम्,५/३६

श्रेष्ठ मानी जाती थी यथा- अपांसुलानां धुरि कीर्तनीया[1]। स्त्रियाँ स्वभाव से लज्जा युक्त होती हैं। जब रानी सुदक्षिणा गर्भवती थी तब वे मिट्टी आदि खाने के दोहद राजा को नहीं बताती थी, इसलिए राजा उनकी दासियों से पूछकर आवश्यकताएँ पूर्ण करते थे यथा-'न मे ह्रिया शंसति किञ्चिदीप्सितं स्पृहावती, वस्तुषु केषु मागधी[2]।

महाराजा रघु के राजकाज संभालने योग्य होने पर राजा, रानी सुदक्षिणा के साथ वन में चले गए। रघु की पत्नी का नाम प्राप्त नहीं होता, उनके लिए 'रघोर्देवी महिषी' यह विशेषण प्राप्त होता है। उन्होंने ब्रह्म मुहुर्त में कुमार को जन्म दिया[3] । अज की पत्नी इन्दुमती जो कि अत्यन्त सुन्दरी थी। वह विदर्भराज भोज की बहन थीं । स्वंयवर के समय ब्रह्मा की सर्वोतम रचना इन्दुमती पर सभी राजाओं का हृदय आकृष्ट हो गया। सुनन्दा नामक द्वारपालिका जो कि कुशाग्र बुद्धि है, वह सभी राजाओं का विस्तृत परिचय करवाती है[4]। यह एक व्यवहार में निपुण स्त्रीपात्र है ।

विदर्भराज ने अपनी बहन के लिए स्वयंवर रखने का निश्चय किया यथा-"अर्थेश्वरेण क्रथकैशिकानां स्वयंवरार्थं स्वसुरिन्दुमत्याः[5]। वह दृढनिश्चयी है तथा विवेकयुक्त है। सुनन्दा द्वारा प्रलोभन देने पर भी वह 'अज' को चुनती है। अज को चुनने तथा अनभि-व्यक्त

---

[1] रघुवंशमहाकाव्यम्,२/२

[2] रघुवंशमहाकाव्यम्,२/७७

[3]'ब्राह्मे मुहुर्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम्' । रघुवंशमहाकाव्यम्,५/३६

[4] प्राक्सन्निकर्षं मगधेश्वरस्य नीत्वा कुमारीवमदत्सुनन्दा । रघुवंशमहाकाव्यम्, ६/२०

[5] रघुवंशमहाकाव्यम्,६/२०

लज्जावश न कह पाने सुनन्दा जब उसे आगे बढ़ने को कहती है तो वह क्रूर दृष्टिपात करती है[1] । एकदा मन से निश्चय कर लेने उस वर वह आगे पर नहीं बढ़ती। रानी की तुलना दीपशिखा के साथ करने पर उन्हें 'दीपशिखा कालिदास' की उपाधि मिली है[2]। इस प्रकार वह विवेकशीला, पतिव्रता तथा दृढ़ निश्चयी स्त्री थी। इन्दुमती एक शापित अप्सरा थी। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात एक दिन आकाश से पुष्प-माला गिरने पर उसकी मृत्यु हो गई । राजा ने बहुत विलाप किया। इस प्रकार वह अज की प्रिया अर्थात् वल्लभा थीं।

अज के पुत्र दशरथ के तीन रानियाँ थीं। कौशल्या, कैकेयी व सुमित्रा। तीनों रानियों के साथ ऐसे लगते थे मानों इन्द्र अपनी प्रभुशक्ति तथा उत्साह शक्तियों के साथ अवतार धारण किए हों[3]। पुत्रेष्टि यज्ञ में यज्ञपुरुष से प्राप्त खीर उन्होंने बड़ी रानी होने के कारण कौशल्या को तथा प्रिय रानी होने के कारण कैकेयी को खीर प्रदान की यथा- अर्पिता तस्य कौशल्या प्रिया केकयावंशजा, अत: सम्भावितां ताभ्यां सुमित्रामैच्छदीश्वर:[4]॥ सुमित्रा उन दोनों को बराबर स्नेह करती थीं । राजा के भाव को समझकर उन दोनों ने खीर का आधा आधा भाग सुमित्रा को दे दिया । तदनन्तर कौशल्या ने राम को,[5] कैकेयी ने शीलवान् भरत को तथा सुमित्रा ने लक्ष्मण व शत्रुघ्न

---

[1] तं प्राप्य सर्वाववानवद्यं व्यावर्तयाऽन्योपगमात्कुमारी। रघुवंश, 6/69

[2] "संचारिणी दीपाशखेव रात्रौ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा । नरेन्द्र मार्गाट्ट इव प्रपेदे विवर्णभावं स स भूमिपाल: । रघुवंश, पृ.१९६

[3] तमलभन्त पतिं पतिदेवता: शिखरिणामिव सागरमापगा:। मगधकौशलकेकययशासिनां दुहितरोऽतिरोपितमार्गणम्॥ रघुवंश, ९/१७

[4] रघुवंश, १०/५५

[5] शय्यागतेन माता शातोदरी बभौ। रघुवंश,१०/६९

को जन्म दिया[1] । इस प्रकार वीर पुत्र जननी के रूप में इन्होंने यश प्राप्त किया ।

दशरथ से वरदान मांगने के कारण कैकेयी को निन्दापात्र बनना पड़ा[2], परन्तु राम जब वन से लौटते हैं तो सभी माताओं से प्रेमपूर्वक मिलते हैं। कैकेयी से किसी प्रकार का द्वेष नहीं करते– सर्वासु मातृष्वपि वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिः आसीत्[3]। राम हाथ जोड़कर कैकेयी को कहते हैं कि आपके पुण्य प्रताप से पिता अपने वचन से नहीं डिगे। अगर आप वर न मांगतीं तो पिता की वरप्रदान की प्रतिज्ञा मिथ्या हो जाती। इससे वे लज्जा व आत्मग्लानि को छोड़कर राम के साथ सहज हो पाई[4] ।

कैकेयी को भरत, राजा दशरथ व प्रजा से भी निन्दाभागिनी बनना पड़ा[5]। जिसका फल वैधव्य प्राप्ति रहा। इनके पश्चात राम, लक्ष्मण, भरत व शत्रुघ्न का विवाह स्वयंवर के माध्यम से हुआ। राम ने सीता से विवाह किया इस के इलावा अन्य रानियों की कोई चर्चा नहीं मिलती। सीता एक आदर्श, पत्नी पतिव्रता, दृढ़संकल्पा, स्वाभिमानी, परित्यक्ता रूप में चित्रित है। कदाचित् वह भीरु भी प्रतीत होती है । शूर्पणखा जब राम व लक्ष्मण के सामने विवाह प्रस्ताव रखती हैं तो दोनों के मना करने पर जब वह एक से दूसरे के

---

[1] कैकेय्यास्तनयो जज्ञे भरतो नाम शीलवान् । रघुवंश,१०/७०

[2] तस्याभिषेकसंभारं कल्पितं क्रूरनिश्चया दूषयामास कैकेयी वत्सलत्वात्स निर्विशेषप्रतिपत्तिः आसीत् । रघुवंश, १४/२२

[3] रघुवंश,१४/२२

[4]कृताञ्जलिस्तत्र यदम्ब सत्यान्नाभ्रश्यत स्वर्गफलाद् गुरुर्नः। तच्चिन्त्यमानं सुकृतं भवेति जहार लज्जां भरतस्य मातुः ॥ रघुवंश, पृ.३९३

[5] ऐच्छत् वैधव्यैकफलां श्रियम् ॥ रघुवंशम्,१२/६

पास जाती है तो सीता को हँसती हुई देखती है तो क्रोधित होकर वह अपने रूप को प्रकट कर देती हैं। जब वह सियारिन के समान उच्चे स्वर में बोलती है तो सीता डर कर राम के अंक में प्रवेश कर जाती है। लक्ष्मण के नाक, कान काट देने पर राक्षस समुदाय ने राम आदि पर आक्रमण करना चाहा। सीता को लक्ष्मण के संरक्षण में सौंप कर राम ने राक्षस समुदाय का नाश किया[1]। मारीच की सहायता से सीताहरण के पश्चात राम किष्किन्धा में सुग्रीव से मिले जिनकी पत्नी का हरण बाली द्वारा कर लिया गया था। इससे अपहरण व दुराचार की स्थिति का पता चलता है तथा शत्रु की स्त्री का संसर्ग वीरता के रूप में भी दिखाया गया ।

राम और सीता का परस्पर अनुराग विरह व्यथा में द्योतित होता है। दोनों ने अंगूठी व चूड़ामणि को पाकर हृदय में आनन्दानुभूति की। राम का कटा सिर सीता के सामने प्रस्तुत किया गया तब विलापपूर्वक कहती है कि मैं लज्जित हूँ कि आपके मरने पर भी मैनें प्राण धारण किए हैं। जैसा कि कहा है- कामं जीवति मे नाथ इति सा विजहौ शुचम्, प्राङ्गत्वा सत्यमस्यान्तं जीवितास्मीति लज्जिता[2] ।। इसी समय त्रिजटा नामक स्त्री पात्र उपस्थित होती है वह सीता को धैर्य बँधाती है। इसे मायावी राक्षस की माया की माया का परिणाम बताती है। "सीता मायेति शंसन्ती त्रिजटा समजीवयत्[3] ।

रावण वध के पश्चात अग्नि विशुद्धा सीता को लेकर जब पुष्पक विमान में थे। वे अपने पंचवटी आदि को देखकर उन अनुभवों को स्मरण करते हैं तब राम उनके लिए की प्रिय, विशाललोचने, करभोरु, देवी, चण्डि, भीरु आदि संबोधनों से सम्बोधित करते हैं ।

---

[1] रघुवंश,३८-४०

[2] रघुवंश,१२/७५

[3] रघुवंश,१२/७४

दुर्मुख के मुख से सीता परिवाद का समाचार सुनकर वो स्त्री आदि को भौतिक सुख समझकर निन्दा भय से परित्याग करना उचित समझते हैं[1]। जब उन्होनें अपने भाईयों से परामर्श किया तो उनमें से न ही कोई विरोध कर पाया तथा न ही अनुमोदन कर पाया। जब राम गर्भवती सीता से दोहद पूछते हैं तो वे तपस्विनी सखियों से मिलने की तथा वन प्रदेश देखने की इच्छा व्यक्त करती हैं । राम, लक्ष्मण को प्रजावती दोहदशसिनीं ते तपोवनेषु स्पृहयालुरेव,स त्वं रथी तद्व्यपदेशनेयां प्रापय्य वाल्मीकिपदं त्यजेनाम्[2] ॥

लंका से अयोध्या आने पर वह राम की जननी को प्रणाम करते हुए अपने आपको पति को कष्ट देने वाली कुलक्षणा कहकर करती है,परन्तु सुमित्रा व कौशल्या उसके पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से राम व लक्ष्मण सुरक्षित घर आए हैं ऐसा कहकर सीता को उठाती हैं यथा- उतिष्ठ वत्से! न तु सानुजोऽसौ वृत्तेन भर्त्ता शुचिना तवैव। राम वन दर्शन के बहाने लक्ष्मण को आदेश देते हैं कि वे वाल्मीकि आश्रम के पास उनको छोड़ आएं।

जब वह वन-दर्शन के लिए जाती है तो वह अतीव प्रसन्न होती हैं। जब उतरने के बाद जब लक्ष्मण सारा वृतान्त सुनाते हैं तो वे मूर्छित हो जाती हैं। वह लक्ष्मण के साथ सन्देश भेज कर पूछती हैं कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा को निन्दा भय से पत्नी का परित्याग करना क्या उचित था ? यथा-

वाच्यस्त्वया मद्वचनात्स राजावह्नौ विशुद्धामपि यत्समक्षम्।

---

[1] गर्भवती त्यक्ष्यामि वैदेहसुतां पुरस्तात्समुद्रनेमिं पितुराज्ञयेव। रघुवंश, १४/३९

[2] रघुवंश,१४/४५

मा लोकापवादश्रवणात् अहासीं श्रुतस्य तत्सदृशकुलस्य[1] ॥

तत्पश्चात् वह राम को दोष न देकर अपने भाग्य को कोसती हैं। वह कहती है कि अगर गर्भ बाधा न होती तो वह विरही प्राणों का परित्याग कर देती। वह अपनी सास के लिए सन्देश भेजती है कि वे अपने पुत्र के तेजरूपी गर्भ का शुभ चिन्तन करें। वाल्मीकि के आश्रम का निर्देश कर क्षमा याचना करके अपनी राजाज्ञा की विवशता बताकर लक्ष्मण वहाँ से चला जाता है। वह राम के पश्चातापादि भाव को जानने के लिए सीता कथित सारा वृतान्त सुनाता है।

लक्ष्मण के लौट आने पर जब सीता तेज आवाज में रोती है तो महर्षि वाल्मीकि वहाँ आ जाते हैं। वे सीता को समझाते हुए कहते हैं कि वे चिन्ता का परित्याग कर वह आश्रम में चले। मैं तपोबल से तुम्हारे निर्दोषी होने को जान चुका हूँ। तुम आश्रम को अपना पितृगृह समझकर रहो। राम द्वारा किए गए शोभनीय निर्णय पर मैं बहुत क्रोधित हूँ कि उन्होंने लोकनिन्दा के भय से इस प्रकार का निर्णय लिया। सीता गर्भवती है तथा सर्वथा निर्दोष है ऐसा राम भी जानते थे परन्तु लोकनिन्दा के भय से उन्होंने परित्याग करना उचित समझा[2]। राम एकपत्नी व्रती थे जिसके कारण दूसरा विवाह न करके अश्वमेध यज्ञ में सुर्वणमयी सीता को वामभाग में बैठाया। यहाँ सीता राम को 'आर्यपुत्र' न कहकर 'स राजा' कहकर सम्बोधित करती हैं।

सीता के पश्चात राजा कुश की पत्नी कुमुद्रवती का वर्णन आता है। वह नागराज कुमुद की बहन थी। वह कुश के दुर्जय राक्षस को जीत लेने पर कुश के वीरगति पा लेने पर उसके साथ सती हो जाती

---

1 रघुवंश,१४/४७

2 "तामेकभार्यां परिवादभीरो: साध्वीमपि त्यक्तवतो नृपस्य, वक्षस्य संघटमुखं वसन्ती रेजे सपत्नीरहितेव लक्ष्मी: ॥ रघुवंश,पृ.४८३

है[1]। यहां कुश के प्रति कुमुद्वती का अनन्य प्रेम देखा जा सकता है। यहाँ यह भी विचारणीय है कि कुमुद्वती को किसी राक्षस आदि के हस्तगत होने के भयवश भी सती होना पड़ा हो परन्तु दुर्जय राक्षसगण का समूह तो कुश द्वारा नष्ट कर दिया गया था। इसलिए ऐसी संभावना दिखाई नहीं पड़ती। इस प्रकार रघुवंश महाकाव्य के आधार पर राजा कुश भी अपने पिता की तरह एकपत्नी व्रती थे । कुश ने इन्द्रासन का आधा भाग तथा कुमुद्वती ने इन्द्राणी से पारिजात में से आधा भाग ले लिया। कुश पुत्र अतिथि का विवाह निषधराज की कन्या से हुआ। उन्होंने अपनी संतान का नाम ही निषध रखा[2]। तत्पश्चात राजाओं की सन्तानोत्पति का तो वर्णन है पर इनकी रानियों के नाम का उल्लेख मात्र भी नहीं है। अन्तिम राजा अग्निवर्ण था। वह भोग विलासी था। उनके अनेक रानियाँ थी। इसके बावजूद भी वह सन्तान को नहीं देख पाया[3]।

"स त्वनेक वनितासखोऽपि सन्पावनीमनवलोक्य सन्ततिम् | मन्त्रीगण व प्रधान नागरिकों के परामर्श से गर्भ के लक्षण दिखाई देने वाली पटरानी को राजसिंहासन पर बैठा दिया यथा- मोलै: सार्धं स्थविरसचिवैर्हेमसिंहासनस्था। राज्ञी राज्यविधिवदशिषद्भर्तुरव्याहताज्ञा[4]॥ इस प्रकार रानी ने राजकार्य सम्भाला। इसको नारी सशक्तिकरण का उदाहरण कहा जा सकता है । ये रघुवंश के अन्तिम रघुवंश राजा माने जाते थे।

इस प्रकार रघुवंश में मनुष्य, राक्षस व तपस्वी कोटि के स्त्री

---

[1] त स्वसा नागराजस्य कुमुदस्य कुमुद्वती। अन्वगात्कुमुदानन्द शशाङ्कमिव कौमुदी॥ रघुवंश,१७/६

[2] रघुवंश,१७/७४, पृ.५६७

[3] रघुवंश, १९/५३

[4] रघुवंश, १९/५७

पात्र हैं। इनमें तपस्विनी वसिष्ठ की पत्नी अरुन्धती तथा अत्रि मुनिवधू अनसूया। ये प्रसिद्ध सदाचारी व उत्तम आचरण वाली महिलाएं हैं। अरुन्धती का वर्णन राजा दिलीप सुदक्षिणा के संतान कामनार्थ आश्रम आने पर तथा राम व सीता के वनगमन के समय अनसूया का वर्णन आता है। वे सीता को पवित्र अङ्गराग प्रदान करती है। शूर्पणखा एक राक्षसी है। अपने कृत्य के कारण लक्ष्मण द्वारा नाक व कान काटने पर वह अपमानित होकर अपने राक्षस समुदाय से अपने अपमान का बदला लेने के लिए कहती है । राजा अज व राम को छोडकर प्रायश: सभी राजा बहुपत्नीक थे । रघुवंश महाकाव्य में वर्णित रघुवंशीय राजाओं की पत्नियाँ सम्माननीया, वात्सल्यमूर्ति, पतिव्रता, सदाचारी व आदर्श व्यक्तित्व की धनी थीं ।

रामायण काव्य में सीता का पातिव्रत्य धर्म

डॉ० सरोज कुमारी
वरिष्ठ शोधार्थी
संस्कृत-विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय
शिमला-171005
मोबाइल नं० 8580597707
ईमेल: sarojkumarimphil@gmail.com

सारांश

रामायण महर्षि वाल्मीकि द्वारा रचित संस्कृत महाकाव्य है जिसमें श्री राम की गाथा है । इसमें अनेक स्त्री पात्रों का वर्णन है परन्तु सबसे मनोहर एवं उदात्त चित्रण सीता जी का है जो रामायण की नायिका हैं । उनका चित्रण मुग्धा व स्वकीया नायिका के रूप में हुआ है । वे अपने समस्त गुणों, शील, सौन्दर्य आदि के कारण कवि की लेखनी से चित्रित होकर जनमानस पर छा गयी हैं । वे अपने पातिव्रत्य धर्म का पवित्र आदर्श प्रस्तुत करती हैं । गृहस्थ जीवन में नारी को विशेष महत्त्व दिया गया है । रामायण का मुख्य उद्देश्य भारतीय गृहस्थ जीवन का वर्णन करना है । राम-रावण का युद्ध इस काव्य का उद्देश्य नहीं है बल्कि राम-जानकी, पति-पत्नी के परस्पर विशुद्ध प्रेम को दिखाना ही मुख्य उद्देश्य है । भारतीय नारी को आर्य पुरुषों का यह कथन आज भी गौरवान्वित करता है-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वातत्राफलाः क्रियाः ॥ मनुस्मृति, 3.56

अर्थात् प्राचीन भारतीय संस्कृति में शास्त्रों के अनुसार स्त्री धर्म की रक्षा से ही भारत देवताओं का स्थान माना जाता है । सीता जी ने अपने स्त्री व पतिव्रता धर्म का पूर्ण रूप से पालन किया था जिस कारण इनका नाम बहुत आदर से लिया जाता है ।

कूट शब्द: सीता, पतिव्रता, पतिप्रिय, अग्निपरीक्षा, पवित्रता, साहस ।

संस्कृत-हिन्दी कोश के अनुसार खेत में हल चलाने से बनी रेखा को सीता कहा है । मिथिला के राजा जनक की पुत्री का नाम सीता है क्योंकि जब वे सन्तान प्राप्ति हेतु यज्ञभूमि के लिए भूमि शोधन कर रहे थे तब हल चलाते समय हल के फाले से खुदी हुई रेखा में से सीता की प्राप्ति हुई। इसीलिए इन्हें अयोनिजा व धरापुत्री कहा जाता है ।[1]

अमरकोश के अनुसार सीता शब्द का अर्थ है- खेत में हल जोतते समय हल के फाले से बनी रेखा। इस रेखा के **सीता** तथा **लांगलपद्धति**[2] दो नाम बताए हैं । अर्थात् सीता जी हल चलाते समय राजा जनक को हल के फाले से खुदी हुई जमीन के नीचे से प्राप्त हुई थीं जो सीता कहलायीं । अथर्ववेद के अनुसार कृषि सूक्त में सीता शब्द का प्रयोग मिलता है जिसमें कहा गया है कि इन्द्र वर्षा करके हल से जोती हुई भूमि को सींचे।[3] अर्थात् यहाँ पर सीता का अर्थ हल से जोती गयी भूमि है ।

राजा जनक ने विश्वामित्र से कहा था कि मैं यज्ञ के लिए भूमिशोधन करते समय खेत में हल चलाते समय हल के अग्रभाग से

---

1 संस्कृत-हिन्दी कोश, पृष्ठ 1108

2 सीता लाङ्गलपद्धतिः । अमरकोश, द्वितीय काण्ड, पृष्ठ 198.14

3 इन्द्रः सीतां नि गृह्णातु । अथर्ववेद, 3.17.4

जोती गई भूमि अर्थात् हल से खींची गई रेखा से उत्पन्न होने के कारण उसका नाम सीता रखा गया । पृथ्वी से उत्पन्न हुई मेरी वह पुत्री (सीता) अब बड़ी हो गई है ।[1] हे मुने ! (विश्वामित्र) अगर श्री राम धनुष की प्रत्यञ्चा को चढ़ा देंगे तो मैं अयोनिजा पुत्री सीता को इन दशरथ पुत्र श्री राम के हाथों सौंप दूँगा । अर्थात् धनुष की डोरी को चढ़ाने पर मैं सीता का विवाह श्री राम से कर दूँगा ।[2] अर्थात् सीता जी के विवाह के लिए राजा जनक ने धनुष को उठाने तथा उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने की शर्त श्री राम के लिए रखी थी ।

विश्वामित्र की आज्ञा से रघुकुलनन्दन श्री राम ने धनुष को लीलापूर्वक बीच से पकड़ा और उठा लिया और खेल ही खेल में उस पर प्रत्यञ्चा चढ़ा दी[3] परन्तु जैसे ही उन्होंने धनुष को कान तक खींचा वैसे ही वह बीच से टूट गया ।[4] तभी जनक ने विश्वामित्र से कहा कि

---

1 अथ में कृषतः क्षेत्रं लांगलादुत्थिता ततः ।
क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ॥
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा ॥ रामायण, बालकाण्ड, 66.13-14

2 यद्यस्य धनुषो रामः कुर्यादारोपणं मुने ।
सुतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेरहम् ॥ रामायण, बालकाण्ड, 66.26

3 लीलया सा धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ।
पश्यतां नृसहस्त्राणां बहूनां रघुनन्दनः ।
आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ॥ वही, बालकाण्ड, 67.15-16

4 आरोपयित्वा मौर्वीं च पूरयामास तद्धनुः ।
तद् बभञ्ज धनुमध्ये नरश्रेष्ठो महायशाः ॥ वही, बालकाण्ड, 67.17

मैंने दशरथनन्दन श्री राम के पराक्रम को अपनी आँखों से देख लिया है क्योंकि महादेव जी के धनुष को चढ़ाना एक अद्भुत, अचिन्त्य तथा तर्करहित घटना है ।[1] मैं अपनी पुत्री सीता को श्री राम को सौंपता हूँ जो जनकवंश के लिए यश का विस्तार करने वाली है।[2] इस प्रकार राजा जनक ने सीता का विवाह शिव धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने, के पराक्रम को दिखाने की शर्त पर रखा था जिसमें श्री राम ने अपना पराक्रम दिखाया और सीता जी को पत्नी रूप में प्राप्त किया था ।

सीता जी श्री राम के लिए प्रिय थीं क्योंकि राजा जनक ने स्वयं उन्हें श्री राम को पत्नी रूप में सौंपा था । वे पातिव्रत्य, सौन्दर्य आदि गुणों से सम्पन्न होने के कारण श्री राम को अधिक प्रिय थीं और इसी कारण श्री राम भी उनके हृदय में रहते थे।[3] वे रूप में अप्सराओं के समान थीं और साक्षात् लक्ष्मीस्वरूपा थीं ।[4] अर्थात् सीता जी पतिव्रता, सौन्दर्य आदि गुणों से परिपूर्ण थीं और लक्ष्मी का रूप थीं ।[5]

---

1 भगवन् दृष्टवीर्यो मे रामो दशरथात्मजः ।
अद्भुतमचिन्त्यं च अतर्कितमिदं मया ॥ वही, बालकाण्ड, 67.21

2 जनकानां कुले कीर्तिमाहरिष्यति मे सुता ।
सीता भर्तारमासाद्य रामं दशरथात्मजम् ॥ वही, बालकाण्ड, 67.22

3 प्रिया तु सीता रामस्य दाराः पितृकृता इति ।
गुणाद्रूपगुणाच्चापि प्रीतिभूर्योऽभिवर्धते ।
तस्याश्च भर्ता द्विगुणं हृदये परिवर्तते ॥ वही, बालकाण्ड, 77.26-27

4 देवताभिः समा रूपे सीता श्रीरिव रूपिणी ॥ रामायण, बालकाण्ड, 77.28

5 अतीव रामः शुशुभे मुदान्वितो ।
विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः ॥ वही, बालकाण्ड, 77.29

जैसे भगवान् विष्णु के साथ लक्ष्मी जी शोभा पाती हैं, वैसे ही श्री राम के साथ सीता जी शोभायमान होती थीं । अर्थात् श्री राम स्वयं विष्णु जी तथा सीता जी स्वयं लक्ष्मी जी ही थीं ।

सीता जी पातिव्रत्य धर्म का पवित्र आदर्श प्रस्तुत करती हैं । वे बार-बार प्रार्थना करने वाले रावण का तिरस्कार करने वाली सीता भारतीय नारी का गौरव हैं । सीता जी ने रावण की अवहेलना सूचक शब्दों से निन्दा की थी उन्होंने कहा था कि हे रावण ! मैं तुम्हें अपने बाएं पैर से भी नहीं छू सकती फिर तुम्हें चाहने की बात तो हो ही नहीं सकती ।[1] अतः सीता जी के ये वचन आज भी भारतीय नारी का गौरव सदा उद्घोषित करते रहेंगे । उनका ये चरित्र भारतीय पत्नियों के महान् आदर्श का प्रतीक है ।

सीता जी रावण को समझाते हुये कहती हैं कि- तुम मुझसे अपना मन हटाकर अपनी पत्नियों में लगाओ । जो कार्य एक पतिव्रता स्त्री के लिए निन्दनीय है उसे मैं कभी नहीं कर सकती ।[2] उन्हें अपने पतिव्रता धर्म पर इतना विश्वास था कि वे रावण को इतने साहस से बताती हैं कि जिस प्रकार भगवान् विष्णु ने अपने तीनों पगों से राक्षसों से उद्दीप्त राज्यलक्ष्मी छीन ली थी । उसी प्रकार मेरे पति श्री राम मुझे शीघ्रता से यहाँ से लेकर चले जाएंगे।[3] इससे स्पष्ट

---

1 चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं विगर्हितम् ॥ वही, सुन्दरकाण्ड, 26.8

2 निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ।
न मां प्राथयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ।
अकार्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ॥ वही, सुन्दरकाण्ड, 20.3-4

3 अपनेष्यति मां भर्ता त्वत्तः शीघ्रमरिंदमः ।

होता है कि सीता रावण के सामने उसकी सारी बातों का प्रत्युत्तर बड़े ही साहस से देती हैं कि मुझे अपने स्वामी श्री राम पर पूर्ण विश्वास है ।

सीता जी को अनेक राक्षसियाँ प्रलोभन देती हैं कि वे रावण को स्वीकार कर लें। वे कहती हैं कि सुन्दरी ! तुम मानवी जाति की हो, इसीलिए मनुष्य जाति के राम को ही चाहती हो परन्तु इस समय श्री राम अपना राज्य भी खो चुके हैं जिससे उनके कोई भी मनोरथ सफल नहीं हो सकते वे हमेशा व्याकुल रहते हैं ।[1] इस पर सीता जी कहती हैं कि मेरे पति ही मेरे गुरु हैं । मैं सदैव उनमें अनुरक्त रहती हूँ जैसे- सुवर्चला सूर्य में अनुरक्त रहती हैं । मैं हमेशा उन्हीं में अनुरक्त रहूँगी । वे चाहे दीन हों या राज्यहीन हों ।[2] जिस प्रकार महाभागा शची इन्द्र की सेवा में रहती हैं, देवी अरुन्धती महर्षि वशिष्ठ में, रोहिणी चन्द्रमा में, लोपामुद्रा अगस्त्य में, सुकन्या च्यवन में, सावित्री सत्यवान् में, श्रीमति कपिल में, मदयन्ती सौदास में, केशिनी सगर में, भीमाकुमारी दमयन्ती अपने पति निषध नरेश नल के प्रेम में अनुरक्त रहती हैं, उसी प्रकार मैं भी अपने पति इक्ष्वाकुवंशीय भगवान् श्री राम में अनुरक्त हूँ ।[3] इन सब पतिव्रता

असुरेभ्यः श्रियं दीप्तां विष्णुस्त्रिभिरिव क्रमैः ॥ वही, सुन्दरकाण्ड, 21.28

1 मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद् भ्रष्टमसिद्धार्थं विक्लवन्तमनिन्दितो ॥ रामायण, सुन्दरकाण्ड, 24.5

2 दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्य सुवर्चला ॥ वही, सुन्दरकाण्ड, 24.9

3 यथा शची महाभागा शक्रं समुपतिष्ठति ।

स्त्रियों के पातिव्रत्य धर्म को बताने से देवी सीता उनके जैसे पतिव्रता धर्म का पालन करने का सन्देश देती हैं।

हनुमान जी ने सीता जी से कहा था कि जैसे धर्म यश (कीर्ति) का त्याग नहीं कर सकता उसी प्रकार मैं भी सीता जी को नहीं छोड़ सकता। अतः श्री राम व सीता जी एक-दूसरे के लिए अभिन्न हैं ।[1] सीता जी पतिप्रिय हैं । जो वर्तमान में मनुष्य जाति के लिए एक आदर्श पति-पत्नी के रूप में जाने जाते हैं ।

सीता जी ने वनवास जाने के समय श्री राम से कहा था कि हे पुरुष ऋषभ ! केवल पत्नी ही अपने पति के भाग्य का अनुसरण करती है । इसलिए अगर आपको वन में जाने की आज्ञा मिली है तो मुझे स्वतः ही आपके साथ वन जाने की आज्ञा मिल गयी है[2] क्योंकि नारियों के लिए इस लोक और परलोक में एकमात्र पति ही सदा आश्रय देने वाला है । एक नारी के लिए पिता, पुत्र, माता, सखियाँ

अरुन्धती वशिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ।
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिनुव्रता ॥ वही, सुन्दरकाण्ड, 24.10-12

1 अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ।
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा ॥ रामायण, युद्धकाण्ड, 118.14, 19-20

2 भर्तुर्भाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।
अतश्चैवाहमादिष्टा वने वस्तव्यमित्यपि ॥ वही, युद्धकाण्ड, 27.5

तथा उसका अपना शरीर भी उसका सच्चा साथी नहीं है । अतः सीता जी का पतिप्रेम हर स्त्री के लिए अनुकरणीय है । श्री राम एक आदर्श पति थे और सीता जी उनकी संगिनी के रूप में महान् पत्नी क्योंकि सीता जी ने त्याग तथा ईमानदारी से हमेशा श्री राम जा साथ दिया ।

हे सीते ! आपके पातिव्रत्य धर्म के प्रभाव से ही युद्ध में श्री राम जी ने विजय प्राप्त की है । रावण मारा जा चुका है और लंका भगवान् श्री राम के अधीन हो चुकी है ।[1] अर्थात् माता सीता जी के पतिव्रता धर्म के कारण ही श्री राम ने लंका पर विजय प्राप्त की है । जब सीता जी ने अग्निपरीक्षा दी थी तब अग्निदेव ने स्वयं श्री राम से कहा था कि मिथिलेशनन्दिनी निष्पाप हैं । सर्वदा शुद्ध भाव रखने वाली हैं इन्हें स्वीकार करें ।[2] जिस पर श्री राम ने कहा था कि मेरे लिए सीता की अग्निपरीक्षा करवाना आवश्यक नहीं था परन्तु उन्हें विवश होकर रावण के अन्तःपुर में रहना पड़ा था जिस कारण लोकापवाद के कारण इनकी अग्निपरीक्षा करवाना आवश्यक था ।[3] सीता जी तीनों लोकों में पवित्र हैं । जिस प्रकार मनस्वी पुरुष ।

निष्कर्ष

इस शोध पत्र के माध्यम से यही प्रस्तुत करने का प्रयास किया

---

1 तव प्रभावाद् धर्मज्ञे महान् रामेण संयुगे ।
रावणश्च हतः शत्रुर्लंका चैव वशीकृता ॥ वही, युद्धकाण्ड, 113.9-10

2 विशुद्धभावां निष्पापां प्रतिगृहीष्व मैथिलीम् ॥ वही, युद्धकाण्ड, 118.10

3 अवश्यं चापि लोकेषु सीता पावनमर्हति ।
दीर्घकालोषिता हीयं रावणान्तः पुरे शुभा ॥ रामायण, युद्धकाण्ड, 118.13

गया है कि सीता जी रामायण में ऐसी नायिका हैं जो सम्पूर्ण हिन्दू जाति समाज की नारियों के लिए एक पूजनीय तथा अनुकरणीय हैं जो पतिव्रता, पतिप्रिय, साहसी, अग्निपरीक्षा देने वाली, त्याग, पवित्रता एवं ईमानदारी की भूमिका में सर्वदा अग्रगण्य थीं । अतः इन्होंने अपने पतिव्रत धर्म का हर परिस्थिति में पालन किया था ।

वाल्मीकिरामायणे प्रतिपादितं सीतायाः स्वरूपं

डॉ(श्रीमती)भवानी रामचन्द्रन्
सहायक प्राध्यापिका, संस्कृत विभागः
महामना मालवीय महाविद्यालयः
खेकड़ा (बागपत)

प्रस्तावना

"कूजन्तं रामरामेति मधुरं मधुराक्षरं।

आरुह्य कविताशाखां वंदे वाल्मीकि कोकिलम्।।"

त्रेतायुगस्य वैशिष्ट्यकरं आर्षग्रंथं महर्षि वाल्मीकिना प्रणीतं रामस्य अयनम् रामायणाख्यं आदर्शग्रंथरत्नं अस्ति। वाल्मीकिरामायणे स्त्रीषु गौरवभूता ललामभूता पतिव्रता नारी श्रीरामस्य पत्नी सीता दृश्यते।सा एतावती शक्ता नारी अस्ति यया स्वीय उत्पत्तिर्विलयं च स्वयमेव निश्चितं कृतवती।अत एव सा 'अयोनिजा' कथ्यते। यदि वयं सूक्ष्मेक्षिकया अवलोकयामश्चेत् तदा वयं जानीमः यत् यदि रामायणस्य नायकः श्रीरामः अस्ति तथा नायिका सीता एव।स्वयं श्रीरामभक्तः हनुमान् तां सीतां यदा अशोकवाटिकायां पश्यति तदा कथयति यत् एतया विना सः रामः धृतव्रतो भूत्वा सीतायाःलाभाय कृतप्रयत्नः अस्ति।

सीता शब्दस्य अर्थं सीतायाः दैवी उत्पत्तिश्च

सीता श्रीरामस्य आदर्श पत्नी, जनकस्य प्रिय सुता आसीत् परं तस्याः उत्पत्तिः स्वतः संभूता दृश्यते।[१] सीता शब्दस्य अर्थम् यत् सितात् निर्मितं रेखा सीता भवति। अत एव सा जनकस्य क्षेत्रे मेदिनीं भित्त्वा जाता, येन कारणात् सा 'सीता' इति नामधेयेन प्रसिद्धा जाता।

'उत्थिता मेदिनीं भित्वा क्षेत्रे हलमुखक्षते। पद्मरेणुनिभैः कीर्णा

शुभैः केदारपांसुभिः ।।[२]

अतः स्पष्टं सीतायाः दैवी उत्पत्तिः। जनकस्य सुताकारणात् जानकी मिथिलादेशेन संबद्धता कारणात् सा मैथिली, वैदेही इति नामभिः सुविख्याता।राजा जनकेन प्रियसीतायाः लालनं पालनं आदि पितृनिष्टं कर्तव्यकर्मं कृतम्।वयसि आगते तस्याः स्वयंवरं अपि रचितं। विश्वामित्र ऋषिः स्वयंवरसमयेऽपि जनकस्य सभायाम् श्रीराम-लक्षमणेन सह आयाति, श्रीरामः शिवधनुषं च त्रोटयति।अत एव वीर्यशुल्क प्रतिनिधि रूपेण सीतायाः विवाहं श्रीरामेण सह निश्चितं करोति।[३] कन्याधनं अपि प्रददाति।[४] सीतया सह जनकस्य तिस्रः उर्मिला, माण्डवी,श्रुतकीर्ति आदि अन्य कन्यानां अपि उद्वाहं लक्ष्मण-भरत-शत्रुघ्नेन सह कारयति ।

<u>सीतापातिव्रत्यधर्मानुपालनत्वम्, सुखदुखेषु अद्वैतत्वम्-स्नुषाधर्मपालनं</u>

सीता विवाहानन्तरं पातिव्रत्यधर्मस्य पालनं श्रद्धया करोति। यदा सा रामेण सह वनानुगमनाय उद्धता तदा रामः तां निवारयति यत् 'त्वम् हर्म्ये तिष्ठतु' इति, परं सा दृढव्रता[५] समस्त सुख-शयनादि महार्हं च त्यक्त्वा चीरवस्त्रं धारयित्वा राममेव अनुसरत्। एतदेव द्योतयति तस्याः पातिव्रत्यम्। सा कथयति अहं कस्यापि लालसां न करिष्यामि कन्दमूलफलेन सन्तुष्टा भविष्यामि, मातापितां च न स्मरिष्यामि। यदि न चेत् विषं खादिष्यामि। तदनन्तरमेव श्रीरामः सीतामपि तेन सह वने नेष्यति।

<u>वनानुगमनं,वनवासधर्मपालनत्वं</u>

वल्कलवस्त्रधारणे श्रीरामः सीतायाः सहायतां करोति इति उल्लेखनीयम्।[६] अत एव सा परिस्थितेरनुसारं स्वात्मानं स्थापयति । वनवासगमनात् पूर्वं सा स्वकीय अलंकाराणां दानं करोति।[७] अनेन स्पष्टं भवति यत् सीता भौतिकसुखात् पराङ्मुखो भूत्वा केवलं कर्तव्यपरनिष्ठा आसीत्। 'अतस्मात् परं किम्?' अत्रिमुनेः पत्नी

अनसूया स्वकीयानि आभरणानि सीतायै उपहाररूपेण प्रददाति।[८]

पूर्वजन्मसंकल्पानुसारं रावणवधार्थं स्वस्य अपहरणरहस्यं

यद्यपि सीता भौतिसुखपराङ्मुखा अस्ति तदापि विधिवशात् स्वकीय अवताररहस्यस्य प्रयोजनाय श्रीरामं स्वर्णमृगस्य काङ्क्षां करोति। यथा श्रीरामः श्रीविष्णोः अवतार ग्रहणादनन्तरमपि सामान्य मनुष्य इव व्यवहरति एवमेव सीता अपि भाग्यवशात् एवं व्यवहृता इति सुस्पष्टमेव। संकट समयेऽपि सा स्वकीयां प्रत्युत्पन्नमतित्वं न त्यजति। दुष्ट रावणेन छलेन अपहरणसमयेऽपि धैर्यं धारयित्वा स्वीय आभूषणानि निबध्य वानराणां सम्मुखे नीचैः पातयति।[९] अतः आत्मसुरक्षार्थं श्रीरामाय संकेतप्रदानार्थं समस्त क्रियाकलापं करोति। वाल्मीकिरामायणस्य उत्तरकाण्डे स्पष्ट रूपेण स्वीय अवताररहस्यं विवृण्वन् सीता कथयति-

प्रवासविरहधर्मपालनत्वं भर्तृपरत्वं, पतिव्रता धर्मानुष्ठानत्वं

अनेन अन्यत् महिलानामपि उपदेशं प्रति गृह्यते यत् संकटकाले कदापि स्वधैर्यं न त्यजनीयम्, विवेकं च धारणीयम्। सीताहरणसमये यदा रावणस्य सीतां प्रति स्पर्शनस्य प्रश्नं उत्थाप्यते तस्य विषये स्वयं सीता वदति यत् 'अहं तु अनीशा आसीत्' अतः तद् विषये न मम दोषः समुत्पद्यते।[१०] लंकायां क्रूरविकृतराक्षसीनां मध्ये तिष्ठन्नपि सीता स्वस्य पातिव्रत्यस्य संरक्षणे समर्था भवति। अस्यार्थं कियती सहनशीलतायाः धैर्यस्य आवश्यकता इति नितरां स्पष्टो भवति। सा एकवेणीधरा केवलं रामाय स्वीय प्राणान् धारयन् स्वीय पातिव्रत्यधर्मस्य निर्वहने सशक्ता अस्ति।[११] यदा - यदा रावणः सीतां स्वीय तर्जनां भयं च दर्शयति तदा-तदा सा तृणान्तरितं कृत्वा भाषयति।[१२] एतदेव भारतीय - संस्कृत्या : वैशिष्ट्यम्।

स्वाभिमानरक्षापरा धर्मानुष्ठानपरा च सीता

किमधिकम् यदा हनुमान् लंकायां सीतां अन्वेष्यमानः स्वीय श्रीरामस्य दूतत्वपरिचयं ददाति तदा सः सीतां स्वस्य पृष्ठे आरोहणार्थं निवेदयति, श्रीरामसम्मुखे नेतुं च आश्वासनं प्रददाति, परं सीता प्रत्युत्तरं ददाति यदि चेत् अहम् त्वया सह गमिष्यामि तदा मयि 'कलत्रवति संदेहं' भवितुं शक्यते।[१३] अतः अहम् इच्छामि यत् मम भर्ता स्वयमेव रावणं युधि हत्वा मां च आयोध्यां नयतु।[१४] रामायणस्य अध्ययनेन एतदपि स्पष्टं भवति सीतया संध्यावन्दनादि क्रियामपि अनुष्ठितम्।[१५] अनेन सीतायाः संध्यावन्दनस्य कर्तृत्वम् सिद्धं भवति।[१६] रामरावणयोः युद्धस्य पश्चात् सीता केवलं समाजे स्वीय पवित्रतां दर्शयितुम् अग्नि प्रवेशरूपी प्रक्रियां अपि कर्तुं सज्जा भवति।[१७]

सीतायाःअवताररहस्यत्वं दार्शिनिकत्वं च

अत्र रामयणस्य संबन्धे प्रचलितानां भ्रान्तीनां निराकरणं आवश्यकम्। यतोहि कदाचित् सीतायाः उत्पत्ति संदर्भे कन्यायाः परित्यागं कृतम् इति कथ्यते तत्तु न समीचीनम्। एवमेव 'कन्याधनं' इति शब्दस्य यौतुकं/दहेज इति पदेन संबन्धं क्रियते। तन्न युक्तम्। यत् स्वेच्छया प्रदीयते तदेव कन्याधनं कथ्यते यत् राजा जनकेन सीतायै प्रदत्तं। एतदतिरिच्य सीतायाः अग्निप्रवेशप्रसंगेऽपि एतत् अवधेयम् यत् न केनापि सीतां बलात् अग्नि प्रवेशाय निवेदितम् परं सा स्वेच्छया स्वीय पवित्रतां दर्शयितुम् अग्नौ प्रवेशं कृतम्। तत्तु सीतया 'राज्ञी' रूपेण स्वीय उत्तरदायित्वं निर्वोढम्। रसातलप्रवेशेऽपि[१८] यदा सीता रावणवध-उद्देश्यं, लव-कुशरूपेण प्रजा-उत्पत्ति उद्देश्यस्य समस्त कर्तव्यस्य निर्वहणं कृत्वा तदनु रसातलप्रवेशस्य निर्णयं करोति यथा कथ्यते 'यत्र उत्पत्तिः तत्रैव विलयः' एवं सा पृथिव्यामेव समागता। सीतायाः दार्शनिकप्रसंगानुसारं एतत् कथितुं शक्यते यत् सीता स्वयं देव्याः प्रतिमूर्तिः रामायणे यथा रावणवधार्थं, कालरात्र्याः स्वरूपं धारयति।[१९] एवमेव सीतायाः विषये दार्शनिक रहस्यं विवृतं भवति।

यदि वयं सूक्ष्मेक्षिकया विचारायामश्चेत् तर्हि कथितुम् शक्नुमः यत् विभिन्न वेदोपनिषद् संदर्भेन सीतायाः दैवी स्वरूपं सिद्ध्यति। प्रथमं ऋग्वेदे एकस्मिन् मन्त्रे अर्वाची सुभगे भव सीते ! वन्दा महे त्वा ।यथा नः सुभगासि यथा नः सुफलासि।। २०३।८।९

एवं सीतायाः वन्दनं कृतम्। एवमेव अथर्वणवेद उत्तरार्द्धे श्रुतिः प्राप्यते यत् -

जनकस्य राज्ञः सद्मनि सीतोत्पन्ना सा सर्वपरानन्दमूतिर्गायन्ति मुनयोऽपि देवाश्च, कार्य कारणाभ्यामेव परा तथैव कार्यकारणार्थे शक्तिर्यस्याः, विधात्री श्रीगौरीणां सैव कर्त्री, रामानन्दस्वरूपिणी सैव जनकस्य योगफलमिव भाति। आद्या देव्याः द्विरूपत्वं अस्ति। प्रथमा व्यक्तरूपा शब्दब्रह्मयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना। द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना।

उत्पत्तिस्थिति संहारकारिणी सर्वदेहिनाम्। सा सीता भगवती ज्ञेया मूलप्रकृति संज्ञिता। श्रीरामतापनीय उपनिषद् (उत्तरार्ध) स्वयं हनुमान् रावणस्य सभायां वदति यत्

यां सीतेत्यभिजानासि येयं तिष्ठति ते गृहे।

कालरात्रीति तां विद्धि सर्वलङ्काविनाशिनीम्।।

यथा महाकाली, महालक्ष्मी, महासरस्वती रूपा देवी असुरनाशिनी अस्ति एवमेव रामायणे असुरनाशिनी 'कालरात्रि' रूपा सीता अस्ति या स्वीय वेदवती शापप्रसंगात् पूर्वजन्मस्य प्रतिज्ञापूरणाय स्वजन्मं गृह्णाति प्रतिज्ञां च पूरयति।[२०]

पातालप्रवेशकाले सीता स्पष्टरूपेण कथयति यत्

सत्यं त्विदं यत् रामसीतयोः स्वरूपे अभिन्नत्वं, अभेदत्वं दृश्यते उत वा शक्तिशक्तिमतोरभेद संबन्धत्वं परिदृश्यते। एतदेवaभिप्रेत्य रामतापनीय उपनिषदि प्रोक्तम्- 'यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, या

जानकी भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः"श्रीसीतोपनिषदि सीतां प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते।" अध्यात्मरामायणे अपि उक्तं यत्- 'एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया' तथा

"योगमायापि सीतेति" अनेन स्पष्टं भवति यत् सीतायाः दार्शनिकं महत्त्वं सुबहु दृश्यते। सीतोपनिषदि स्पष्टतः प्रोक्तम्-निमेषोन्मेष सृष्टिस्थितिसंहार तिरोधानानुग्रहादि सर्वशक्तिसामर्थ्यात् साक्षाच्छक्तिरिति गीयते। ऋग्वेदे एकस्मिन् मन्त्रे

"अर्वाची सुभगे भव सीते! वन्दामहे त्वा। यथा नः सुभगासि यथा न : सुफलासि।।" २०३।८।९ एवं सीतायाः वन्दनं कृतम्। एवमेव अथर्वणवेद उत्तरार्द्धे श्रुतिः प्राप्यते यत्-जनकस्य राज्ञः सद्मनि सीतोत्पन्ना सा सर्वपरानन्दमूतिर्गायन्ति मुनयोऽपि देवाश्च, कार्य कारणाभ्यामेव परा तथैव कार्यकारणार्थे शक्तिर्यस्याः, विधात्री श्रीगौरीणां सैव कर्त्री, रामानन्दस्वरूपिणी सैव जनकस्य योगफलमिव भाति। आद्या देव्याः द्विरूपत्वं अस्ति। प्रथमा व्यक्तरूपा शब्दब्रह्मयी स्वाध्यायकाले प्रसन्ना। द्वितीया भूतले हलाग्रे समुत्पन्ना। सत्यं त्विदं यत् रामसीतायाः स्वरूपे अभिन्नत्वं, अभेदत्वं दृश्यते उत वा शक्तिशक्तिमतोरभेद संबन्धत्वं परिदृश्यते। एतदेव अभिप्रेत्य रामतापनीय उपनिषदि प्रोक्तम्- 'यो वै श्रीरामचन्द्रः स भगवान्, या जानकी भूर्भुवः स्वस्तस्यै वै नमो नमः"। श्रीसीतोपनिषदि सीतां 'प्रणवप्रकृतिरूपत्वात् सा सीता प्रकृतिरुच्यते।" अध्यात्मरामायणे अपि उक्तं यत्- 'एको विभासि राम त्वं मायया बहुरूपया' तथा "योगमायापि सीतेति" अनेन स्पष्टं भवति यत् सीतायाः दार्शनिकं महत्त्वं सुबहु दृश्यते। युद्धकाण्डे ब्रह्म कृतरामस्तवः (१२० सर्ग) पूर्णरूपेण प्रमाणम्। अतः उपर्युक्त विवरणेन कथितुं शक्यते यत् सीतायाः दार्शनिकत्वं सुतरां स्फुटीभवति।अस्य स्पष्टत्वं श्रीमद्वाल्मीकिरामायणस्य वचनेन सिद्धं भवति यत् श्रीरामसीतयोः

अवतारत्वं रावणस्य नाशद्वारा धर्मस्य स्थापनार्थमेव। अत एव श्रीरामायणस्य अध्ययेन वयं 'रामादिवत् वर्तितव्यम् न तु रावणादिवत्' इति शिक्षां गृह्णीमः।

निष्कर्ष

अन्ते, निष्कर्षरूपेण कथितुं इच्छामि यत् सीता दैवीशक्तित्वं धारयति यया स्वयमेव उत्पतिः, गृहस्थधर्मानुसारं – सुता, पत्नी, स्नुषा, राज्ञी, माता रूपेण विविधक्रियाकलापं च कृत्वा अन्ते स्वस्य शरीरस्य विलयं रसातले करोति। सीतायाः दार्शनिकप्रसंगानुसारं एतत् कथितुं शक्यते यत् सीता स्वयं देव्याः प्रतिमूर्तिः रामायणे यथा रावणवधार्थं, कालरात्र्याः स्वरूपं धारयति। वाल्मीकि रामायणे सीतायाः स्वरूपं विभिन्नदृष्ट्या समालोचितं। अनेन स्पष्टं जायते यत् सीता न केवलं श्रीरामस्य पत्नी अस्ति परं सा अद्भुतशक्तिं धारयति यस्य साहाय्येन रावणस्य अन्तं भवति सहैव भारतीय संस्कृतेः संरक्षणं भवति।एवमेव सीतायाः विषये दार्शनिक रहस्यं विवृतं भवति। अन्ते गोस्वामी तुलसीदासस्य वचनेन विरमामि -

उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥

पाद टिप्पण्यः

१. क्षेत्रं शोधयता लब्धा नाम्ना सीतेति विश्रुता ।
भूतलादुत्थिता सा तु व्यवर्धत ममात्मजा।। वाल्मीकिरामायणम्, १/६६/१४

२. तदेव,५/१६/१६

३. मम सत्या प्रतिज्ञा च वीर्यशुल्केति कौशिक । सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता॥ तदेव,१/६७/२३, ७३/२७,३१,३२,३३ (उद्वाह)

४. अथ राजा विदेहानां ददौ कन्याधनं बहु ।
गवां शतसहस्राणि बहूनि मिथिलेश्वरः ॥ तदेव,१/७४/४

५. यदि त्वं प्रस्थितो दुर्ग वनमद्यैव राघव । अग्रतस्ते गमिष्यामि मृद्नती कुशकण्टकान्॥ तदेव,२/२७/६ फल मूलाशना... २/२७/१५

६. तस्यास्तत् क्षिप्रमागम्य रामो धर्मभृतां वरः।
चीरं बबन्ध सीतायाः कौशेयस्योपरि स्वयम् ॥ तदेव,२/३७/१४

७. धनानि रत्नानि च दातुमङ्गना।
प्रचक्रमे धर्मभृतां मनस्विनी।।तदेव,२/३०/४७

८. इदं दिव्यं वरं माल्यं वस्त्रमाभरणानि च।
अङ्गरागं च वैदेहि महार्हं चानुलेपनम्॥ तदेव,२/११८/८

९. उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराद्भूषणानि च।
शाद्वलिन्यां ध्रुवं भूम्यां सीता ह्रियमाणया।।तदेव,४/६/२०

१०. यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य बलाद्गता।
अनीशा किं करिष्यामि विनाथा विवशा सती।।तदेव,५/३७/६१

११. एकया दीर्घया वेण्या शोभमानामयत्नतः।
.. उपवासेन शोकेन ध्यानेन च भयेन च।
परिक्षीणां कृशां दीनामल्पाहारी तपोधनाम्।।तदेव,५/१९/२०-२१

१२. तदेव,५/२१/३

१३. न च शक्ष्ये त्वया सार्धं गन्तुं शत्रुविनाशन। कलत्रवति संदेहस्त्वय्यपि स्यादसंशयः।।तदेव,५/३७/४६

१४. यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सबान्धवम्।मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत्।। तदेव,५/३७/६२

१५. सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शिवजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।तदेव,५/१४/५०

१६. चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम्।.....या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम्।। तदेव,६/११९/१८-१९

१७. प्रणम्य देवताभ्यश्च ब्राह्मण्येभ्यश्च मैथिली।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः॥ तदेव,६/११९/२३

१८. यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये। तथा मे माधवी देवी विवरं

दातुमर्हति ॥ तदेव, ७/९७/१५

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।। तदेव, ७/९७/१६

यथैत्य सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परं न च। तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति ॥ तदेव, ७/९७/१७

१९. तदेव, ५/५१/३४

२०. क्षेत्रे हलमुखोत्कृष्टे वेद्यामग्निशिखोपमा।
एषा वेदवती नाम पूर्वमासीत् कृते युगे।
त्रेतायुगमनचप्राप्य वधार्थं तस्य रक्षसः।
उत्पन्ना मैथिलकुले जनकस्य महात्मनः।।
सीतोत्पन्ना तु सीतेति मानुषैः पुनरुच्यते।। तदेव,७/१७/३८-३९

"मधुराम्लम् अभिनव कृतियाँ"

डॉ. उर्वशी सी. पटेल
सी.यु.शाह आर्ट्स कालेज
लाल दरवाजा ,अहमदाबाद.
गुजरात ,भारत

दृश्यकाव्य हम जब देखते हैं । तब हमें ऐसा लगता है कि, हम कोई वास्तविकता ही देख रहे हैं । यह दृश्यकाव्य का महत्वपूर्ण प्रभाव है । हमें स्वाभाविकता का प्रतिबिंब दीखता है और कभी-कभी प्राकृतिक शक्तियों और मानव के संकल्प के बीच में जो संघर्ष आता है । उसकी भी कहानी दिखती है । मनुष्य की स्वभावगत सीमा है, उसके प्रति उसके प्रतिबद्धता का द्रष्टांत हमें मिलता है । तो यह एक दृश्यकाव्य का मुख्य लक्षण है । अतः समाज के एक सब्जेक्ट की तरफ हमारी चिंतन शैली, कोई भी कार्य करने की पद्धति और अपने पास जो भी है, उसको समाज के लिए कैसे उपयोगी कर सके ? यह मार्गदर्शन हमें दृश्यकाव्य से मिलता है । हमारी जो चिंतन परंपरा है वह सामाजिक दृष्टि से तो है , लेकिन उसमें वैज्ञानिक सत्य भी रहा है । वहीं दृश्यकाव्य से हम लोक नीति- रीति आदि सीखते हैं । शिष्टाचार भी सिखते हैं । जो वास्तविकता और संवेदना के बीच में संघर्ष रहता है । जिसको हम मूर्तिमंत देख नहीं सकते, लेकिन दृश्यकाव्य की मदद से हम उसे समझ पाते है । इसका प्रतिबिंब हमें आधुनिक दृश्यकाव्य में दिखता है ।

आधुनिक समय लिखा गया ग्रन्थ “मधुराम्लम्” में पांच एकांकियों का संग्रह है । जिसकी रचना डॉक्टर वीणापाणि पाटनी ने की है । यह एक संस्कृत जगत में विद्वान नाटक कर्त्री है । जिनको

संस्कृत अकादमी उत्तरप्रदेश का विशिष्ट पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है और उनकी कृतियाँ संस्कृत पत्र- पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई हैं । अतः डॉ.वीणापाणीजी का संस्कृत जगत में योगदान जरूर ही अध्ययन पूर्ण लगता है । वीणापाणि पाटनी का जन्म 1932 में हल्द्वानी उत्तर प्रदेश में हुआ । उन्होंने इसाबेल कार्बन कॉलेज एवं लखनऊ विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की थी । उनके घर में शुरू से ही संस्कृत अध्ययन में विशेष रुचि रही है। इसीलिए यह संस्कार श्रीमती वीणापाणि में भी आया। ई.स. 1953 में उन्होंने "हरिवंश पुराण का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन" इस विषय पर पीएचडी की उपाधि प्राप्त की थी । ई.स. 1960 से 61 तक उन्होंने लखनऊ विश्वविद्यालय के संस्कृत विभाग में कार्य किया और ई.स.1967 तक जानकीदेवी महाविश्वविद्यालय में वह अध्यापन करते रहे ।[१]

श्रीमती वीणापाणि पाटनी संस्कृत में कई रचनाएँ कर चुके हैं । जैसे कि “अपराजिता” नामक गद्य रचना जिसमें सात कथाएँ हैं और दूसरी यह मधुराम्लम् जो पांच एकांकियों का संग्रह है । जो नाग प्रकाशन, जवाहर नगर, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है । जिसकी भूमिका डॉ सत्यव्रतशास्त्री ,(संस्कृत विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय) ने लिखी है । डॉ. सत्यव्रत शास्त्री जगन्नाथ संस्कृत विद्यालय, पुरी ,उड़ीसा के भूतपूर्व उपकल्प कुलपति भी थे । वे प्रस्तावना में लिखते हैं कि, "The Madhuramlam is an important edition to the evergreen Sanskrit grammatic literature the tendency for shorter place in Sanskrit in contrast to the longer ones had suggest fairly early .The collection of Madhuramlam is a beautiful work we on account of relevant themes as also sensitive and artistic present for all lovers of literature.[२]

यह जो मधुराम्लम् कृति है ,उसमें नींबपत्राणि, प्रतिबुद्धा, यथार्थगरलम्, नारददौत्यम् तथा कवि कालिदासीयम् जैसी एकांकी - कृतियों का समावेश किया गया है। इन कृतियों में हास्य व्यंग्य भी है, महिला का आंतरिक संघर्ष जो अपनी नौकरी और घर के बीच होता है ,उसको सूचित करते हुए कथानक भी है । एक दरिद्र ब्राह्मण अपने धन अर्जन के लिए जो प्रयत्न करता है । उसमें कहीं ना कहीं लोभ का आ जाना स्वाभाविक दिखता है । उसके ऊपर कटाक्ष भी है । तो पुराण आधारित कथानक में स्वर्ग में रहते देवताओं और भारतवासियों का जो संघर्ष है। उसका भी निरूपण कृति में है । जिसको नारददौत्यम् एसा शीर्षक दिया हैं और कालिदासीयम में राजाभोज के राज्य दरबार में कालिदास के जो गुण प्रकट होते हैं ,सबके सामने आते हैं । उनका भी निरूपण किया गया है । इन सभी एकांकियों का रंगमंच में अभिनय भी किया गया है । यानी की बहुत अभिनयपूर्ण पद्धति से यह एकांकीयों की रचना संस्कृत जगत को वीणापाणी जी ने दी है ।

नींबपत्राणि नामक एकांकी में पाँच दृश्य आते हैं। प्रथम अंक में विद्या अध्ययन की समाप्ति होने पर स्नातक अपने गुरु से आशीर्वाद लेकर आश्रम से निकलते हैं और व्यावहारिक जीवन में उनका प्रवेश होता है । व्यावहारिक ज्ञान न होने से उनके पात्र खाली रह जाते है । यानी कि तीनों शिष्यों के हाथ में केवल नीम के पत्ते ही रहते हैं और उनसे ही अपनी भूख को मिटाना पड़ता है । इस एकांकी को महाविद्यालय एवं फिरोज शाह कोटला मैदान दिल्ली में तीन बार अभिनीत किया गया है ।

दूसरी कृति है प्रतिबुद्धा, जिसको संस्कृत अकादमी दिल्ली के तत्वावधान में 1990 में अभिनीत किया गया हुआ है । यथार्थगरलम् यह एकांकी 1992 में संस्कृत अकादमी के सहयोग से लिटिल थियेटर ग्रुप मंडी हाउस में भी अभिनीत हुआ । प्रतिबुद्धा में ललित

और उनकी पत्नी सुलेखा की कहानी दी गई है । जिसमें ललित किसी कंपनी में काम करता है और सुलेखा भी कार्यालय में काम करती है । दोनों काम करनेवाले पति -पत्नी के बीच का जो मनोमंथन है । इसमें स्त्री की स्थिति कैसी विषम होती है ?वह यहां दिया गया है । कैसे घर चलाएंगे ? तो आधुनिक जीवन का जो संघर्ष है, यहां निरूपित किया गया है ।

यथार्थ्यगरलम् एकांकी में चार दृश्य है । देवदत्त नामक ब्राह्मण अपनी आर्थिक स्थिति की मजबूती के लिए भगवान से अपनी लॉटरी खुल जाए ऐसी याचना करता है । स्वप्न में देखा भी है कि, कोई दिव्य आकृति लॉटरी परिणाम में उसको अनुकूल हो जाए ऐसा आशीर्वाद देते । दूसरी बार देवदत्त को कमिश्नर महोदय के यहां से दुर्गापाठ के लिए सहपत्नी भोजन का निमंत्रण मिलता है । पत्रवाहक जब समाचार लाता है कि, जो लॉटरी निकली है । वह देवदत्त नामक किसी दूसरे व्यक्ति के लिए निकली है । तब देवदत्त को वास्तविकता का पता चलता है । वह टूट जाता है । यानी कुछ भी परिणाम आने से पहले संभावनाओं के आधार पर कभी चलना नहीं चाहिए। अन्यथा निष्फलता का सामना करना पड़ता है। यह एकांकी 1992 में अकादमी के सहयोग से लिटिल थियेटर ग्रुप, मंडी हाउस में अभिनीत हुआ है।

नारददौत्यम में एक अलग प्रकार की कथावस्तु का समावेश किया गया है । जिसमें चंद्र-आदि ग्रहों पर मनुष्य को पहुंचते हुए देखकर देवराज इन्द्र भयभीत होता है । इन्द्र को लगता है कि, इंद्रासन अब चला जाएगा । वह नारद को दूत के तौर पर भारत भेजते हैं । नारद सबसे पहले मुंबई आते हैं । शास्त्रीय संगीत सुनने के बजाय वहां पॉप संगीत सुनते हैं और संगीत की दुर्दशा का अनुभव करते हैं । वहां से नारद दिल्ली जाकर गृहमंत्री को मिलते हैं । संदेश लेकर नारद वापस इंद्रलोक जाते हैं और इंद्र पृथ्वीवासियों

की दुर्दशा सुनकर आस्वस्थ हो जाता है कि, अब मेरा सिंहासन कोई ले नहीं सकता ।

कवि कालिदासीय एकांकी में कविगोष्ठी में कालिदास की प्रस्तुति देखकर राजा भोज उनको एक लाख स्वर्ण मुद्रा देते हैं । उसके बाद कालिदास की प्रतिष्ठा बढ़ जाती है । तब मयूर, कर्पूर आदि कवि चिंतित हो जाते है और कालिदास की परीक्षा लेना चाहते हैं। कालिदास अंत में खोजा जाता है । स्वयं भोज उनको अपनी सभा में ले जाते हैं। इसका कथावस्तु प्रख्यात भोजप्रबंध से लिया गया है ।

इन सभी कृतियों में हास्यरस और सामाजिक प्रतिबिंब के द्वारा यथातथ्य सामाजिक व्यवहार हमारे सामने प्रकट किया है और प्रत्येक एकांकी कोई न कोई मैसेज-संदेश दे जाती है । जैसे कि अगर स्त्रियों का विकास चाहते हैं तो उनको अपने घर और व्यावसायिक जीवन के बीच संतुलन बनाने के लिए परिवार के लोगों को भी मदद करनी चाहिए । हमारा समाज जो पुरुषप्रधान है। उसको यह समझ लेना चाहिए कि, यदि आर्थिक सहाय, आर्थिक स्थिति अच्छी करनी है ,तो अपने घर की स्त्रियों को भी मदद में लिया जा सकता है। किंतु उनको दोगुना काम नहीं करवाना चाहिए। उनके आत्म सम्मान का भी ख्याल रखना चाहिए। स्त्री यंत्र नहीं है, त्याग का प्रतीक है।

नींबपत्राणि की कथावस्तु में कोई भी व्यक्ति विद्या प्राप्त करता है, ज्ञानी होता है। लेकिन यदि व्यवहार नहीं होता है, तो वह हास्यास्पद बनता है। यहाँ जो वर्तमान परिस्थिति के पात्र दिए गए हैं, जेसे की नैयायिक शारद्वत, आयुर्वेदाचार्य जीवक, वैयाकरण वैदुल। वह शास्त्रीय अध्ययन तो कर लेते हैं, लेकिन व्यवहार में शून्य ज्ञान रखते है। अतः अपना जीवन निर्वाह करने में भी उनको बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। तो यहाँ एक हास्य

व्यंग्य दिखता हैं। नारदौत्यम नामक तीसरी एकांकी में नारद जब पृथ्वीलोक पर आते हैं। तब इंद्र का इंद्रासन चला न जाए इसके लिए आते हैं, लेकिन यहाँ देखते हैं। तो नारद समझ जाते हैं कि, पृथ्वी अब पहले की तरह उपजाऊ नहीं रही है। सामाजिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदि सब परिवर्तन हो गए हैं। जब इंद्र यह सुनता है कि, पृथ्वी के लोग वैज्ञानिक तकनीक से चंद्रमा पर तो जा सकते हैं। लेकिन वर्षा के लिए तो इंद्र पर ही आधार रखते हैं, तो उनको थोड़ी सी सांत्वना मिल जाती है। यानी कि, बाह्य दृष्टि से हम वैज्ञानिक पद्धति से बहुत आगे चले गए हैं, ऐसा अनुभव करते हैं। किंतु पर्यावरण की दृष्टि से समाज, संगठन की दृष्टि से, अपने सद्गुणों की दृष्टि से, हम पीछे हटते जाते है। जो हमको खुद को ही नहीं पता चलता । यह संदेश यहाँ दिया गया है।[३]

वीणापाणीजी की एकांकीयों में कथावस्तु में आधुनिकता का प्रभाव हमें देखने को मिलता है। जैसे के प्रतिबुद्धा एकांकी का नायक राजकीय कार्यालय में कर्मचारी है और आरंभ में रेडियो भी सुनाई जाता है। अलार्म का भी उल्लेख है। गैस स्टोव की बात भी आई है। स्कूटर बिगड़ जाता है, तो नायक को टैक्सी करके कार्यालय पहुंचना पड़ता है । गैस सिलेंडर का अभाव होना, तार संदेश मिलना ।दूसरी एकांकी यथार्थगरलम् में देवदत्त ब्राह्मण लॉटरी खरीदता है और लॉटरी खुलने की प्रार्थना भी करता है । नारददौत्य में जब नारद जी पृथ्वी पर आते हैं तो नीता नामक स्त्री द्वारा गर्म जल में दूध पाउडर डालकर चाय उनको दिया जाता है। नायक चाय को न्यूक्लियर युग का सोमरस भी कहता है।[४] इन सब चीजों से मालूम पड़ता है कि, यह कथा वस्तुत: एकदम आधुनिक है। कोई कोई शब्द ऐसे हैं, जो सीधे आंग्लभाषा से लिए गए हैं । जैसे की गैस, टाइप यंत्र, रजिस्टर, स्कूटर, टेलीग्राम पत्रम् , कमिश्नर महोदय ,टैक्सियां, न्यूक्लियर युग, क्लब भवन इत्यादि।[५] अलार्म, हीटर,

कॉल बेल, टेबल क्लोथ, तकीये का कवर उपधानाच्छादनक, अन्गप्रोक्षण यानि अन्गुछा, चमड़े की बेग के लिए चर्ममयकोश, कप के लिए पूपिका, चेक के लिए कोष पत्र, चीनी उष्णपेय, हाथ की घड़ी के लिए हस्तबद्धघटिकायन्त्र, चाय पात्रै: समेताम् स्थालि दधाना अर्थात् चाय पात्र ट्रे मे लाओ आदि अन्य शब्द भी मिलते हैं।[६]

कई बार जो हिंदी मुहावरे हैं, उनका संस्कृत में अनुवाद किया है । जैसे पेट में चूहे दौड़ रहे हैं , अरे अज्ञा के बच्चे । यह गिरधारी किस मर्ज की दवा है । आज मैं सुबह किसका मुंह देखकर उठा । सभी जेल की हवा खाएंगे । [७] वीणापाणीजी के रूपकों में संवाद भी तीव्र गति से आगे बढ़ता है । फिर भी उसमें एक चमत्कारिकता दिखती है । जिसका प्रभाव वाचन को पड़ता है । संवाद में इतनी वास्तविकता दिखाई गई है कि, वह पढ़ते हुए वाचक को भी मानो आंखों के सामने कोई दृश्य दिखाई देता है । व्यावहारिक दैनिक जीवन की जो पदावली है । उनका ही प्रयोग हुआ है, तो एकांकी ज्यादातर बहुत सहज लगती है ।

आधुनिक युग में वीणापाणी जैसी कवियत्रियों जो रचनाएं दी है । उनका यह योगदान नारी गौरवरूप है । यह आधुनिक कृतियां है । वह जन सामान्य को प्रतिबिंब करके अपनापन दिखाकर आदित्यसमान अपनी प्रतिभा प्रकट करती है । भले ही सामाजिक समस्याओं या सामाजिक विचारों का अपनी कृतियों में उन्होंने कथावस्तु के तौर पर लिया हो । लेकिन वह उसमें भी सफल हुई है। कृतियां आकाशवाणी के माध्यम से या विविध रंगमंचों के ऊपर प्रयोगात्मक रीति से सफल हुए हैं । और इसे एक फायदा जो सबसे बड़ा कहा जाता है कि उन्होंने समसामयिक समस्याओं को अपनी कृतियों में रखकर समाज में जागरूकता बढ़ाने का काम किया है ।

सन्दर्भ

१) आधुनिक संस्कृत महिलानाटककार ,मीरां द्विवेदी ,पृ –१५,१६

२) मधुराम्लम्, डॉ. वीणापाणी पाटनी ,पृ ७

३) आधुनिक संस्कृत महिलानाटककार ,मीरां द्विवेदी ,पृ –५०

४) ललित: कीद्रुशं चायमानीतवत्यसि ?

सुलेखा : कषायं धूमगन्धि च

सुलेखा - हूहूं पूर्वमेव मया सूचियों असि गैस विषये । गैसमन्जूषासमाप्तप्राया स्टोव वैद्युतोष्णाकस्य वा प्रबंध:समाचरितव्य इति । प्रात: कालादाराभ्य जीर्ण अंगाष्टिकायां अंगारान् मुखवायुना प्रज्वालयन्ती क्षारदिग्धा अंगी सन्जाता । प्रतिबुध्धा पृष्ठ ११

*नारद:-देवराज ! अद्यतनीयं भारतं न पुरातनभारतसद्दशं वरीवर्ति......तत्र यत्र निषपन्ने दुग्धचूर्णे जलं मिश्रयित्वा दुग्धंविधीयते । नारददौत्यम्। पृ.४८

* ललित: -हुंह टैक्सी यानेन कार्यालयं सम्प्राप्तो असि । तंत्र चाध्यक्षेणाक्षिप्तो असि विलम्ब निमित्तम् ।

प्रतिबुद्धा, पृ- १७, द्दष्टव्य - मधुराम्लम्, डॉ. वीणापाणी पाटनी ,

५) गेसमन्जूषा ,टाईपयन्त्रस्य ,सपादकिलोमितम् , रजिस्टर पत्राणि स्कूटर यानेन ,टेलिग्रामपत्रम् , लाटरी पत्राणि, कमिश्नरवर्याणाम् , कमिश्नर महोदया: , बेगम महोदया, टैक्सीयानेन, न्युक्लियरयुगस्य , क्लबभवने । Introduction page-7 निम्बपत्राणि, मधुराम्लम्, डॉ. वीणापाणी पाटनी

६) अलार्म ऊबोधक ध्वनि , हीटर अर्थात् विद्युतोष्णाक पृ ११ , कोलबेल अर्थात् श्मश्रुकूर्चिका पृ ११ ,टेबल क्लोथ के लिए काष्ठफलकास्तरण, पृ ४१ ,तकीये का कवर उपधानाच्छादनक ,अन्गप्रोक्षण यानि अन्गुछा, चमड़े की बेग के लिए चर्ममयकोश, पृ १६, कप के लिए पूपिका पृ १६, चेक के लिए कोष पत्र पृ १६, चीनीय उष्णपेय पृ३३, हाथ की घड़ी के लिए हस्तनद्धघटिकायन्त्र पृ२०, चाय पात्रै: समेताम् स्थालि दधाना अर्थात् चाय पात्र ट्रे मे

लाओ । मधुराम्लम्, डॉ. वीणापाणी पाटनी

७) हिन्दी मुहावरों का संस्कृत में प्रयोग हुआ है

* पेट में चूहे कूद रहे हैं " क्षुत्क्षामकण्ठस्योदरे मूषका यातायात कुर्वन्ति पृ ८,

*अरे आज्ञा पुत्र पृ ११ , अरे आज्ञा के बच्चे !

*अयं गिरिधारी कांस्य रोगस्यौषधि: पृ ११ यह गिरधारी किस मर्ज की दवा है

*अद्य कस्य मुख्य वीक्ष्याजागरम् पृ १५ आज मैं सुबह किसका मुंह देख कर उठा

- ते ते महानुभावा ------ज्योतिषधौरीणानामुपकण्ठं मक्षिका गुडमिव परितो भ्रमन्ति ।पृ ३०

जैसे मक्खिययां गुड पर मंडराती है।

- उक्तं न, देवर्षि नारदोऽहम् पृ-४६, कहा ना मैं देवर्षि नारद हूं

- भीत्तिनामपि श्रोत्राणि भवन्ति पृ५३ दीवारों के भी कान होते हैं ।

- सर्व कारागारस्य बाथम अनुभविष्याम: ।पृ ५५ सभी जेल की हवा खायेंगे ।

-- अन्ये काऽपि सेवा ? पृ-५६ और कोई सेवा ?

वैदिक साहित्य में नारी

Dr.Amisha Harshalbhai Dave
Assistant Professor
Shree Somnath Sanskrit University constituent
Sanskrit College
Veraval

ऋग्वेद हमारा प्राचीन ग्रंथ है। ऋग्वेद में प्राचीनकाल से चली आने वाली आर्यनारी की सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। कुछ विदेशी नारियां अपने सद्गुणों के कारण और मंत्रों का साक्षात्कार करनेवाली ऋषिकाओके रूप में प्रतिष्ठित हुई है। उनमें एक ऋषिका है अगत्स्यस्वसा। जो अगत्स्य की बहन और बन्धु, सुबंधु, श्रुतबंधु और विप्रबंधु की माता है, जो ऋग्वेद के दसवें मंडल के (10:60:6) मंत्र की द्दष्ट्री है।

इक्ष्वाकु वंश में असमाति राजा थे। उनके बंधु, सुबंधु, श्रुतबंधु और विप्रबंधु ऐसे चार पुरोहित थे,जो गौपायनों के नाम से परिचित थे।[1] असमाति राजा के चार पुरोहित थे जिनको छोड़कर उन्होंने दूसरे मायावी पुरोहितों की पसंद की जिससे चार भाई गुस्सा हो गए और किरात और आकुलि जो मायावी पुरोहित थे जिसने अभिचारप्रयोग करके सुबंधु के प्राण ले लिए। इसलिए सुबंधु की माता असमाति राजा की स्तुति करती हैं।

यहाँ एक मंत्र के साथ तीन सूक्तों की कथावस्तु संकलित है। जिसमें देवता असमाति है, छंद अनुष्टुप है। दशम मंडल के 57 में सूक्त में सुबंधु के ऊपर अभिचार का प्रयोग हुआ था वो संदर्भ दिया गया है। ये सूक्त के प्रथम मंत्र में संजिवनी विद्या और तीसरे मंत्र में प्रेतावाहन विद्या का उल्लेख किया गया है। ये सूक्त के देवता मन

है। जो व्यक्ति बिछड़ गई है उसको वापस लाने के लिए ये सूक्त का विनियोग कहा गया है।[2]

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।

मान्तः स्थुर्नो अरातयः॥ (ऋ 10/57/1)

मनो त्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन।

पितृणां च मन्मभिः॥ (ऋ 10/57/3)

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।

तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवते॥ (ऋ 10/58/1)

दसम मंडल के 58 में सुक्त में मृत सुबंधु के देह में इन्द्रिय के साथ मन फिर से शरीर में प्रवेश कर सके उसके लिए विधान कहा गया है। इस सूक्त के देवता मन है। और लिंगदेह के 17 तत्वों से मन प्रधान है।[3]

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्वो देवी पुनरन्तरक्षिम्।

पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां इ या स्वस्तिः।

(ऋ 10/59/7)

दसम मण्डल के 59 सूक्त में सोम और निऋति की स्तुति है। इस सूक्त में देवता सोम, निऋति, असुनीति है। निऋत्ति मृत्यु की देवी है। अशुनीति का अर्थ “जीवन का मार्गदर्शक” या “प्राणशक्ति” हो सकता है।[4] इस सूक्त के सातवें मंत्र में पृथ्वी, द्यौ, अंतरिक्ष को प्राण वापस देने के लिए प्रार्थना की गई है। सोम को देह देने के लिए, पूषा को मृतदेह में सूक्ष्मदेह प्रवेश करते समय मार्ग में बाधा न आए उसके लिए प्रार्थना की गई है।

अगस्त्यस्यनद्भय: सप्ती युनक्षि रोहिता।

पणीन्नक्रमीरभि विश्वान्नाजन्नराधस:। (ऋ 10/60/6)

दसम मंडल के 60 वें सूक्त में सुबंधु की माता राजा की स्तुति करती है। भाइयों के आनंद के लिए और धन प्राप्ति के लिए रोहितवर्ण के अश्व को जोड़ने के लिए कहा है। पणियों के पराभव के लिए बताती हैं। देवता असमाति है।[5]

ये चार सूक्तो में कथावस्तु ऐतिहासिक संदर्भ से संकलित है। सूक्त 59 में पुरोहित दो प्रकार के –(1) कुल पुरोहित, (2) भाव-पुरोहित। यजमान भाव-पुरोहित को बदल सकते थे, जिससे पुरातन तृत्सु के और वर्तमान पुरोहितों में वैरभाव बढ़ता था। तृत्सु के राजा सुदास ने वशिष्ठ के स्थान पर विश्वामित्र को पुरोहित के स्थान पर नियुक्त करने पर वशिष्ठ ने विश्वामित्र की वाणी को हर लिया था। और विश्वामित्र ने ससर्परि वाक् प्राप्त की थी। ऐसे वशिष्ठ और विश्वामित्र की स्पर्धा वेद में प्रसिद्ध है।[6] सुबंधु को जीवित करने के प्रयत्न में प्रेतावाहन और मृतसंजिवनी विद्या बताई गई है। गरुड़पुराण में मृतात्मा को यमलोक ले जानेवाले मार्ग को वर्णित किया गया है।[7] भागवत में भी धुंधुकारी को प्रेतावस्था में से मुक्त करने के लिए भागवत कथा कह गयी है। ऋग्वेद के प्रेत-पितृसूक्त (ऋ.10:14-18), यजुर्वेद के (अध्याय-19,32,35), सोमवेद मे (1/114, 80, 415, 528, 529, 530), अथर्ववेद में (18 वें कांड) पितृयज्ञ के पितृपिण्ड यज्ञ के साथ संकलित है। इन सबका फलितार्थ यह है कि प्रेतावाहन विद्या ऋग्वेदकाल जितनी प्राचीन और सुज्ञात है।

अदिति

अदिति चौथे मंडल की एक मंत्र की दृष्टि है। मित्रावरुण और अर्यमा की माता है।[8] इसलिए उसको राजमाता कहा गया है।[9] पौराणिक कथाओं में अदिति दक्षकन्या तथा कश्यप की पत्नी हैं।

किंतु वेदों में उनको विष्णु की पत्नी कहा गया।[10] अदिति की द्यौ तथा पृथ्वी की एकरुप कल्पना की गई है।[11] कई जगह द्यावा पृथ्वी से भिन्न उल्लेख किया गया है।[12] ऋग्वेद और दूसरे ग्रंथों में उनको "गो" कहा गया है।[13] उषा को अदिति मुख कहा गया है।[14]

देवयुग में तीन लोक पर देवताओं का स्वामित्व था। उस समय पुत्र प्राप्ति के लिए एक पांव पर खड़े रहकर कठिन तपस्या की जिसके परिणाम भगवान विष्णु प्रसन्न हुए।[15] भगवान विष्णु को पाकर अदिति ने बारह पुत्रों को जन्म दिया। ये बारह आदित्य बारह मास के बारह सूर्य है। तैत्तिरीय संहिता में कहा गया है कि अदिति के आठ पुत्र हुए। उसमें से केवल सात पुत्रों को वे देवताओं के पास ले गयी। आठवां पुत्र विवस्वान् का त्याग किया। आठ पुत्र वो आठ 'वसु' हैं। अदिति, वरुण, मित्र और अर्यमा की माता देवमाता है। अदिति का भौतिक आधार असीमित क्षितिज है। और उसकी ओर आकाश के बीच में बारह आदित्य भ्रमण कर रहे हैं। पुराण में इस कल्पना का विस्तृत रूप से वर्णन मिलता है। कश्यप की दो पत्नियां- अदिति और दिति।

अदिति को ((4:18:7) की ऋषिका माना जाता है। जिसमें देवता इन्द्र और छन्द त्रिष्टुप है। यह संवाद-सूक्त है। इन्द्र, वामदेव और अदिति के बीच संवाद होता है। जिस तरह गाय बछड़े को उत्पन्न करता है उस प्रकार अदिति ने इन्द्र को जन्म दिया। प्रथम मंत्र में मनुष्य की जन्म-पद्धति के बारे में कहा गया है।मनुष्य जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे अपने कुल और मातृभूमि का अपयश ना हो। इस मंत्र में सामाजिक और राष्ट्रीय महत्त्व देखने को मिलता है। चौथे मंत्र में आश्रित और आश्रयदाता दोनों का परस्पर प्रेम और वफादारी देखने को मिलती है। पांचवे मंत्र में इन्द्र माता के गर्भ में हजारों मास रहा। और ये इन्द्ररूप सूर्य अत्यंत तेजस्वी होने के कारण माता के लिए भारी हो गया। अतः माता ने उसको गर्भ से बाहर

फेंक दिया। ये वर्णन नोंधनीय है। इस तरह त्यक्त गर्भ जीवित रहकर, विकसित होकर, जन्म लेकर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। सामान्य गर्भकाल से ज्यादा समय बीतता है इस बात का यहा समर्थन मिलता है। इन्द्र के जन्मसमय पर नदीयां हर्ष से कल-कल आवाज करने लगी। रामकृष्ण इत्यादि के जन्मसमय पर भी प्रकृति ने ऐसा प्रतिभाव दिया था। इस मंत्रमें "ऊल्ला" "हर्ष से आवाज करनेवाला" अर्थ में प्रयोजित है। श्रीहर्ष के नैषधचरित्त में "ऊल्लु" शब्द प्रयोग ऐसे ही आता है।[16]

श्रीहर्ष बंगाल के निवासी थे वो मानते हैं कि दमयन्ती जब नल को वरमाला पहनाती हैं, तब विरांगनाओं ने 'ऊलूलु' शब्द किया था। 'उलूलु' आवाज़ गौड़देशों में स्त्रियां द्वारा मांगलिक प्रसंग में किया जाता था ऐसा नैषध के टीकाकार मानते हैं। बंगाल में आज भी यह परंपरा चालु है।[17] सातवे मंत्र में इन्द्र की स्तुति है। देव को प्रसन्न करके अपना इच्छित प्राप्त कर सकते थे ऐसा स्पष्ट होता है। इन्द्र ने वृत्र का वध किया था इसलिए ब्रह्महत्या का पाप लगा था। और नदियों ने वो पाप झाग के रूप में धारण किया। इस पर से जाना जाता है कि ऋग्वेदकालीन समाज में ब्रह्महत्या को बड़ा पाप माना जाता था।

अदिति को (10:72:1-6) की ऋषिका माना जाता है। जिसमें देवता विश्वदेवा और अनुष्टुप छन्द है। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति का विस्तृत विवरण होने के कारण तत्त्वज्ञान विषय का मान सकते हैं। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में परमात्मा के विश्वरूप को दर्शाया गया है। पुराणों में वेद के ही सर्जन प्रक्रिया का उपबृंहण किया गया है।

पुराणों में सृष्टि के सर्जन के लिए अंभोद्वाद आधारशील बना है। एकांकी परमात्मा को एक से अनेक होने के भाव से जल का सर्जन किया। जल के सर्जन के बाद उसमें बीज रखा। वो बीज में से

सृष्टि उत्पन्न हुई। ये बीज का विकास होने पर हिरण्यगर्भरूप अण्ड का जन्म हुआ। संवत्सरपर्यंत तैरता रहा और पुरुष प्रजापति का जन्म हुआ। अण्ड टूटने उसके दो भाग हुए और पृथ्वी के बीच का भाग वो अंतरिक्ष। पुराणों में स्वयंभू प्रजापति वो ही हिरण्यगर्भ परमात्मा है। वो खुद प्रकट हुए इसलिए स्वयंभू कहलाए। इस सृष्टि को ब्राह्मी-सृष्टि कहते हैं। इस ब्राह्मी सृष्टि में से मानसी-सृष्टि का सर्जन हुआ।[18] तीसरे मंत्र में दिशाएं और वृक्षों उत्पन्न हुए ऐसा कहा गया है। दक्ष से अदिति और अदिति से दक्ष जन्मे यह बीजांकुर न्याय कहा गया है। चौथे मंत्र में ऐसा कहा गया है। पांचवे मंत्र में अदिति ने आदित्य को जन्म दिया ऐसा कहा गया है। आठवें मंत्र में अदिति सात पुत्र को लेकर देवो के पास गई और आठवां पुत्र मार्तंड को छोड़ दिया। प्रजा की उत्पत्ति और उनकी मृत्यु के लिए सूर्य को वापस ले आए और द्युलोक में धारण किया। एसे मनुष्यमात्र के जन्म-मरण शुरू हुए।

अपाला

अपाला आत्रेयी है। आत्रेयी अर्थात अत्रि गोत्रोत्पन्न, स्त्री अपत्य। भवभूति उत्तररामचरित में वाल्मीकि के आश्रम में लवकुश की सहाध्यायिनी के रूप में आत्रेयी का उल्लेख मिलता है।[19] आत्रेयी के दूसरे अर्थ के लिए "आ+त्रि", अत्रि- तीन दिन के लिए स्पर्श करने के लिए अयोग्य रजस्वला स्त्री। रजस्वला स्त्री तीन दिन तक अस्पृश्य मानी जाती है।[20]

अपाला अत्रि ऋषि की कन्या है। उसके शरीर पर कोढ होने के कारण उसके पति ने उसका त्याग किया था अत: वो पिता के घर रहती थी। वहाँ रहकर इन्द्र को प्रसन्न करने हेतु उसने तपस्या प्रारंभ की। इन्द्र को सोम अत्यंत प्रिय है, इसलिए अपाला सोमवेल लाने के लिए नदी तट पर गई। वहाँ सोमवेल को मार्ग में चबाकर देखा।

सोमवेल चबाने की आवाज सुनकर इन्द्र वहाँ उपस्थित हुए और

अपाला से सोम मांगा। अपाला ने इन्द्र को सोम दिया। अतः इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसको रथ के आरे में से तीन बार निकलने के लिए कहां और उसकी रोगिष्ट त्वचा दूर करके रोग मुक्त किया।[21] परिणामस्वरूप उसको उसका दाम्पत्य जीवन पुनः प्राप्त हुआ।

अपाला को (8:92:1.7) मंत्र की ऋषिका माना जाता हैं। जिसके देवता इन्द्र है। इस सूक्त में अपाला के चरित्र-वर्णन के साथ शरीर दोषों को दूर करने के लिए यज्ञ और सोमप्रयोग का वर्णन आता है। धानयुक्त सक्तुमयी और पूरोडाशयुक्त सोमसामग्री का वर्णन है। यदि कोई कन्या किसी रोग के कारण निर्बल तथा निस्तेज होती है तो उसे विवाह के पूर्व सोमलता आदि रोगनाशक और पुष्टिकारक औषधियों के रस का सेवन करके प्रथम अपने आप को समर्थ बनाना चाहिए। ऐसा होने के बाद ही कन्या पति के स्वीकार के योग्य बनती है। सोमलता मुख में चबाना होता है। सोमलता में पौष्टिक तथा दिव्य गुणवाले पदार्थों का मिश्रण है। सोमलता प्राणशक्ति के दाता है। सोम वैदिककाल से प्रसिद्ध है, जो औषधिराज कहलाता है।[22] चरक संहिता में दिव्यौषधि में सोम का वर्णन दिया गया है।[23] चरक संहिता में कौन-से कारणों की वजह से कुष्ठरोग होता है वो बताया गया है। दूध, दही, परस्पर विरुद्ध आहार से, पतले, चीकने और भारी पदार्थ खाने से, मल-मूत्र के रोकने से, ज्यादा खाकर दण्ड इत्यादि करने से, ज्यादा खाकर धूम्र और अग्नि के पास रहने से, पसीने में तुरन्त नाहकर, ज़्यादा ठंडा पानी पीने से, ज्यादा मेहनत करके तुरन्त नहाने से, अजीर्ण में खाने से कुष्ठरोग होता है।[24]

चरक संहिता के सातवें अध्याय में कुष्ठरोग दूर करने के लिए विविध प्रकार के लेप, तेल और घी का निर्देश किया गया है।[25] सुश्रुतसंहिता में भी नव-दश अध्याय में कुष्ठरोग से दूर करने के उपाय दिए गए हैं। जिसमें सुरा, अवलेह, पूर्णक्रिया, अयस्कृति, खदिर विधान, अमृतवल्ली रसका समावेश होता है।[26]ऐसे यहां इस सूक्त में

कैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिए और रोगिष्ट कन्याएं देवताओं को प्रसन्न करके अपना रोग दूर करती थी वो देखने को मिलता है। ऋग्वेद्कालीन समाज का स्पष्ट प्रतिबिम्ब यहां मिलता है।

ऐसे यहां ऋग्वेद्कालीन अगस्त्यस्वसा, अदिति, अपाला ऋषिका के बारे में और जिस मन्त्र की वो दृष्ट्री रही है वो सूक्तो की विस्तृतरुप से चर्चा की गई है।

पादनोध

1. ऋग्वेद संहिता.सा.vol-4-page-470
   Vedic Index-MCdonell & Keith, vol-1,P.46,47
2. ऋग्वेद- 10/57/1
3. ऋग्वेद- 10/58/1
4. ऋग्वेद- 10/59/7
   The Hymn of the Rugveda-Griffith-vol-2,page-462
5. ऋग्वेद- 10/60/6
6. ऋग्वेद- 3/53, 7/18,33,82
7. ”श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।“
   “श्रीमद्भागवतमहात्म्ये अध्याय-5-पृ.39-42, गीताप्रेस।
8. ऋग्वेद- 8/4/79
9. ऋग्वेद- 2/27/7
10. वा.सं. 29/60, तै.सं. 7/5/18
11. ऋ. 1/72/9 अथर्व- 13/1/38
12. ऋ. 10/63/10
13. ऋ. 7/82/10
14. ऋ. 1/15/3, 8/10/15, 10/11/1
15. म.अनु.-93
16. नैषधचरित- 14-51

17. विवाहे$प्युत्सवे स्त्रीणां धवलादिमंगलगीतिविशेषो गौडदेशे उलूलु: उध्यते।– नैषधचरित 14-51 श्रीमन्नारायणरचितया नैषधीयप्रकाशाख्यया व्याख्या समुल्लसितम्। महामहोपाध्याय दाधीचपण्डित शिवदत्तशर्मणा टीकान्तरीयटिप्पण्योपस्कृत्य संशोधितम्। पृ,310
18. પુરાણ-વિમર્શ આચાર્ય બલદેવ ઉપાધ્યાય-પૃ.274
19. उत्तररामचरितम्-भवभूति-Edited by J. M. Ashat अंक-2
20. प्रथमे$हनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
    तृतीये रजनी प्रोक्ता चतुर्थे$हनि शुध्यति॥
    अंगिरास्मृति- श्लोक-नं-38, धर्मशास्त्रसंग्रह- पृ.216
21. ऋग्वेद्संहिता-8/91 सा.भा.पृ.903
22. द्रव्यगणु विग्यान (બૃહત્રયીના દ્રવ્યો)-પાંચમો ભાગ,आचार्य प्रियव्रत शर्मा-पृ. 295
23. सोमो नामौषाधिराज: पंचदशपर्वा स सोम इव हीयते वर्धते च। ચરકસંહિતા-ચિ. 1/4/7- પૃ.378
24. ચરકસંહિતા-અધ્યાય-7
25. ચરકસંહિતા-અધ્યાય-7, ત્રીજો ખંડ,પૃ. 450
26. સુશ્રુતસંહિતા-અધ્યાય-9,10

सन्दर्भ ग्रन्था:

१) आधुनिक संस्कृत महिला नाटककार
डॉ. मीरां द्विवेदी
प्रकाशन –परिमल पब्लिकेशन्स
आ-१ ,१९९६ ,दिल्ही

२) मधुराम्लम
डॉ. विणापाणी पाटनी
प्रकाशक –नाग पब्लिशर्स, दिल्ही
आ-१ ; १९८६

३) Sanskrit Drama
Author-A.B.Keith

Publication –Oxford University Press, 1959

4) Histrory of Classical Sanskrit Literature
Author –M.Krishnamachariar
Publication –Motilal Banarasidas,Delhi
Edition -1, 1982

5) Sanskrit Drama of the Twentieth Century
Author –Usha Satyavrat
Pub- Sole Distribution: Meharchand Lachhmandas
Edi-1, 1971

6) संस्कृत साहित्य का इतिहास
लेखक- श्री.बलदेव उपाध्याय
प्रकाशन- शारदा प्रकाशन ,वाराणसी
आ-१,१९६५

वैदिक साहित्य में स्त्रियों की परिस्थिति

Kapil Kumar Sharma,
Research Scholar,
Sanskrit Department,
Himachal Pradesh University, Shimla-171005
Correspondence Address- Kapil Shastri,
Vill. Bharyal, PO. Badehari, Teh. & Distt., Shimla(H.P.)-171011
Email- kapilkumarsharma9@gmail.com
Mob- 9418588788

भूमिका

संस्कृत साहित्य विश्व का सबसे प्राचीन साहित्य है। संस्कृत साहित्य को दो भागों में विभक्त किया गया है- वैदिक साहित्य तथा लौकिक साहित्य। वैदिककालीन साहित्य को वैदिक तथा वेदोत्तर काल के साहित्य को लौकिक साहित्य की श्रेणी में रखा गया है। सबसे पहले तो प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि साहित्य है क्या अथवा साहित्य से क्या तात्पर्य है? सहित के साथ 'ष्यञ्' प्रत्यय करने से साहित्य शब्द सिद्ध होता है।[1] जिसका अर्थ है साहचर्य तथा सहयोगिता आदि। शास्त्रों में कहा गया है कि **"हितेन सहितम् साहित्यम्"** अर्थात् साहित्य का मूल तत्त्व सब का हित साधना है। मानव अपने मन के भावों को जब लिखित रूप में निबद्ध करता है तो वह रचनात्मक कृति साहित्य कहलाती है।

---

1. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ० 1104

सारांश

मेरे शोध पत्र का शीर्षक **"वैदिक साहित्य में स्त्रियों की परिस्थिति"** है। 'परिस्थिति' शब्द 'परि' उपसर्ग पूर्वक 'स्था' धातु से 'क्तिन्' प्रत्यय करने पर बनता है। वेदों में स्त्रियों का विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है। वेदों में स्त्रियों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। उस समय स्त्रियों का स्थान काफी ऊँचा माना जाता था- **विसृनृता ददृशेदीयते घृतम्**। अर्थात् जहाँ घृत बहता है वहाँ प्रसन्नतचित्त कुमारी देखी जाती है। स्त्रियाँ धार्मिक क्रियाकलापों में संलग्न रहती थीं। उन्हें ऋषियों के समान पद प्राप्त था, जिससे उन्हें ऋषिकाएँ कहा जाता था। वे पुरुषों के समकक्ष शास्त्रार्थ में भाग ग्रहण करती थीं। वेदों में कन्या प्राप्ति के मन्त्रों के मिलने से यह सिद्ध होता है कि पुरुष के सदृश स्त्रियों का भी समान अधिकार था-

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट।।[1]

पुत्रीणा ता कुमारिणा विश्वमायुर्व्यश्नुतः।।[2]

साहित्य में स्त्रियों की परिस्थिति से सम्बन्धित अनेक शब्द प्रयोग किये जाते हैं। जैसेः- स्त्रीविमर्श, नारीवाद एवं मातृसत्तात्मक आदि। स्त्रीविमर्श को अंग्रजी में फेमिनिज्म(Feminism) कहा जाता है। वैदिक काल में स्त्रियों की परिस्थिति बहुत सुदृढ़ थी। स्त्रियों की परिस्थिति का बोध अधोलिखित बिन्दुओं से ज्ञात होता है-

वैदिक स्त्रियाँ

वेदों में स्त्री के लिए बहुत स्थानों पर **पुरंधिः** शब्द का प्रयोग हुआ है- **पुरं नगरं दधातीति पुरंधिः**।[3] अर्थात् जो नगर की रक्षा और

---

1. ऋग्वेद, 10.159.3
2. ऋग्वेद, 8.31.8
3. वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, पृ० 203

पोषण करे। वेदों में विभिन्न स्त्रियों का उल्लेख कन्या, माता, पत्नी, देवी, आराध्या आदि के रूप में किया गया है। ऋग्वेद में इडा, सरस्वती तथा मही आदि का नामोल्लेख सहित वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के तीन सूक्तों में विविध रूपों में सरस्वती की स्तुति की गयी है। सरस्वती को विदुषी नारी कहा गया है। ऋग्वेद में अदिति, उषा, अम्बिका तथा श्रद्धा आदि स्त्रियों का वर्णन प्राप्त होता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में उर्वशी, शकुन्तला, वाणी, सुकन्या आदि स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है।[1] इसी प्रकार उपनिषदों में रोमशा, अपाला, विश्ववारा, सिकता, निबावरी, लोपामुद्रा तथा घेषाकाक्षीवती आदि विदुषी स्त्रियों का उल्लेख प्राप्त होता है।

स्त्रियों का गौरव

वैदिक साहित्य में स्त्री का गौरव उत्कृष्ट रहा है। वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य तक साहित्यकारों ने स्त्रियों की परिस्थितियों पर दृष्टि रखते हुए, उनका उल्लेख किया है। विश्व के सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'ऋग्वेद' से ही साहित्य आरम्भ होता है। वैदिक काल में स्त्री का स्थान प्रतिष्ठित एवं पूजास्पद था। स्त्रियाँ महापण्डितों की श्रेणी में आती थीं।[2] ऋग्वेद में तो एक मन्त्र में अपनी सन्तान को शिक्षा देने के कारण स्त्री को ज्ञान के 'देवता ब्रह्म' की संज्ञा दी गयी है-

अधः पश्यस्व मोपरि, संतरां पादकौ हर।

मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।[3]

पति-पत्नी दोनों ही दम्पती(दम्+पत्ती) एवं घर के स्वामी कहे गए हैं। वैदिक स्त्री को विदुषी, देवी, प्रकाशवती, दुहिता, कन्या,

1. वैदिक संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृ० 116
2. वेदों में लोक कल्याण, पृ० 168
3. ऋग्वेद 8.33.19

पत्नी, जननी, उपदेशिका तथा अध्यापिका आदि कहा गया है।[1] वसिष्ठ धर्मसूत्र के अनुसार स्त्री की महता का उदाहरण प्रस्तुत है-

उपाध्यायाद् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता।

पितुर्दशशतं माता गौरवेणतिरिच्यते।।[2]

अर्थात् आचार्य उपाध्याय से दशगुणा बड़ा होता है, पिता आचार्य से सौ गुणा महान् होता है, माता पिता से एक हज़ार गुणा बड़ी होती है।[3] तैत्तिरीय ब्राह्मण के अनुसार पत्नी को श्री अर्थात् गृहलक्ष्मी कहा गया है।[4] स्त्री को सास-ससुर की सेवा करते हुए सम्राज्ञी की संज्ञा दी जाती थी-

सम्राज्ञी श्वशुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।

नानान्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी अधि देवृषु।।[5]

स्त्रियों को यज्ञाधिकार

वैदिक काल में स्त्री-पुरुष दोनों समकक्ष थे। इसी कारण पति के सदृश पत्नी को भी यज्ञ करने का अधिकार था। पति के साथ पत्नी के यज्ञ में बैठने के प्रमाण अनेक मन्त्रों में प्राप्त होते हैं।[6] पति-पत्नी मिलकर समान मन तथा ईश्वरोपासना से पवित्र होकर यज्ञ करने के पश्चात् यश, धन, पुत्र तथा अन्नादि की प्राप्ति करते हैं-

---

1. वैदिक अनुशीलन, पृ० 118
2. वसिष्ठ धर्मसूत्र, 13.48
3. वैदिक चिन्तन, पृ० 207
4. तैत्तिरीय ब्राह्मण, 3.9.4.7
5. ऋग्वेद 10.85.46
6. ऋग्वेद 1.14.7, 1.28.3, 1.57.3, 1.72.5, 5.3.2, 5.43.15

या दम्पती समनसा सुनुत आ च धावतः।

देवासो नित्यया शिरा।[1]

ऋग्वेद के अनुसार विदुषी स्त्री अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्म से यज्ञ को धारण एवं सञ्चालित करती है। एक ऋचा के अनुसार वर्णन प्राप्त होता है कि इडा, सरस्वती एवं मही देवियाँ यज्ञ में स्थान ग्रहण करें। मही को कहीं-कहीं ऋग्वेद में भारती नाम से भी पुकारा गया है। भारती को ही बुद्धि एवं महान कहा है। ये तीनों देवियाँ दिव्य हैं। आवश्यक योग्यता होने पर स्त्रियों को राजा भी चुना जा सकता था।[2] बृहदारण्यकोपनिषद् के अनुसार माता-पिता अपनी पुत्रियों को विदुषी एवं ब्रह्मवादिनी बनाने की प्रार्थना करते थे-

अथ य इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत सर्व मायुरियादिति।

तिलोदानं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तम् अश्नयाताम् इश्वरो जनयितवै।।[3]

स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार

वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। महर्षि दयानन्द कहते हैं कि कुमारी कन्याओं को ब्रह्मचर्याश्रम में गृहस्थाश्रम एवं धर्म की शिक्षा दी जाती थी। गुरुकुल में रहकर उन्हें वेदादि के अध्ययन के पश्चात् ही विवाह का अधिकार प्राप्त था। शिक्षित स्त्री-पुरुष ही विवाह के लिए योग्य समझे जाते थे।[4] वैदिक स्त्रियों को सैन्य शिक्षा भी दी जाती थी। कई स्थानों पर उल्लेख प्राप्त होता है कि स्त्रियों की सेना को आगे कर देने से विपक्षी सेना उन पर

---

1. ऋग्वेद 8.31.5
2. वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त, पृ० 205
3. बृहदारण्यकोपनिषद् 6.4.17
4. निगमालोक, पृ० 64

अस्त्र आदि चलाना बन्द कर देते थे।[1] पुरुषों के साथ स्त्रियों के युद्ध में जाने के अनेक प्रमाण वेदों में प्राप्त होते हैं-

स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे।[2]

अवीरामिव मामयं शरारुरभि मन्यते। उतामस्मि वीरणीन्द्रपत्नी।[3]

संहोत्रं स्म पुरा नारी समनं वाव गच्छति।[4]

स्त्रियों को संगीत का अधिकार

ऋग्वेद में कहा गया है कि सुशिक्षित गृहिणी के गृह से संगीत की ध्वनि श्रवण में आती है, अर्थात् वैदिक काल में स्त्री को शिक्षा के साथ-साथ नृत्य तथा संगीत आदि का भी अधिकार था।[5] स्त्री को विदुषी होने के साथ-साथ संगीत में भी निपुण होने पर उच्च पद प्राप्त होता था। ऋग्वेद में कहा गया है कि संगीत की ध्वनि सुनायी देने से ही गृह सुन्दर होता है।

स्त्रियों को दान देने का अधिकार

वैदिक साहित्य में स्त्रियों के गुणों का भी उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक काल में स्त्रियों को दान-दक्षिणा आदि कार्यों में नियुक्त किया जाता था। स्त्री को दान एवं दक्षिणा देने का अधिकार था तथा यह स्त्रियों का एक विशेष गुण है-

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी। अदेवत्रादराधसः।

---

1. वेदों में लोक कल्याण, पृ० 170
2. ऋग्वेद 5.30.9
3. अथर्ववेद 20.126.9
4. अथर्ववेद 20.126.10
5. वेदों में लोक कल्याण, पृ० 169

वि या जानाति जसुरिं वि तृष्यन्तं वि कामिनम्।[1]

स्त्रियों को समता का अधिकार

स्त्रियाँ घर के साथ-साथ सभा एवं समिति की सदस्य भी चुनी जा सकती थीं। सामवेद में स्त्रियों को शुद्ध, पवित्र एवं यज्ञिय की संज्ञा दी गयी है। नववधू को पति के घर में जाकर अग्निहोत्र का धर्म निभाना पड़ता था। वैदिक काल में यज्ञ तथा शिक्षा आदि के सदृश पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को सोमपान का भी अधिकार था-

अग्ने पत्नीरिहावह देवानां सोमपीतये।[2]

कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार कन्या द्वारा **'त्रयम्बकं यजामहे'** मन्त्र से भगवान् का स्मरण किया जाता है तथा उससे ही यज्ञ करने का विधान है।[3] स्त्रियाँ नगरों के प्रबन्ध में भी भाग ले सकती थीं। उपनिषद् काल में स्त्रियों को सम्पत्ति का भी अधिकार था।[4] स्त्री राजसभा में न्यायाधिष्ठात्री बनकर न्याय भी करती थी। उसके अध्यापिका अथवा उपदेशिका होने का संकेत भी प्राप्त होता है- **चोदयन्ती सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्।**[5] जिस प्रकार पुरुषों को योग्य कन्या के चयन का अधिकार था, उसी प्रकार कन्या को भी अपनी रुचि के अनुसार योग्य वर को चुनने का अधिकार था-

कियति योषा मर्यतो वधूयो परिप्रीता पन्यसा वार्येण।

भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।।[6]

---

1. ऋग्वेद 5.61.6, 5.61.7
2. यजुर्वेद 26.20
3. कात्यायन श्रौ० सू० 5.10.16
4. निगमालोक, पृ० 67
5. ऋग्वेद 1.3.11
6. ऋग्वेद 10.27.12

महर्षि दयानन्द ने अपने भाष्य में अनेक स्थानों पर स्त्री एवं पुरुष के स्वेच्छा स्वयंवर के द्वारा जीवनसाथी चुनने का वर्णन किया है।[1] इन्द्राणी के सेनापती का कार्यभार सम्भालने से स्त्रियों के सेनापती होने का प्रमाण भी प्राप्त होता है-

इन्द्राणी वै सेवायै देवता। सैवान्य सेनां सं श्यति।।[2]

विधवा को विवाह का अधिकार

महर्षि यास्क के अनुसार पति के मरणोपरान्त विधवा स्त्री को पुनर्विवाह का अधिकार प्राप्त था- **विधवेव देवरं देवरः तस्माद्द्वितीयो वर उच्यते**।[3] शतपथ ब्राह्मण के अनुसार पत्नी के बिना पति का जीवन अपूर्ण है।[4]

निष्कर्ष

प्रस्तुत शोध-पत्र **"वैदिक साहित्य में स्त्रियों की परिस्थिति"** से सिद्ध होता है कि वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति बड़ी उदात्त थी। स्त्रियों को पुरुष के समान समता का अधिकार था। स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। शिक्षा के साथ-साथ स्त्रियों को संगीत एवं नृत्यकला का भी पुरुष के समान अधिकार था। दान एवं दक्षिणा का दिव्य गुण भी स्त्रियों में विशेष रूप से बताया गया है। स्त्रियां को नेता एवं सेनापती भी बनाया जाता था। वैदिक काल में स्त्रियों को यज्ञ का भी अधिकार था। वह पति के साथ बैठकर यज्ञ में भाग लेती थीं। स्त्रियों को स्वयं वर को वरण करने का अधिकार था।

---

1. (क) ऋ० भा० 1.22.11, 1.30.13, 1.167.3, 6.64.6, तथा
   (ख) यजु० भा० 8.9, 34.10
2. तैत्तिरीय संहिता 2.2.8.1
3. निरुक्त 3.15
4. शतपथ ब्राह्मण 5.2.1.11

अतः उपरोक्त वर्णन से वैदिक साहित्य में स्त्रियों की परिस्थिति स्पष्ट होती है। अर्थात् वैदिक काल में स्त्रियों की परिस्थिति बहुत ही गौरवपूर्ण थी।

संदर्भ ग्रन्थ-सूची

- **अथर्ववेद संहिता :** सम्पादक : श्री माधवाचार्य शास्त्री, प्रकाशक : रेखांकित प्रकाशन, ब्रह्मपुरी, दिल्ली, संस्करण :1995
- **ऋग्वेद संहिता** : सम्पादक : डॉ० जियालाल, प्रकाशक : विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, संस्करण : 2005
- **कात्यायन श्रौ० सू०** : सम्पादक : श्री जोखीराम-मटरूमल्लगोयनका, प्रकाशक : अच्युतग्रन्थमाला-कार्यालय, काशी, संस्करण : 1987
- **तैत्तिरीय-संहिता** : सम्पादक : अनन्तशास्त्री, प्रकाशक : श्री दामोदर सातवलेकर, युधिष्ठिर मीमांसक, बहालगढ़, सोनीपत-हरियाणा, संस्करण : 1982
- **निगमालोक** : लेखक : डॉ० राजेश्वर प्रसाद मिश्र, प्रकाशक : अक्षयवट प्रकाशन
- **निरुक्त पञ्चाध्यायी** : व्याख्याकार : श्रीपण्डितछज्जूराम शास्त्री, प्रकाशक : मेहरचन्द लछमनदास पब्लिकेशन्स्, दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण : 2006
- **बृहदारण्यकोपनिषद्** : सम्पादक : श्रीनित्यानन्दाश्रम, प्रकाशक : सुन्दरलाल जैन, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, संस्करण : 1966
- **यजुर्वेद भाष्य** : लेखक : महर्षिदयानन्द सरस्वती, सम्पादक : पं० ब्रह्मदत्त जिज्ञासु प्रकाशक : मन्त्री रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृत्सर
- **वसिष्ठ धर्मसूत्र** : सम्पादक : डॉ० नवनीता शर्मा, प्रकाशक : पुन्ठि पुस्तक प्रकाशन, कोलकाता, संस्करण : 1983
- **वेदों के राजनीतिक सिद्धान्त** : लेखक : आचार्य प्रियव्रत वेदवाचस्पति, प्रकाशक : मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, संस्करण : 1983
- **वेदों में लोक कल्याण** : लेखक : डॉ० कपिलदेव द्विवेदी, प्रकाशक :

विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, ज्ञानपुर, उत्तरप्रदेश, संस्करण : 2021

- **वैदिक चिन्तन :** सम्पादक : डॉ० रघुवीर वेदालंकार, प्रकाशक : प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, दिल्ली
- **वैदिक संस्कृत साहित्य का इतिहास :** लेखक : डॉ० राकेश मणि त्रिपाठी, प्रकाशक : साहित्यागार
- **शतपथ ब्राह्मण :** सम्पादक : पं० गंगाप्रसाद उपाध्याय, प्रकाशक : राम स्वरूप शर्मा, प्राचीन शोध संस्थान विज्ञान शिक्षा, नव देहली, संस्करण : 1970
- **संस्कृत हिन्दी कोश :** लेखक : वामन शिवराम आप्टे, प्रकाशक : नरेन्द्र प्रकाश जैन, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1993

संस्कृत वाग्गेयकारिणां परिचयः तासां योगदानञ्च

रा राजलक्ष्मी
शोधच्छात्रा
मद्रपुरी संस्कृत कलाशाला

<u>उपोद्घातः</u>

सामवेदस्य उपवेदः अस्ति गान्धर्ववेदः। अयमेव सङ्गीतमित्यभिधीयते। संकृते विद्यमानविविधशास्त्रेषु सङ्गीतशास्त्रस्य प्रमुखस्थानं भवति। सङ्गीतस्य साहित्यस्य च गाढबन्धः अस्ति। ऋग्यजुस्सामाथर्वादिचतुर्वेदेषु,, रामायणमहाभारतेतिहासयोः, अष्टादशपुराणोपपुराणेषु, काव्येषु विशेषतः नाटकादिरूपकेषु च सङ्गीतविषयाः, गानस्य प्रयोगोपयोगाः, ससुस्वरयुक्तमन्त्राणि, रागसहितगीतानि, सतालभूतश्लोकानि इत्यादयः च बहुधा दृश्यन्ते। यथा स्तोत्राणि स्तोत्रसाहित्यविभागे भवन्ति तथैव सङ्गीतकृत्यः गीतिकाव्यविभागे भवन्ति। गीतिछन्दस् इत्येकवृत्तिः पुरा गीतिरचनार्थं उपयुक्ताः आसन्निति साहित्यकाराणां सङ्गीतलाक्षणिकानाञ्चोक्तिः अस्ति। अत एव सङ्गीतसाहित्यं संस्कृतसाहित्यान्तर्गत शाखा एव भवति। एवं सङ्गीतक्षेत्रेऽपि संस्कृतसाहित्यस्य स्थानं अनिवार्यः।

सङ्गीतसाहित्यरचयितारः कवयः वाग्गेयकाराः इत्युक्ताः सन्ति। अस्मिन् क्षेत्रे विविधनार्यः कवयित्र्यः अपि संस्कृतसाहित्ये स्वरचनानि कृतवन्त्यः सन्ति। पुरा कर्णाटकसङ्गीतक्षेत्रे प्रायः पुमानामाधिक्यमेवासीत्। तस्मिन्नपिकाले अनेकनार्याः गायिकाः वग्गेयकाराः च भूत्वा गानरचनकर्माणि कृतवन्त्यः एवासन्। परन्तु आधूनिककाले तु सङ्गीतक्षेत्रे महिलाः बहुधा वर्धिताः भवन्ति। सङ्गीतकवयित्र्यः याः महिलावाग्गेयकाराः संस्कृते गीतानि रचितवन्ताः

सन्ति, तासां विषये अस्मिन् शोधपत्रौ अवलोक्यते। काचनाः विविधभाषाप्रवीणाः द्वित्रिस्त्रभाषासु रचिवन्ताः। काचनाः प्रमुखतया संस्कृते एव विरचितवन्ताः सन्ति। विशेषतः आण्डवन्पिच्चै, कल्याणी वरदराजन्, वसन्ता शरवणन्, मङ्गलं गणपतिः, रुक्मिणी रमणी, वसन्तामाधुरी, एतासां परिचयः योग्दानं गीते उपयुक्तसाहित्यशैली इत्यादयश्च पत्रेऽस्मिन् विवेच्यते।

आण्डवन्पिच्चै

श्री. आण्डवन्पिच्चै १८९९ – १९९०, एका सन्ता, रचयिता च आसीत्। अस्याः गीतानि, उक्तिः, श्लोकाः च, सङ्गीतक्षेत्रे प्रसिद्धानि सन्ति। दशवर्षस्य कोमलवस्थायामेव सा भगवतः कार्तिकेयस्य स्तुतिं गायितुं आरभत । सा कदापि विद्यालयं न गता, गृहे केवलं तमिल्भाषा एव पाठिता अपि च, तस्याः ये गीतानि प्रवहन्ति स्म ते संस्कृत-तमिल-तेलुगु-कन्नड-भाषासु सन्ति।

आण्डवन्पिच्चै, अस्याः नाम मरकतवल्ली आसीत्। जन्म १८९९ तमे वर्षे सितम्बर् ६ दिनाङ्के चेन्नैनगरे अभवत् । मराकतवल्याः कोमलवयसि एव विवाहमभूत् । भर्तुः गृहे, सा सर्वाणि कार्याणि प्रयत्नपूर्वकं कृताऽपि, तस्याः अन्तःकरणे सर्वदा कार्तिकेयस्य चिन्तनमेव आसीत् । सा गृहस्थवृद्धैः आदिष्टा यत्, सर्वेषु समयेषु भगवतः स्तुतिगायनं विरमतु, यतः तत् कुटुम्बस्य अपमानं भवतीति। विना अन्यत् किमपि आनेतुं शक्नोति स्म, सा चतुर्विंशतिवर्षेभ्यः अनन्तरं भगवान् सुब्रह्मण्येण आश्वासितवती, यत् सा पुनः तस्य स्तुतिं गातुम् । सः तां 'पिच्चै' इति आह्वयत्, या तस्य प्रेम्णा उन्मत्ता अस्तीत्यर्थः । तस्याः आत्मा पुनः भगवतः विषये गातुमारभत । तस्मिन् दिने सा 'आण्डवन्पिच्चै' अभवत् । तस्याः पुत्री कामाक्षी कुप्पुस्वामी तस्याः अनेकानि गीतानि धुनिं कृत्वा बहिः आनयत् । सा २०० तः अधिकानि गीतानि रचितवती अस्ति । तेषु ५० तः

अधिकानि गीतानि संस्कृतभाषायां सन्ति । तया संस्कृते अल्पाः श्लोकाः अपि रचिताः सन्ति । तस्याः शैली सरलं किन्तु भक्तिपूर्णमस्ति। तस्याः गीतेषु एकाधिकचरणाणि भवन्ति। तस्याः रचनासु वाग्गेयकारिण्यस्याः साधुगुणान् दृश्यते, तथा च निर्मितशब्दलंकारान् अपि अनुभवितुं शक्यते।

तस्याः एकं प्रसिद्धं संस्कृतगीतं -

पल्लवि

हे कामाक्षि एकाम्रेश्वरि हेरम्ब गुह जननि अम्ब

अनुपल्लवि

मूकाश्रितपदे मुनिजन वन्दिते मूलाधार कुण्डलि मुक्तिप्रदायिनि

चरणम् १

श्री चक्र यन्त्रादि कारिणि श्री शिवे श्रीधर सोदरि श्री ललिताम्बिके

श्री वाणि श्री वीणा गानामृत रसिके श्री माता श्री राजराजेश्वरि अम्ब

चरणम् २

पञ्च दशाक्षर पञ्जर शुकि सति पञ्च प्रेतासन पञ्चादि कारिणि

पञ्च भूतेश्वरि पञ्च क्षेत्रेश्वरि पञ्चेन्द्रिय साञ्चल्य तापत्रय शमनि

चरणम् ३

चतुर्भुजालङ्कृते पाशाङ्कुशधरे चतुरानन वेद सम्स्तुते प्रियकरि

चतुरङ्ग सैन्यादि कारिणि चामुण्डे चतुर्विध फलप्रदे शारदे श्यामळे

(karnATik.com)

कल्याणी वरदराजन्

कल्याणी वरदराजन् १९२३-२००३, कर्णाटकसङ्गीतस्य विंशतिशतकस्य प्रसिद्धेषु संगीतकारेषु अन्यतमा, श्रीमान्नरसिंहचार्यरस्य श्रीमतीसिङ्गारम्मायाः पुत्री अस्ति । तस्याः पिता तेलुगुभाषायां संस्कृतभाषायां च महाविद्वान् आसीत्, सः शिक्षकः, मुख्याध्यापकः, शैक्षिकनिरीक्षकः च इति कार्यं कृतवान्, माता तु सङ्गीतकारा आसीत्। कल्याणी अल्पवयसा एव गीतलेखनस्य रचनायाः च रुचिः आसीत्, ततः प्रथमं मातुः अधीनं, अनन्तरं अन्येषु समर्थगुरुषु च स्वरस्य, वीणायाः प्रशिक्षणं च प्राप्तवती। सा वायलिन-कलाकारः अपि अस्ति । सा सर्वेषु ७२ मेलाकार्तरागेषु कर्णाटककरचनाः निर्मितवती, तदतिरिक्तं जन्यरागस्य अपि निर्मितवती । यदा वर्तमानकालस्य इव वैश्विकयात्रा विशेषतया सामान्या नासीत् तदा सा सङ्गीतप्रदर्शनार्थं अमेरिका-जापान-देशयोः भ्रमणं कृतवती अस्ति । तस्याः रचनाः सङ्गीतस्य साहित्यस्य च लक्षणपक्षेणापि समृद्धाः सन्ति ।

तस्याः एकं संस्कृतगीतं -

पल्लवि

सप्तगिरीशं सदा भजेऽहं सदामलं श्रीसखं श्रीनिवासम्

अनुपल्लवि

सप्तस्वरवेद्यं सनातनं श्यामलं शङ्खचक्राङ्कितम्

धनदमित्रं कञ्जातनेत्रं तरुणतुळसिकाधामविलसितम्

तरुचरशेखरसेवितचरणं चरणासक्तजनाघशोषणम्

चरणम्

निरुपमकरुणानीरधं वरं सुरकिन्नरभूसुरसेवितम्

परमपावनचरणाम्भोजं वरदं कल्याणीवर्णितगुणजालम्

आपन्नार्तिहरमनन्तमानन्दामृतवर्षिणम्

आदिमध्यान्तरहितमच्युतमादिशेषशायिनं मुकुन्दम्

(karnATik.com)

वसन्ता शरवणन्

वैणिकविदुषी वसन्ता शरवणन्, १९२३-२००४, चेन्नापुर्यां अभिरामपुरे निवास। सा वीणावादनस्य वीणाधनम्माल्परम्परागता आसीत्, सर्वेषु प्रमुखेषु सङ्गीतसभासु संगीतप्रदर्शनं दत्तवती अस्ति । सा १९४४ तमे वर्षात्, २००३ तम वर्षपर्यन्तं, प्रायः षड्दशकानि यावत्, आकाशवाणी-संस्थायाः आस्थानविदुषी आसीत्। अनेकेनां छात्राणां प्रशिक्षणं च कृतवती। ऋषिकेशस्य योगवेदान्तवनविश्वविद्यालयेन १९५५ तमे वर्षे 'वैनिकाज्योति' इति उपाधिना पुरस्कृता ।अनेकानि भक्तिगीतानि अपि तया रचितानि, ये तमिलभाषायां संस्कृतभाषायां च 'कीर्तन माला' इति पुस्तकरूपेण प्रकाशिताः। इदं वैणिकविदुषा बालचन्द्रमहोदयेन मद्रपुर्यां विख्याते त्यागराजविद्वत्समाजे १९८७ तमे वर्षे प्रदर्शितम् । तस्याः साहित्यं संगीतं च परस्परं प्रशंसन्ति। तस्याः वाग्गेयकारमुद्रा 'वसन्ता' इति भवति। एतस्याः रचनाः समाविष्टश्रव्ययन्त्राणि, तस्याः पुत्रीभिः श्रीमती मातङ्गी वीरबाहू एवं श्रीमती राजी रामचन्द्रन्, इत्येताभ्यां प्रदर्शितानि। अस्याः संस्कृतकृतिः दिङ्मात्रम् -

पल्लवि

भजे शारदे भजे शारदे पाहि पाहि पाहिमाम्

अनुपल्लवि

तेजोमयरूपधारिणी वाग्विलासिनी वल्लकीधारिणी

<u>*चरणम्*</u>

श्रीश्रृङ्गगिरिपुरवासिनी विद्ये श्रीशारदापीठनिलये

श्रीशङ्करार्चितपादयुगले श्रीब्रहमदेवप्रियदर्शिनी

विमले स्पटिकमणिमालापुस्तककरां चन्द्रवदनाम्

श्वेतपद्मासनास्थां सुनादविन्दिनीं वसन्तविनुताम्

(karnATik.com)

<u>**श्रीमती मङ्गलं गणपतिः**</u>

श्रीमती मङ्गलं गणपतिः १९३४ तमे वर्षे तिरुनेल्वेलीमण्डलस्य कल्लीडैकुरिच्चिनगरे अजायत। बाल्यकाले तस्याः कर्णाटकसङ्गीतशिक्षा नासीत् । तमिल्भाषा तस्याः मातृभाषा आसीत् । सा स्वपितुः भक्तिगीतानि, संस्कृतश्लोकानि च शिक्षितवती । १९५४ तमे वर्षे विवाहं कृत्वा तिरुवनन्तपुरं गत्वा तत्र प्रायः ४५ वर्षाणि यावत् स्थितवती । तत्र वाससमये सा मलयालभाषायाः ज्ञानं प्राप्नोत् । गृहकार्ये, पारिवारिकदायित्वे च तस्याः अधिकांशसमयाः व्यतीताः ।

एकदा, १९९८ तमे वर्षे अगस्तमासे मद्रपुर्यां स्वनिवासस्थाने गणपतीपूजां देवीपूजं च कर्तुं प्रवृत्ताः आसन् । सहसा सा उन्नतविचारसन्निध्यं अनुभवितुं आरब्धा तथा च तस्मिन् उदात्तभावे नाट्टैकुरिञ्जीरागे, संस्कृतभाषायां भगवतः गणेशस्य विषये 'महागणपथिम् उपस्माहे' इति गीतं रचयित्वा तदनन्तरं देवीमाश्रित्य कल्याणीयां 'अम्बकृपसागरी' इति अन्यत् गीतं च रचयति स्म। सा न जानाति कथं गीतानि समुचिततालया सह प्रस्तुतानि आसन्निति। ततः परं सा ११००० तः अधिकानि गीतानि रचितवती। तानि गीतानि संस्कृत-तमिल्-मलयाल-हिन्दी-तेलुगु इत्यादिपञ्चसु भिन्नभाषासु रचितानि। केवलं दिव्यकृपयैव सा तमिल-मलयालम्-भाषाभ्यः

अतिरिक्तेषु अन्येषु भाषासु लेखितुं समर्था अस्ति यतोहि तस्याः कदापि अन्यभाषाणां शिक्षणस्य अवसरः नासीत् । वर्णम्, कीर्थनि, रागमालिका, तिल्लाना, भक्तिभजनानि च लिखिता अस्ति । सा सर्वेषु हिन्दुदेवतासु, विशेषतया लक्ष्मणकालभैरवादिषु दुर्लभदेवतामूर्तिषु च गायितवती अस्ति। सा कतिपयानि दार्शनिकानि देशभक्तिपूर्णानि च रचनानि अपि रचितवती अस्ति । तस्याः परिवारजनाः श्रीमती मङ्गलम् गणपति ट्रस्ट् नामकं न्यासं निर्माय तस्याः रचनां लोकप्रियं कुर्वन्ति । तेषां गीतानि संकेतनसहितं मुक्तानि सन्ति। तस्याः रचनाभिः अनेके प्रख्याताः कलाकाराः सङ्गीतप्रदर्शनं कुर्वन्ति । 'संगीतमङ्गलागुरु' नाम पुरस्कारं दत्त्वा विभिन्नान् संगीताचार्यान् प्रोत्साहयन्ति ये मंगलम्महोदयायाः रचनाभिः स्वछात्रान् प्रशिक्षयन्ति। वग्गेयकारिणी इयं, २०२४ तमस्य वर्षस्य जनवरी-मासस्य १५ दिनाङ्के भगवन्तस्य चरणकमलं प्राप्तवती । तस्याः रचनासु साहित्यस्य विस्मयकारी प्रवीणता स्पष्टतया दर्शयति यत् पञ्चविभिन्नभाषासु उच्चस्तरीयैः वाग्गेयकरणं केवलं ईश्वरस्यानुग्रहेणैव साध्यमिति।

तस्याः संस्कृतकृतिः दिङ्मात्रम् -

पल्लवि

वारणासिवसितं विश्वेश्वरं वन्देऽहं वरसिद्धिप्रदायकम्

अनुपल्लवि

पूर्णानिन्दकृपाकटाक्षमन्नपूर्णासहितं भूतगणनाथम्

चरणम्

जन्ममृत्युभयनाशकारणं जन्मजन्मान्तरपापविमोचितम्

कालभैरवताण्डवदिव्यरूपं कालकूटविषकण्ठविभूषितम्

प्रदोशकालेभक्तजनसेवितं प्रपञ्चरूपं पावनचरितम्

भक्ताभीष्टफलवरप्रदं परात्परं मङ्गलमहेश्वरम्

(Mangala Geetham part 5 – Smt. Mangalam Ganapati Music Trust, 2005, Pg. 122)

डॉ.रुक्मिणी रमणी

डॉ.रुक्मिणी रमणी, बहुक्षेत्रप्रतिभाशालीनी, सङ्गीतकारा – कर्णाटकसङ्गीतस्य २००० तः अधिकानां रचनानां रचयिता, गीतकारा, प्रदर्शनकलाकारा, प्रसिद्धा सङ्गीतशिक्षका, अनेकछात्राणां प्रशिक्षणं प्रदातुं सङ्गीतविद्यालयानाम् संस्थापका, सङ्गीतपुस्तकानां प्रकाशिका, गायनसमूहस्य संचालका, शोधप्रबन्धं साधयन्तानां विविधछात्राणां मार्गदर्शिका भवति। रचयितारूपेण डॉ. रुक्मिणी रमणी स्वस्य यशस्वी पितुः पौराणिकसङ्गीतकारस्य श्रीपापनासम् शिवस्य पदचिह्नानि अनुसृत्य गच्छति। सा स्वस्य अद्वितीयमार्गं उत्कीर्णं कृतवती, तमिल-संस्कृतयोः रचनानां समृद्धं संग्रहं निर्मितवती यत् अधुना कर्णाटक-सङ्गीतकारैः प्रमुखैः सङ्गीतसमारोहेषु प्रदर्श्यते।

गीतकारत्वेन डॉ. रुक्मिणी रमणी गीतलेखनस्य क्षेत्रे स्वस्य असाधारणप्रतिभां सृजनशीलतां च प्रदर्शितवती अस्ति । एकः उल्लेखनीयः यत् अत्यन्तं लोकप्रसिद्धस्य श्रीरामानन्दसागरस्य “रामायणम्” इत्यस्य तमिल्संस्करणस्य सर्वेषां गीतानां गीतकारत्वेन तस्याः योगदानम् अस्ति । मूलतः सन् टीवी-इत्यत्र ततः जया टीवी, विजय् टीवी-प्रसरितं महाभारतम्-इत्येतत् महाकाव्यं कालातीत-कथाकथनेन प्रेक्षकान् आकृष्टवान् । प्रमुखनर्तकानां नृत्यनाटकेषु च तस्याः गीतात्मकं योगदानं अधिकतया भवति। एतेषां प्रदर्शनानां कथाकथनपक्षं वर्धयति, सङ्गीतस्य, नृत्यस्य, भावात्मकव्यञ्जनस्य च संलयनं निर्माति । बहुमुखी कौशलेन सा विस्तृतविषयेषु गीतानि शिल्पं करोति, येन नर्तकाः स्वस्य ललितगतिभिः आख्यानानि

प्रकटयितुं, भावानाम् उद्दीपनं च कर्तुं शक्नुवन्ति।

डॉ.रुक्मिणी रमणी विभिन्नदेवताविषये, देशभक्तिप्रकृत्यादिविषयाणाञ्च रचितवती अस्ति। तस्याः रचनासु गीतम्, स्वराजतिः, जतिस्वरं, वर्णम् –तानवर्णम्, पदवर्णम्, नवरागवर्णम्, तिल्लानानि च सन्ति । तस्याः केचन उल्लेखनीयाः रचनाः श्रीकपलीश्वरपञ्चरत्नम्, तिरुवारूर् (कमलालयक्षेत्र)पञ्चरत्नम्, श्रीमहापेरियावा (पूज्यशश्री श्री श्री चन्द्रशेखरसरस्वतीस्वामिनः) पञ्चरत्नम्, १२ द्वादशज्योथिर्लिङ्गकृतयः, १०८ दिव्यक्षेत्रकीर्तनानि, पञ्चभूमिस्थलकृतयः, सप्तविटङ्ककृतयः, अष्टवीरट्टानेश्वरकृतयः, ५१ शक्तिपीठकृतयः इत्यादयः तस्याः सङ्गीतस्य नैपुण्यं, तमिल् संस्कृतभाषायोः पाण्डित्यं, आध्यात्मिकविषयाः च दर्शयन्ति ।

तस्याः संस्कृत कृतिः -

पल्लवि

बालगणपति पाहिमां परम्श्वर-ईश्वरिप्रियकर श्रीकर

अनुपल्लवि

शीलगुरुगुहसहोदर करुणालवाल सकलाकर्षण

चरणम्

मोदकप्रियकर मूषिकवाहन बाधकनाशन पापविमोचन

शीतकलभकस्तूरितिलक पीताम्बरयुत भवभयहरणा

(karnATik.com)

टी एस वसन्त माधवी

सङ्गीतवाग्गेयभूषणी टी एस वसन्त माधवी, बेङ्गलूरुनगरनिवासीनी अस्ति। सा आकाशवाणी तथा दूरदर्शनयोः

अनुमोदिता सङ्गीतकारा अस्ति । सा रेडियो-कृते राष्ट्रियमहत्त्वयुक्तानां कार्यक्रमानाम् निर्देशनं कृतवती । अनया त्यागराजस्य मुत्तुस्वामी दीक्षितस्य च कृतिषु अनेकाः कार्यशालाः, प्रदर्शनानि च कृतानि सन्ति । तस्याः कृति-अनुवादः अनेकेषु दक्षिणभारतीयभाषासु सुप्रशंसितः अस्ति । सा पत्रिकासु, सङ्गीतस्य विभिन्नपक्षेषु प्रकाशने सक्रिययोगदात्री अस्ति । एषा सङ्गीतपरीक्षकरूपेण कार्यं करोति, तेषां कृते अनेकानि पुस्तकानि अपि रचयति । इयं "रागश्री सङ्गीतमहाविद्यालयस्य" संस्थापकः प्राचार्यश्च अस्ति ।

सा महासंस्कृतविद्वाम्सिनी, भरतनाट्यस्य कृते अनेकानि वर्णानि नवसन्धीकृतानि च रचितवती अस्ति । तस्याः सर्वाणि कृतयः संस्कृते सन्ति। तेलुगुभाषायां कन्नडभाषायां च वर्णानि तिल्लनानि च। सा २० तः अधिकाः समूहकृतयः रचितवत्यस्ति। येषु षोडशगणपतिकृतयः, नवग्रहकृतयः, अष्टादिक्पालकृतयः च सन्ति । अष्टादिक्पालकृतयः अतीव दुर्लभाः रचनासमूहाः सन्ति । येषां रचना संङ्गीत-इतिहासस्य प्रथमवारं कृता अस्ति । विभिन्नेषु विभक्तिषु स्थापिताः एताः कृतयः वैदिकवर्णनानां अन्वेषणं ददति, विद्भिः उत्तमरचनारूपेण प्रशंसिताः च सन्ति । तस्याः रचनाः ऐतिहासिकपौराणिककथाभिः, साहित्यस्यशास्त्रैः च परिपूर्णाः सन्ति । अत्यन्तं दुर्लभेषु रागेषु ९ कृतीनां समुच्छयः अपि तया रचितः अस्ति – “श्री वेंकटेश्वर नवरत्नमालिका” इति । तथैव सप्तऋषिणां अगस्त्यानां च प्रशंसायां नवीनतमः कृतिसमूहः सङ्गीतजगति योगदानं दत्तः अस्ति । तस्याः साहित्यं नानाचमत्कारशब्दसंयुक्तैः शब्दालङ्करगुणैः च नारिकेलशैलीवदस्ति। तस्याः कृतिः - अस्यां आदिप्रजापतिविषये स्तुतमस्ति। उग्ररथशान्तिः भीमरथशान्तिः सहस्रचन्द्रदर्शनशान्तिः - एतान्यपि वर्ण्यते। सामान्यतया एतानि विषयाणि उद्धृत्य कृतिरचना दुर्लभमस्ति। अतः अस्याः वाग्गेयकारिण्याः रचना विशिष्यते।

पल्लवि

वन्देऽहम् आदिप्रजापतिं सृष्ट्यादि सत्कर्मरतम्

अनुपल्लवि

संवत्सर-अयनद्वय-षड्तु-मास-पक्ष-वासर-तिथि-तारा-योगादि-कर्णसंयुक्तदेवं भवहरणं परतत्वम्

चरणम्

दशशतहरिणाङ्कदर्शनशान्त्यर्थे सर्वत्रव्यापिनं विष्णुं प्रधानं रविशशिप्रत्यधिपम्

ध्यायेज्जपहोमादिपूर्वकं दाराद्वितीयं यजमानं प्रपौत्रदर्शनेन प्रीतं स्वर्णपद्मापुष्पैः अभिषिञ्चयेत्

(karnATik.com)

उपसंहारः

एवं त्यागराज-मुत्तुस्वामिदीक्षित-श्यामाशास्त्र्यादिसङ्गीतत्रिमूर्तयः स्वातितिरुनाल् पट्टं सुब्रह्मण्य ऐयर् मैसूरुवासुदेवाचार्य लाल्गुडिजयरामन् पापनासं शिवः हरिकेशनल्लूर् मुत्तैया भागवतः इत्यादयः विविधवाग्गेयकाराः कर्णाटकसङ्गीतक्षेत्रे आसन्नपि नारीजनाः वाग्गेयकारिण्यः तासां कुटुम्बानुयोगाधीनतामारन्नपि सङ्गीतक्षेत्रे स्वयोगनां बहुधा कृताः आसन्। आधूनिकसमाजे तु तासां अङ्गीकारः वर्धते नारीणां योगदानं च अत्यावश्यकं भवति।

उपकृतान्तर्जालग्रन्थसूची

1. karnATik.com
2. Mangala Geetham, Part 5 – Smt. Mangalam Ganapati Music Trust, 2005
3. Andavanpichai.com
4. Rukminiramani.com

5. Nama.co.in
6. Vasanthamadhavi.tripod.com
7. Kutcheribuzz.com – Vainika Vasantha Saravanan passes away, By Kutcheribuzz staff / Madras, Jan 23, 2004
8. Smt. Kalyani Varadarajan – Outstanding Carnatic Music Women Composer of the Century, Authored by Dr. Saroja Raman, March 20, 2016

संस्कृत साहित्य में नारी का स्थान

डॉ. गौरी चावला
सहायक प्रोफैसर,संस्कृत विभाग
बी बी के डी ए वी कॉलेज फॉर विमेन
अमृतसर
Email : chawla200848@gmail.com
Ph. No 94635-16400.

नारी का विषय आते ही सर्वप्रथम महर्षि मनु के शब्द याद आते है - **'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते, रमन्ते तत्र देवता'** कहकर नारी को देवी के समाज पूज्य होने का सम्मान दिया गया है।[1] वैदिक वाड्.मय में नारी की महत्ता और विशेषाधिकार सम्बन्धी अनेक उनकी ऋचाओं, उद्गीतों, मंत्रों में दीख पड़ते हैं। जो विश्व सभ्यता में प्रथम जागरण का प्रमाण है। ऋग्वेद के मंत्रों में प्राकृतिक देवियों का वर्णन है।

नृ धातु से अन्+ङीन् प्रत्यय के योग से नारी पद व्युत्पन्न होता है तथा नर से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय से भी नारी पद निष्पन्न होता है। महाभाष्यकार पतंजलि लिखते हैं- "नृधर्मा नारी, नरस्यापि नारी"। 'नृ' शब्द से नृनरयोर्वृद्धिश्च तथा शाङ्गरवादि सूत्र से ङीन् होकर नारी शब्द बनता है।[2] यास्क निरुक्त में नारी पद का निर्वचन करते हैं **"नराः मनुष्याः नृत्यन्ति कर्मसु"**।[3] सनातन वैदिक साहित्य में उद्धृत उद्धरण इस बात की पुष्टि करते हैं कि भारतीय समाज में पुरातन काल से ही महिलाओं की स्थिति अत्यंत सम्मानजनक व गौरवपूर्ण रही है।

"पुमांसो वै नरः स्त्रियो नार्यः।" (ऐतरेय ब्राह्मण 3.34) वैदिक भाष्यकार आचार्य सायण ने भी तैत्तिरीय आरण्यक में नारी को नर

का उपकार करने वाली बताया है, **"नृणां महावीरार्थिनाम् उपकारित्वात् नारिः न अरिः = नारिः"**। महाभारत एवं मनुस्मृति में भी नारी की अपूर्व प्रशंसा की गई है -

अर्ध भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।

भार्या मूलं त्रिर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः।।[4]

आदर्श आचार संहिता में मनु स्पष्ट लिखते हैं कि जिस कुल में स्त्रियां अपने पति व परिजनों के अत्याचार से पीड़ित रहती हैं, वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। (मनुस्मृति,3/57) हिन्दू धर्म में स्त्री की उच्च स्थिति के ऐसे सैकड़ों उदाहरण 'मनुस्मृति' में मिलते हैं। मनु ने पुत्री को 'दुहिता' (दुहिता=दू+हिता भाव दोनों की हितसाधक) का संबोधन देकर पिता व पति दोनों कुलों का हितरक्षण करने वाली स्त्रीशक्ति के रूप में महिमामंडित किया है।

विश्व के प्राचीनतम ग्रन्थ 'ऋग्वेद' के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि तात्कालीन समाज में महिलाएँ अपनी सशक्त भूमिकाओं का निर्वाह करती थी। महिलाएँ वेदाध्ययन ही नहीं करती अपितु मन्त्रों की द्रष्टा भी थीं। ऋग्वेद की अनेक सूक्तों की दर्शनकत्री स्त्रियाँ थीं। ब्रह्मवादिनी 'घोषा' रचित ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्तों (39वाँ एवं 40वाँ) को अनदेखा नहीं कर सकते हैं। स्पष्ट है कि स्त्रियाँ शिक्षिता होती थीं। लोपामुद्रा, सूर्या, विश्वावारा, अपाला ऋषिकाओं को कौन भूल सकता है। इनके द्वारा रचित सूक्त स्मरणीय एवं पठनीय बने हुए हैं।

बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित मिथिला के राजा विदेहराज की जनसभा में अपने समय के सर्वोच्च तत्ववेत्ता याज्ञवल्क्य का परम विदुषी ब्रह्मवादिनी गार्गी के साथ जीवन और प्रकृति जैसे गूढ़ विषय पर हुआ शास्त्रार्थ भारतीय नारी की विद्वता को प्रतिष्ठित करने वाला हिन्दू दर्शन की अनमोल ज्ञान संपदा माना जाता है।[5]

"मालविकाग्निमित्रम" में "परिव्राजिका" का उल्लेख प्राप्त होता है। जो विधवा थी लेकिन विदुषी इतनी थी कि विद्वानों की योग्यता का परीक्षण भी करती थी।[6]

रामयाण में सीता आदर्श भारतीय नारी के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। यह आदर्श भारतीय नारी की मूर्ति है। वह सच्ची पतिव्रता थी, अपने पति के साथ 14 वर्ष वन में कई कष्ट सहे तथा कन्दमूल खा कर गुजारा किया। जब रावण अपहरण करके लंका भी ले गया तो भी अपने पातिव्रत धर्म पर अडिग रही।

महाकवि भवभूति ने यदि राम को एक आदर्श राजा के रूप में वर्णित किया है तो माता सीता को एक आदर्श सती स्त्री, तपस्विनी, कुशल बहू आदि के रूप में चित्रित किया है। दाम्पत्य जीवन का जितना स्वाभाविक और मार्मिक वर्ण भवभूति ने किया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। भवभूति कहते हैं, "स्नेहश्च निमित्तसव्य पेक्षश्च इति विप्रतिषिद्धमेतत" प्रेम हो और फिर वह किसी कारण पर आश्रित हो, ये दोनों बातें एक दूसरे के सर्वथा विरूद्ध है। प्रेम तत्व एक दुरूह तत्व है जिसे यथार्थतः जानना उतना कठिन नहीं है जितना उसका आचरण में लाना। गृहस्थ जीवन में इसी प्रेम तत्व की साधना सिखलायी जाती है-महाकवि भवभूति ने इसी तत्व की सुन्दर व्याख्या की है-

अद्वैतं सुखदुःखयोर नुगुणं सर्वास्वस्थासु यद

विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।

कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं

भद्रं प्रेम सुमानुषस्य कथम्प्येकं हि तत् प्राप्यते।।[7]

भवभूति कहते हैं प्रेम का रहस्य तो केवल हृदय ही जानता है-

'हृदयं त्वेय जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।'[8]

महाकवि कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम सप्तम सर्ग में स्वयं कहते हैं कि सहधर्मिणी का परित्याग पाप होता है, "कस्तस्य धर्मदार परित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति।"[9]

संस्कृत साहित्य में नारी से सम्बन्धित उल्लेखों का आलोचनात्मक अध्ययन किया जाए तो स्पष्टतया ज्ञात होता है कि नारी के तीन प्रकार के उत्तरदायित्वों को ध्यान में रखकर उसके लिए तीन पद निर्धारित किये गए थे-गृहिणी पद, मातृपद, सहचरीपद।

गृहिणी पद – ऋग्वेद में स्त्री के गृहिणी-पद का अत्यन्त सुन्दर विवेचन है।" जायेदस्तं" द्वारा कहा है कि स्त्री ही घर है'।[10] उसी के कारण घर शोभायमान है। ऋग्वेद में इन्द्र के सुखी घर का आधार कल्याणी जाया बताई गई है।[11] अभिज्ञानशाकुन्तल में महर्षि कण्व द्वारा विदाई के अवसर पर शकुन्तला को दिया गया उपदेश[12] एवं महाभारत के वनपर्व में द्रौपदी ने श्री कृष्ण जी की पत्नी सत्यभामा को जो उपदेश दिया है वह सभी स्थलों एवं समयों पर पत्नियों के लिए अनुकरणीय हैं। गृहिणी को एक महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। जैसा कि महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है-न गृहं गृहमित्याहुगृहिणी गृहमुच्यते।[13]

मातृपद- संस्कृत साहित्य में माता को अत्यन्त सम्मानजनक स्थान दिया गया है। स्त्री का वैदिक युगीन देवी पद लुप्त हो चुका था फिर भी समाज में माता को देवी के रूप में देखा जाता था। स्त्री का स्थान परिवार में मातृत्व के आधार पर निश्चित होता था तथा माता को देवता से भी अधिक पूजनीय माना जाता था-माता किल मनुष्यार्ण देवतानां च दैवतम्।[14] माता के लिए अकरणीय कार्य भी किये जा सकते थे मध्यमव्यायोग में घटोत्कच माता के व्रत के पारायण ब्राह्मण की हत्या करने को तैयार हो जाता है-अकार्यमेतच्च मयाऽद्य कार्य मातुर्नियोगादपनीय षड्काम्।[15] कर्णभारम् में कर्ण माँ

के कहने पर युद्ध के प्रति विरक्ति की आशंका से युक्त हो जाता है - अयं सेकालः पुनश्चयातुर्वचनेनवारितः।[16]

सहचरीपद - वेदकालीन समाज में नारी को सहचरी का पद भी प्राप्त था। गृहपति का कोई भी कार्य पत्नी के साहचर्य के बिना पूरा नहीं हो सकता था। अपत्नीक व्यक्ति यज्ञ के अधिकार से वञ्चित था- 'अयज्ञो वा होष योऽपत्नीकः।' ऋग्वेद के वैवाहिक मन्त्रों में स्पष्ट कहा है कि वर वधू का पाणिग्रहण" सौभगत्व" अर्थात् सुख समृद्धि, आनन्दादि युक्त जीवन का उपभोग करने के लिए तथा 'गार्हपत्य' अर्थात् गृहस्थाश्रम के सभी कर्त्तवयों का निर्वाह साथ-साथ करने के लिए करता है। यह इच्छा भी दर्शाई है कि दोनों का साहचर्य आजीवन बना रहे।" इस साहचर्य का सुन्दर वर्णन करते हुए कहा गया है- यहाँ (पतिगृह में) रहकर हम दोनों (पति-पत्नी) एक साथ आजीवन सुख का उपभोग करते हुए पुत्रों व पौत्रों के साथ खेले व आनंद मनाएं।[17] अन्त में कहा कि हम दोनों पति-पत्नी को विश्वेदेवाः एक करें, हम दोनों के हृदयों को आनन्द जोड़ दे।"[18] रघुवंश महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में प्रसंग प्राप्त होता है कि राम ने अश्वमेध यज्ञ के समय अपने वामभाग में अर्द्धागिंनी सीता की स्वर्णमयी मूर्ति की स्थापना की थी।[19] अर्द्धागिंनी होने के कारण कुमार संभवम के छठे सर्ग में हिमालय राज पार्वती के विवाह के सम्बन्ध में अन्तिम निर्णय मेना से सुनना चाहते हैं। "शैलः सम्पूर्ण कामोऽपि मेनामुखमुदैक्षत प्रायेण गृहणी नेत्रः, कन्यार्थेषु कुटुम्बिनः।[20]

संस्कृत महाकाव्यों, गद्यकाव्यों तथा नाटकों में उसे मुख्यतः प्रेयसी तथा अन्त में पत्नी के रूप में प्रस्तुत किया है। कई काव्यों में उसका स्थान पौराणिक तथा ऐतिहासिक रहा है। दमयंती तथा पार्वती आदि का वर्णन इसके उदाहरण हैं। दमयन्ती, सावित्री आदि के चरित्रों में भारतीय नारी का अद्भुत वर्णन है। अश्वघोष, कालिदास, माघ, भारवि, श्रीहर्ष, माघ, शूद्रक, भवभूति, दण्डी, भट्टनारायण,

हर्ष-वर्धन, बाणभट्ट तथा मुबन्धु आदि सभी कवियों ने नारी का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया है।

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि संस्कृत साहित्य में नारी का प्रमुख स्थान रहा है। सामाजिक जीवन में नारियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था और पुरुषों के समान उन्हें भी शारीरिक बौद्धिक, आध्यात्मिक विकास के अवसर प्रदान किए जाते थे जिससे वे आत्मविकास के मार्ग में पुरुषों से किसी प्रकार पीछे न रहें। यह कुसुम जैसी प्रिया, अमृत जैसी पवित्र तथा मधु जैसी मधुर है। उसे देवी लक्ष्मी, सरस्वती तथा दुर्गा की उपाधियाँ दी गई हैं। नारी त्याग तथा तपस्या की मूर्ति है।

<u>सन्दर्भ ग्रन्थ सूचि</u>

1. मनुस्मृति 3/56
2. व्याकरण महाभाष्य, 4.4.9
3. निरुक्त 5.13
4. महाभारत आदिपर्व 74/70
5. बृहदारण्यक, छठां अध्याय
6. पाण्डेय, डा0 रमाशंकर, मालविकाग्नि मित्रम्-चौखम्भा सुरभारती वाराणसी पृष्ठ-39
7. उत्तर रामचरितम् 1/39
8. उत्तर रामचरितम् 6/32
9. द्विवेदी, डा0 कपिलदेव, आभिज्ञान शाकुन्तलम्-सप्तम अंक-पृष्ठ 421
10. जायेदस्तं मद्यवन्त्सेदु योनिस्तदितवा युक्ता हरयः वहन्तु। (ऋग्वेद 3/53/4)
11. अपाः सोममस्तमिन्द्र प्र याहि कल्याणोर्जाया सुखं गृहे ते। (ऋग्वेद 3/53/6)
12. शुश्रूषस्व गुरून्कुरु प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने

भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।   ।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः॥ अभि. 4.187

13. महा शान्तिपर्व 144.6
14. मध्यमव्यायोग, 1.8
15. मध्यमव्यायोग, 1.8
16. कर्णभारम्, 1.8
17. ऋग्वेद, 10.85.42
18. समज्जन्तु विश्वेदेवाः समापी हृदयानि नी।
    सं मातरिश्वा सं धाता समु देष्ट्रों दधातु नौ। ऋग्वेद, 10.85.47
19. रघुवंश, 14.87
20. कुमारसंभव, 6.85

स्मृति ग्रंथों में नारी

डॉ० तरुलता वी० पटेल
मनिबेन एम० पी० शाह महिला आर्ट्स कॉलेज,
कड़ी, गुजरात

नारियों की भूमिका को लेकर आज देश-दुनिया में चर्चा चलती रहती है। आज का समय नारियों के सामने multiple tasks का विकल्प देता है। आज उनके लिए सभी दिशाओं में, जीवन के सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ने के अवसर हैं। वे आधुनिक होने के साथ साथ सभ्य शीलवान भी हैं। प्रगतिशीलता के साथ वे आस्तिक भी है। सभी प्रमुख क्षेत्रों में नारियों की भूमिका बढ़ती जा रही है। भारत में शक्ति के रूप में स्त्री मूर्ति ही मान्य हुई है।

वेदकालीन समाज में भी नारी का स्थान गौरवपूर्ण था। वेदों में उल्लेख आता है कि स्त्रियों को जन्म लेने, यज्ञ व संग्राम में सहभागी होने, अपना वर स्वयं चुनने, शिक्षा प्राप्त करने, संपत्ति की स्वामिनी होने, पुनः विवाह करने व न्याय के साथ ससम्मान जीने इत्यादि सभी प्रकार के अधिकार सहज ही प्राप्त थे। नारियों की भगवद्भक्ति, उदारता, सहृदयता,पतिव्रत्य, और कर्मणयता का विशेष रूप से उल्लेख है। अतः वैदिक समाज में स्त्रियों की असाधारण प्रतिष्ठा थी।

यद्यपि परवर्ती साहित्य में उस प्रतिष्ठा में अवनति होने लगी फिर भी सूत्र, धर्मशास्त्र एवं स्मृति साहित्य के बहुसंख्यक स्थलों पर नारियों के प्रति सम्मान भाव व्यक्त किया गया है। उनकी रक्षा तथा विशेष सुविधाओं का ख्याल रखा गया है। मनु का 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ' वचन विश्वभर में भारतीय समाज में नारी की प्रतिष्ठा का सूचक है। स्मृतिकारों के अनुसार नारी को सदा मान-

सम्मान देना चाहिए तथा उत्सवों अथवा विशेष महत्त्वपूर्ण अवसरों पर उन्हें अलंकारों से सुसज्जित करना चाहिए। जिस घर में नारियों शोकाकुल होती हैं वह घर विनाश को प्राप्त हो जाता है। मनु ने कन्या को विशेष कृपा दृष्टि से देखा है। माता का स्थान समस्त पुरुष जाति के लिए सर्वाधिक सम्मानप्रद माना गया है। वस्तुतः समस्त नीति व्यवस्था को देखते हुए पुत्र की माता के रूप में नारी प्रत्येक युग में अत्यधिक सम्मानित व सुखी रही है।

परन्तु वही स्त्री अपने पति के सम्मुख पत्नी के रूप में दासी के समान नतमस्तक, अनधिकारिणी तथा पति की कृपा पर आश्रित भी रही है। कन्या के रूप में उसे माता-पिता तथा भाईयों का प्रगाढ़ प्रेम प्राप्त होता था । वस्तुतः माता-पिता अपनी कन्या को अत्यन्त प्रेम करते थे और सदा उसके भविष्य की चिन्ता करते थे। उसके भविष्य की चिन्ता से कभी कभी वे इतने व्यथित भी हो जाते थे कि प्रतिक्रिया में अपनी प्यारी कन्या का ही तिरस्कार करने लगते थे । यह कहा जा सकता है कि कन्या के रूप में पिता से, पत्नी के रूप में पति से तथा माता के रूप में पुत्र से इस युग की नारी पर्याप्त आदर सम्मान एवं प्रेम पा लेती थी। किन्तु पुत्रहीन विधवा के रूप में नारी का कोई संरक्षण न था। पुत्रहीन विधवा की स्थिति अवर्णनीय रूप से हेय थी।

इसके अतिरिक्त स्त्री पूर्णतया परतन्त्र भी थी पुरुषों का यह कर्तव्य था कि वे स्त्रियों को सदा अपने वश में रखें और स्त्री का कर्तव्य था कि वह छोटे छोटे कार्य भी पति से आज्ञा प्राप्त किए बिना न करे। इस प्रकार स्त्री पर पुरुष का पूर्ण अधिकार था, तथा स्त्री की स्वतन्त्र विचार-शक्ति, उसका व्यक्तित्व आदि सब-कुछ लुप्त हो गए थे।

समस्त विषमताओं के अतिरिक्त एक महत्त्वपूर्ण विकास जो

नारियों के पक्ष में हुआ वह था उनके धनाधिकारों में वृद्धि। वैदिक युग की नारी किसी भी प्रकार के धनाधिकार की अधिकारिणी नहीं थी परन्तु, स्मृतिकारों ने सम्भवतः वह समझ कर कि धनाधिकार किसी भी सामाजिक प्राणी की स्थिति को दृढ बना सकते हैं, स्त्रियों की असहायता को पहचानते हुए विधवा के लिए उसके पति की सम्पत्ति में अधिकार सुरक्षित किए। वह व्यवस्था विशेष रूप से पुत्रहीन विधवा के लिए लाभप्रद थी। समाज में इसका पालन भी दृढता पूर्वक हुआ। किन्तु पुत्रहीन विधवा की सम्पत्ति के लोभ ने पुरुष को शैतान बना दिया और वे ऐसी विधवाओं को बल पूर्वक सती होने के लिए बाध्य करने लगे तथा उनकी सम्पत्ति हड़पने लगे।

इस युग में जो सबसे बड़ा परिवर्तन स्त्री की स्थिति में हुआ, वह उसके कार्यक्षेत्र का सीमित हो जाना था। स्त्री की शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक सब प्रकार की उन्नति को रोक कर उसकी स्थिति घर में सीमित कर दी गयी। इस प्रकार हिन्दू समाज का आधा अंग निष्क्रिय सा हो गया जिससे समस्त समाज की प्रगति में अवरोध उत्पन्न हुआ। वस्तुतः स्त्री की स्थिति का व्यापक प्रभाव पुरुष की स्थिति पर भी पड़ा। विवाह योग्य वय में समानता लाने के प्रयत्न में लड़कों को सोलह- सत्रह वर्ष की या इससे भी कम अवस्था में विवाह किए जाने लगे। जिससे उनकी शिक्षा को भारी आघात पहुँचा। अज्ञानता के अन्धकार में समाज का प्रतिनिधित्व ढोंगी पण्डितों के हाथों में चला गया जिससे आगे आनेवाले समय में मुगलों एवं अंग्रेजों के प्रभाव से सामाजिक व्यवस्था बिगड़ती गयी ।

वास्तविकता यह थी कि भारत के प्राचीन वैदिक युग से ही स्त्रियाँ स्वतन्त्र, समुन्नत स्थिति में निवास कर रही थीं किन्तु एक डेढ़ हजार वर्षों तक उन्नत दशा में रहने के बाद नारियों की स्थिति में ह्रास आया, जिसका कारण कुछ शास्त्रीय व्यवधानों का प्रचलन होना था। यदि उसी समय इन व्यवस्थाओं में पर्याप्त सुधार कर दिया गया होता

तो नारी की दशा में इतनी गिरावट न आ पाती।

स्मृतिग्रंथों में नारी की सामाजिक स्थितिः-

(१) विवाह में कन्या-विक्रय का निषेध

स्मृतिकारों ने भिन्न-भिन्न प्रकारों से कन्या-विक्रय की निन्दा करते हुए इस रीति को हतोत्साहित किया है। बौधायन[1] ने कहा है - जो स्त्री धन देकर खरीदी जाती है वह पत्नी पद को प्राप्त नहीं करती है क्योंकि देव तथा पैत्र्य धार्मिक कर्म करने का उसे अधिकार नहीं होता। काश्यप ऋषि ने ऐसी स्त्री को पत्नी न कह कर दासी कहा है। शुल्क लेकर अपनी पुत्री का दान करने वाले आत्म-विक्रय करने वाले होते हैं और महान किल्विष (पाप) के भागी होते हैं। वे घोर नरक में पड़ते है तथा अपने पूर्वज सप्तकुलों को नरक में डालते हैं और उनका गमनागमन का कारण शुल्क ही होता है। इसी प्रकार आपस्तम्ब[2] वसिष्ठ 3आदि स्मृतिकारों ने कन्या के निमित्त धन लेना अत्यंत निन्दनीय कर्म माना है।

मनु[4] तथा याज्ञवल्क्य[5] ने कन्या विक्रय को 'उपपातक' कहा है। मनु[6] के अनुसार यदि योग्य वर प्राप्त नहीं होता है तो भले ही कन्या मृत्युपर्यंत पिता के घर में रह जाए किन्तु अयोग्य पात्र को तो कन्यादान कभी करना ही नहीं चाहिए। तत्पश्चात् दान के प्रत्युपकार विषय में मनु[7] ने कहा है कि - कन्या के पिता में यदि थोड़ी भी समझ हो तो उसे उसके विवाह में अल्प मात्र भी शुल्क नहीं लेना चाहिए क्योंकि थोड़ा सा भी शुल्क लेने से वह कन्या का विक्रय करने वाला हो जाता है। इस प्रकार कन्यादान करने वाले का चित्त पूर्णतया लोभहीन होना चाहिए ।

भृगु, ऋषियों से कहते हैं कि हमने पूर्वजों में भी यह नहीं सुना कि 'शुल्क' नामक मूल्य से कभी किसी सज्जन ने गुप्त रूप से कन्या को बेचा है।[8] कन्या के प्रति शुल्क लेना तो शूद्र जैसी तुच्छ जाति के

लिए भी निषिद्ध है फिर द्विजों की तो बात ही क्या ?[9] इसके विपरीत स्मृतिकारों ने व्यवस्था की है कि कन्या के पिता भाईयों, पति एवं बहनौइयों को चाहिए कि वे अपने कल्याण के लिए कन्या को आभूषणादि देकर सम्मानित करें।[10] किन्तु यदि वर पक्ष द्वारा दिए गए धन को कन्या पक्ष स्वयं न लेकर कन्या को ही दे देता है तो वह कन्या विक्रय नहीं है, वह तो उस कन्या पर कृपा मात्र है।[11]

उपर्युक्त विवेचना से यह स्पष्ट है कि शुल्क एक घृणित कार्य माना जाता था तथा जो व्यक्ति कन्या शुल्क लेता था, समाज में उसका सर्वथा अनादर होता था।

(२) दहेज (यौतुक)

प्रायः सभी स्मृतियों में ब्राह्म विवाह में वर्णित कन्या को बहुमूल्य आभूषणों एवं वस्त्रों से सुसज्जित करके देने की प्रथा दहेज का ही स्वरूप है। स्मृतियों में सर्वत्र विवाह में कन्या को उत्तम अलंकार एवं आभूषण देने की स्पष्ट चर्चा प्राप्त होती है। ब्राह्म, दैव तथा प्राजापत्य इन तीनों ही प्रशंसित विवाहों में मनु[12] आदि ने कन्या को बहुमूल्य अलंकारों एवं वस्त्रों से सुसज्जित करके देने की बात कही है। साथ ही मनु[13] ने यह भी कह दिया है कि इस प्रकार के स्त्री धन के प्रति वर या उसके बान्धवों को मोह कदापि नहीं होना चाहिए। इससे निष्कर्ष निकलता है कि यह दहेज एक प्रकार का स्त्रीधन होता था तथा यह उतना ही दिया जाता था जितनी कि कन्या के पिता की सामर्थ्य होती थी। इसके अतिरिक्त वरपक्ष का दहेज के प्रति मोह प्रदर्शित करना पतन की ओर जाना था। इस प्रकार का दहेज अपने आप में बहुत पवित्र, कन्या के प्रति दया, उदारता एवं वर पक्ष के प्रति कन्या पक्ष वालों के द्वारा आदर का सूचक है।

इसी संबंध में याज्ञवल्क्य[14] ने कहा है कि पति, भाई, पिता, जाति के अन्य लोगों, सास, ससुर, देवर और बन्धुवर्ग द्वारा स्त्रियाँ

आभूषण वस्त्र एवं भोजनादि के सम्मान के योग्य होती है। विष्णुस्मृति[15] में स्पष्ट कहा गया है कि बहन, बेटी, तथा जमाई दान के पात्र है।

इसी तरह स्मृतियों में कहीं भी दहेज शब्द का प्रयोग अथवा इस अर्थ में अन्य किसी शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। केवल कन्या को विवाह में वस्त्राभूषणादि देने की बात कही गयी है। वह दहेज प्रथा स्मृतियों से दान अथवा उपहार अर्थ में जुड़ी हुई है।[16]

उपर्युक्त विवेचना के आधार पर यह तथ्य भली प्रकार प्रमाणित हो जाता है कि स्मृतियों के काल तक यौतुक प्रथा ऐसी अवस्था में थी जिसमें कोई बुराई दिखाई नहीं देती अपितु आनन्दोत्सव का कारण ही थी। कन्यादान के साथ वस्त्राभूषणों का दान प्रशंसनीय माना जाता था। वर के पिता तथा अन्य सम्बन्धियों को नाना प्रकार के उपहार भेंट कर के कन्या का पिता गौरव अनुभव करता था। किन्तु साथ ही इस प्रकार के उपहारों के प्रति वर एवं वर पक्ष वालों का तनिक भी लाभ नहीं होता था तथा वे इनकी अपेक्षा भी नहीं करते थे। कन्यादान की पूर्णता के लिए इन उपहारों का देना आवश्यक न था। यहाँ तक कि वरपक्ष के लोग इन उपहारों को अस्वीकार भी कर सकते थे। परंतु ऐसे लोगों की संख्या बहुत कम थी। इस संबंध में राजा शर्याति की पुत्री सुकन्या का दृष्टान्त हमारे सामने है जिसने पति के आश्रम में पहुँच कर मुनि पत्नी के अनुरूप वल्कल वस्त्र पहन लिए और पिता के यहाँ मिले हुए वस्त्र और अलंकारों को लौटा दिया। श्री अल्तेकर मानते हैं कि "यदि यह प्रथा आज की कुप्रथा के रूप में स्मृतिकाल में समाज में व्याप्त हो जाती तो इसका कन्या विक्रय के समान घोर विरोध करते।"

(३) सतीप्रथा का विरोधः-

यद्यपि 'सती' का शाब्दिक अर्थ 'उत्तम स्त्री' है किन्तु, जब से

पत्नी का सर्वोच्च धर्म पति की चिता पर भस्म होना माना जाने लगा, तभी से ऐसी स्त्री को 'सती' कहा जाने लगा। यद्यपि समस्त प्राचीन वैदिक साहित्य में कहीं कोई ऐसा सूत्र प्राप्त नहीं होता जिस में किंचिदपि सती धर्म के पक्ष में कोई बात कही गयी हो अथवा कोई संकेत दिया गया हो। अपितु इस प्रथा का विरोध करने वाले ही बहुत से उदाहरण प्राप्त होते हैं। वैदिक साहित्य में इस कृत्य को 'आत्महत्या' तक कह कर तिरस्कृत किया गया है।

इतना ही नहीं प्रथम स्मृतिकार मनु[17] (३०० ई. पू. से १०० ई. उ.) ने भी इस प्रथा का कोई उल्लेख नहीं किया है अपितु विधवा के लिए आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत की ही व्यवस्था की है। किन्तु फिर भी इस प्रथा का विकास ३०० ई. पू. से ७०० ई. पू. उ. तक धीरे-धीरे होने लगा। इसका उद्गम सर्वप्रथम राजघरानों एवं क्षत्रिय परिवारों में ही हुआ। वस्तुतः प्राचीन काल में युद्ध में पराजित राजाओं की पत्नियों की दशा अत्यन्त शोचनीय हो जाती थी। जीतने वाले राजा पराजितों की पत्नियों को बन्दी बना कर उनसे बदला लेते थे। मनु[18] ने स्वयं सैनिकों को युद्ध में प्राप्त होने वाली वस्तुओं के साथ स्त्रियों को भी अधिकार में ले लेने का उल्लेख किया है। अतएव ऐसी नारियाँ बन्दी होने की अपेक्षा सती होना अधिक पसन्द करने लगीं। किन्तु कालान्तर में यह प्रथा ब्राह्मणों में भी प्रचलित हो गयी। जैसा कि (वेद) व्यास स्मृति[19] में आता है- "पति के शव का आलिंगन करके ब्राह्मणी को अग्निप्रवेश करना चाहिए।"

इस प्रकार एकबार जब यह प्रथा चल पड़ी तो फिर निबन्धकारों व टीकाकारों ने इसे बहुत प्रोत्साहन दिया। विष्णुस्मृति[20] का वचन है पति के मरने पर विधवा को ब्रह्मचर्य की साधना अथवा पति के साथ सती कर्म करना चाहिए। मध्यकालीन स्मृतिकारों ने सती होनेवाली स्त्रियों की भरपूर प्रशंसा की है। तथा सती होने से मिलने वाले लाभों का विस्तृत वर्णन किया है। यद्यपि याज्ञवल्क्य[21] ने विधवा के ब्रह्मचर्य

को ध्यान में रख कर कहा है कि पति के न रहने पर नारी को माता, पिता, भाई, पुत्र, सास, श्वसुर आदि के समीप रहना चाहिए। स्पष्ट है याज्ञवल्क्य सतीधर्म के कदापि समर्थक नहीं थे।

जहाँ कुछ शास्त्रकारों व टीकाकारों ने सती प्रथा का समर्थन किया, वहाँ कुछ ने इसे आत्महत्या कह कर विरोध भी किया। मनुस्मृति के टीकाकार मेधातिथि ने कहा कि - अंगिरस्मृति सतीप्रथा का जो विधान करती है, वह आत्महत्या का निषेध करने वाले वैदिक वचनों के विरुद्ध है। मेधातिथि ने 'श्येनयागवत्' कह कर इस प्रथा को अधर्म कहा है।[22]

इस के अतिरिक्त मेधातिथि कहते हैं कि मोक्ष की इच्छा करने वाले व्यक्ति को स्वर्ग प्राप्ति के उद्देश्य से आयु के पूर्व ही आयु का हनन नहीं करना चाहिए, ऐसा करना शास्त्र-विरुद्ध है। क्योंकि आयु शेष रहने पर नित्य नैमित्तिक कर्मों के अनुष्ठान से तथा मनन, निदिध्यासन तथा आत्मज्ञान से ब्रह्मप्राप्ति अर्थात् मोक्षप्राप्ति होती है।[23] अतः अनित्य-अल्प सुख-स्वर्ग-प्राप्ति के लिए आयु की हानि स्त्रियों को नहीं करनी चाहिए।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि मध्ययुग में ही इस प्रथा का प्रचलन हुआ है किन्तु उस समय यह स्त्री की इच्छा पर ही निर्भर था। तत्पश्चात् अनेक सहमतियों तथा असहमतियों के बीच यह प्रथा बढ़ती ही गयी और ७०० ई. से धर्मशास्त्रों के प्रबल समर्थन के परिणाम स्वरूप यह प्रथा हिन्दू समाज में व्यापक रूप से फैल गयी, यहाँ तक कि बलपूर्वक भी स्त्रियों को चिता पर चढ़ाया जाने लगा । राजपूत नारियों के जौहर-व्रतों तथा पति के शवों का आलिंगन कर चिता में भस्म हो जाने वाली कथाओं की इतिहास में कमी नहीं है।

धर्मशास्त्र में नारी की शैक्षणिक व धार्मिक स्थिति-

मनुस्मृति के काल तक नारियों की शैक्षणिक स्थिति में एक

बड़ा परिवर्तन आ गया। वे शिक्षा की अधिकारिणी तो बनी रहीं किन्तु वैदिक ग्रन्थों के अध्ययन का उनको अधिकार न रहा।[24] यद्यपि धर्मसूत्रों के काल (५०० ई. पू.) से ही स्त्रियों में उपनयन का महत्त्व कम होने लगा था, फिर भी मनुस्मृति के काल में, उपनयन को औपचारिक महत्त्व प्राप्त था ।[25] इसके अतिरिक्त स्त्रियों के वेदाध्ययन की अधिकारिणी न होने के कारण, विवाह संस्कार को छोड़कर उनके अन्य सभी संस्कार वैदिक मंत्रोच्चारण से रहित ही किये जाने लगे।[26] मनु के परवर्ती स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने नारियों के लिए उपनयन की औपचारिक रीति को भी आवश्यक नहीं समझा और उपनयन संस्कार का स्त्रियों के लिए सर्वथा बहिष्कार कर दिया। गर्भाधान से चूड़ाकरण पर्यन्त समस्त संस्कारों का वर्णन करते हुए याज्ञवल्क्य[27] ने लिखा है कि ये समस्त संस्कार कन्याओं के भी ज्यों के त्यों किए जाएँ किन्तु इनमें वैदिक मंत्रोच्चारण न किया जाय। नारियों के लिए उपनयन की वे चर्चा ही नहीं करते। केवल विवाह संस्कार को ही नारियों के लिए वैदिक रीति से मान्य निर्धारित करते है।

परिणाम स्वरूप नारियों का उपनयन संस्कार बन्द हो गया। उपनयन के अभाव में वे वैदिक शिक्षा प्राप्त करने की अधिकारिणी न रही। वैदिक ज्ञान न होने के कारण नित्य के धार्मिक कृत्यों में उपयुक्त वैदिक मंत्रों के सम्यक् ज्ञान से वे अनभिज्ञ रहने लगीं थी। फलतः यज्ञ पूजनादि धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी मात्र उपस्थिति ही होती थी, स्वयं उन्हें वैदिक रीति का कोई ज्ञान न रहा। और यहाँ तक कि उपनयन के अभाव में नारियों की शूद्रों तक से समानता की जाने लगी ।

इसके अतिरिक्त स्त्रियों का अध्ययन कार्य घर में रह कर ही होता था। अतएव उन्हें गृहकार्यों में भी बहुत-सा समय लगाना पड़ता था। परिणामतः वे वेदाध्ययन के लिए अधिक समय नहीं निकाल पाती थीं। साथ ही साधारण बोलचाल की भाषा वैदिक

संस्कृत से पृथक् होती जा रही थी। मनुस्मृति के काल तक जन साधारण की भाषा में प्राकृत का प्रभाव आ चुका था। अतएव संस्कृत भाषा का पूर्णतया शुद्ध उच्चारण नहीं कर पाती थी। इसी कारण वैदिक मन्त्रों एवं संस्कृत के शुद्ध परिष्कृत रूप की रक्षा हेतु प्राचीन धर्म प्रणेताओं ने स्त्रियों को वैदिक शिक्षा देने का निषेध किया। यहाँ तक कि विवाह-संस्कार में वधू की ओर से बोले जाने वाले मन्त्रों का उच्चारण यजमान ही करता था, वधू स्वयं नहीं, जबकि वर अपने मन्त्रों का उच्चारण स्वयं करता था।[28]

उपर्युक्त वर्णित परिस्थितियों के अतिरिक्त समाज का एक वर्ग ऐसा भी था जहाँ नारी शिक्षा का अच्छा प्रचार था। नौ सौ ईस्वी के लगभग तक राजघरानों, राजकीय कर्मचारियों, धनी-सम्पन्न घरानों तथा गणिकाओं के समाज में नारियों को उच्च कोटि की शिक्षा प्रदान की जाती थी। जिनमें कुछ श्रेष्ठ कवयित्रियों के रूप में प्रादुर्भूत हुई।[29] जिसकी पुष्टि इस कालके संस्कृत नाटकों द्वारा होती है। इन नाटकों की नायिकाएँ उच्च शिक्षा प्राप्त नारियाँ थीं जो राजघरानों से भी सम्बन्धित हैं ।

यद्यपि इन नारियों को वैदिक शिक्षा प्रदान नहीं की जाती थी किन्तु फिर भी वे संस्कृत एवं प्राकृत भाषा का साहित्यिक अध्ययन भली प्रकार कर लेती थी । इनकी शिक्षा का केन्द्र विशेष रूप से घर ही होता था और गृह से सम्बद्ध कलाओं में दक्षता प्रदान करने के लिए धनी परिवारों में इनके लिए अध्यापक भी नियुक्त किये जाते थे। राजा अग्निमित्र के यहाँ गणदास और हरदत्त की नियुक्ति नारियों को विशिष्ट कलाओं की शिक्षा प्रदान करने के लिए हुई थी। ये अध्यापक विशेष रूप से संगीत, नृत्य, चित्रकला, गृहसज्जा, माल्यग्रन्थन आदि की शिक्षा प्रदान करते थे।[30] परंतु विवाह के पश्चात इनमे से बहुत ही कम स्त्रियां अपनी शिक्षा को आगे चला पाती थी। जो स्त्रियां सुदीर्घ काल तक अध्ययन कर पाती थी उनमें

से कुछ ने अपनी अद्भुत रचनाओं द्वारा साहित्य में गौरव का स्थान भी प्राप्त किया है। स्मृतिकाल में अनेक शिक्षिता नारियों ने अपनी अनूठी रचनाओं से साहित्यवृद्धि में पूर्ण योगदान दिया।

''राजशेखर' ने अपनी रचना 'सूक्तिमुक्तावली' में इन स्त्रियों की प्रशंसा की है। इन नारियों में से एक शील भट्टारिका' नामक स्त्री अपने पद्यों के लिए विख्यात थी।[31]

राजशेखर ने विजयांक नामक कवयित्री की समानता कालिदास से की है और उसकी तुलना सरस्वती देवी से की है।[32] निश्चय ही उस काल के मध्य उसे अत्यन्त सम्माननीय पद प्राप्त रहा होगा ।

राजशेखर की पत्नी क्षत्रिय वर्ण की थीं और वह एक अच्छी आलोचक एवं कवयित्री भी थी। अल्तेकर के अनुसार 'कौमुदीमहोत्सव' नाटक विद्या अथवा विज्जका नामक लेखिका का लिखा हुआ है।[33] इससे स्पष्ट होता है कि तत्कालीन स्त्रियाँ राजनीति एवं इतिहास सम्बन्धी विषयों में पर्याप्त रुचि लेती थीं। संस्कृत गाथाओं में सीता, मारूला, इन्दुलेखा, भवदेवी, विकटनितम्बा एवं सुभद्रा, नामक कवयित्रियों का भी उल्लेख हुआ है"।[34]

इस के अतिरिक्त कुछ स्त्रियाँ वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में भी रुचि रखती थीं। शंकर एवं मण्डन मिश्र के मध्य हुए शास्त्रार्थ की निर्णायिका मण्डन मिश्र की पत्नी 'भारती' थी। इतना ही नहीं बारहवीं शती के गणितज्ञ भास्कर द्वितीय ने अपनी पुत्री लीलावती को गणित पढ़ाने के लिए उसी के नाम पर 'लीलावती' नामक गणितशास्त्र की पुस्तक की रचना की। इससे सिद्ध है कि कुछ नारियाँ गणित में भी रुचि लेती थीं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि स्मृति काल में नारियों की शिक्षा पर उनकी परिस्थितियों एवं समाज का कितना प्रभाव था। जहाँ निर्धन परिवारों की कन्याएँ शिक्षा से सर्वथा वंचित थीं, वहाँ साधारण

परिवार की कन्याएँ घरों पर ही पिता अथवा अन्य संबंधी से थोड़ी बहुत साहित्यिक शिक्षा प्राप्त करने में समर्थ हो जाती थीं गृह सम्बन्धी ज्ञान इन्हें माता से प्राप्त हो जाता था। किन्तु सुसंस्कृत उच्च, परिवारों की कन्याएँ साधन उपलब्ध हो जाने के कारण सभी प्रकार की उच्च साहित्यिक, कलात्मक, राजनीतिक तथा युद्ध सम्बन्धी शिक्षाएँ प्राप्त कर लेती थीं।, नारियों का यही वर्ग तत्कालीन नारी समाज को गौरव प्रदान करता है। परन्तु ये सम्पन्न परिवार बहुत ही कम थे। अतएव ८००-९०० ई. तक आते-आते नारियों की शिक्षा तीव्र गति से अवनति की ओर बढ़ी। जिसके फलस्वरूप नारियों का अधिकांश वर्ग अशिक्षित ही रहा ।

उपर्युक्त समस्त विवेचना से स्पष्ट होता है कि स्मृति ग्रंथो के काल में नारी के लिए पातिव्रत्य एवं सतीत्व का महत्त्व सर्वोपरि था किन्तु फिर भी अनैतिकता प्रच्छन्न रूप से विद्यमान थी। जहाँ माता के रूप में नारी का सर्वोच्च स्थान था, वहीं दासी के रूप में वह पुरुष की भोग्य तुच्छ वस्तु के तुल्य थी। यद्यपि परिवार एवं समाज में उसे कुछ स्थान प्राप्त हुआ था, किन्तु फिर भी समस्त कार्यों में उसे परतन्त्र बना कर उसके व्यक्तित्व का बहुत ह्रास किया गया। नैतिकता सम्बन्धी विचारधाराओं की सूक्ष्मता के कारण नारी की प्रतिष्ठा को घोर आघात पहुँचा ।वेदों एवं उपनिषदों के काल में नारी को जैसी प्रतिष्ठा प्राप्त थी, वह अब सुरक्षित न रह सकी। वस्तुतः नारी के इस पतन का मुख्य कारण था उसे निन्दित, अपवित्र मानने की प्रवृत्ति एवं ब्रह्मचर्य की रक्षा में बाधक समझना। इसके अतिरिक्त पुत्रोत्पत्ति को ही धर्म का आध्यात्मिक लक्ष्य मान कर स्त्री के लिए विवाह एवं पति की अधीनता को ही जीवन का मुख्य लक्ष्य बना देने से स्मृतिग्रंथ युगीन नारी मानवीय अधिकारों से वंचित एवं पददलित दिखाई पड़ती है।

पादटीप

१. बौधायन धर्मसूत्र - ११/२०, २१, २२

२. आपस्तम्ब धर्मसूत्र - ९/२५, २६

३. वसिष्ठ धर्मसूत्र १/३६, ३७

४. मनुस्मृति -६/६१

५. याज्ञवल्क्यस्मृति-३/२३६

६. मनुस्मृति - १/८९

७. मनुस्मृति ३/५१

८. मनुस्मृति ९/१००

९. मनुस्मृति ९/९८

१०. मनुस्मृति ३/५५

११. मनुस्मृति ३/५४

१२. मनुस्मृति ३/२७, २८, ३० याज्ञवल्क्यस्मृति-१/५८

१३. मनुस्मृति ३/५२

१४. याज्ञवल्क्यस्मृति-१/८२

१५. विष्णुस्मृति ९३/६

१६. The Position of women in Hindu Civilsation. - Dr. A.S. Altekar, Motilal Banarasi Dass, Varanasi-1978 p. 71

१७. मनुस्मृति-५/१५७

१८. मनुस्मृति-७/९६

१९. (वेद) व्यासस्मृति २/५३

२०. विष्णुस्मृति - २५/१४

२१. याज्ञवल्क्यस्मृति - १/८६

२२. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्यस्मृति- १/८५ पृ. ३७

२३. मिताक्षरा, याज्ञवल्क्यस्मृति- १/८६ पृ. ३७

२४. मनुस्मृति-२/१६

२५. मनुस्मृति-२/६७२२

२६. मनुस्मृति-२/६६

२७. याज्ञवल्क्यस्मृति-१/१३

२८. गोभिल गृहसूत्र २/१/२१

२९. काव्यमीमांसा पृ. ५३

३०. Education in Ancient India Dr. A.S. Altekar p. 220.

३१. देखिये राजशेखर कृत सूक्तिमुक्तावली

३२. सरस्वती कर्णाटी विजयांका जयत्यसौ। या वैदर्भगिरां वासः कालिदासादनन्तरम् ।॥

नीलोत्पलदलश्यामां विजयांकामजानता । वृथैव दण्डिनाप्युक्तं सर्वशुक्ला सरस्वती ।।

- राजेशेखर कृत सूक्तिमुक्तावली में से उद्धृत

३३. प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति डॉ. अल्तेकर पू. १६५

३४. देखिये. काव्यमीमांसा

ग्रन्थसूची

(१) अत्रिसंहिता : स्मृति सन्दर्भ-भाग-१, क्लाईव रोड, कलकत्ता

(२) आपस्तम्ब धर्मसूत्र : डॉ. उमेशचन्द्र पाण्डेय कृत हिन्दी टीका सहित, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

(३) काव्यमीमांसा : राजशेखर कृत, ओरियन्टल इन्स्टीट्यूट, बरोडा, तृतीय आवृत्ति, १९३४२३

(४) गोभिल गृह्यसूत्र : संपादक-चन्द्रकान्त तर्कालंकार,

(५) धर्मशास्त्र का इतिहास : भाग-१,२,३ अनुवादक-अर्जुन चौबे, हिन्दी समिति, उत्तर प्रदेश, १९६५

(६) प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति : डॉ. अनन्त सदाशिव अल्तेकर, मनोहर प्रकाशन, वाराणसी, १९७९-८०

(७) बौधायन धर्मसूत्र : श्री गोविन्द स्वामी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी

(८) भारतीय संस्कृति में नारी [स्मृति ग्रन्थों के विशेष संदर्भ में] : डॉ. लता सिंहल, परिमल पब्लिकेशन्स, २७/ २८, शक्तिनगर, दिल्ली, प्रथम संस्करण, १९९१

(९) मनुस्मृति : निर्णय सागर प्रेस, बम्बई

(१०) याज्ञवल्क्यस्मृति : विज्ञानेश्वर कृत मिताक्षरा टीका, निर्णय सागर, बम्बई, १९१८

(११) वसिष्ठ धर्मसूत्र : संपादकः फूहरर, बम्बई, संस्कृत सीरीज

(१२) विष्णुस्मृति : नन्द पण्डित कृत केशव वैजयंती टीका लायब्रेरी सीरीज, सं. १९६४: स्मृति सन्दर्भ-भाग-१, क्लाईव रोड, कलकत्ता

(१३) वैदिक एवं धर्मशास्त्रीय में नारी : डॉ. एस. कुजूर, विश्वविद्यालय प्रकाशन, साहित्य वाराणसी, प्रथम संस्करण, १९८२

(१४) व्याससमृति : २० स्मृतियाँ-भाग-२, पं. श्री. राम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरेली, द्वितीय आवृत्ति

(१५) सूक्तिमुक्तावली : राजशेखर

<u>English</u>

(16) History of Dharma Shastra, Vol 1-2-3: Dr. P. V. Kane, Poona, 1930

(17) The Position of women in Hindu Civilisation: Dr. A. S. Altelkar, Moti Lal, Banaras- idas, Varanasi, 1978.

(18) The Position of Women in Hindu Law: Dwarka Nath Mitter, Dr. of Law Thesis, University of Calcutta, 1913.

(19) Women in Manu and His Seven Commentators: Dr. R. M. Das, Kanchan Publications, Varanasi, 1962.

अथर्ववेद में पृथ्वी देवी की स्तुति

डॉ. सुरेखा पटेल

एसोसियेट प्रोफ़ेसर, संस्कृत विभाग

जी.डी. मोदी कोलेज ऑफ़ आर्ट्स,पालनपुर

'स्तोत्र' शब्द 'स्तु' धातु से निष्पन्न हुआ है। 'स्तूयते अनेन इति स्तोत्रम्'‘जिसमें स्तुति होती है यह स्तोत्र’। जिसके द्वारा भवितभावपूर्वक आराध्य देवकी प्रार्थना की जाती है। वह 'स्तोत्र' है। किसी भी देव का स्वरूप या गुणों का काव्यमय शब्दमें कीर्तन किया जाता है वह 'स्तोत्र' कहलाता है। स्तोत्र और स्तुति को समानार्थक मानकर कवियोंने इसी प्रकारके काव्यों को 'स्तोत्र' या 'स्तुति' नाम दिए है।

विद्या की दृष्टिसे काव्यके सर्वप्रथम दो भेद है - दृश्य-काव्य एवं श्रव्य काव्य। श्रव्य काव्यके अन्तर्गत वे काव्य आते है, जिन्हें केवल सुना अथवा पढ़ा जाता है। श्रव्य काव्य के भी प्रमुख तीन भेद है – ‘पद्य काव्य, गद्य काव्य एवं गद्य-पद्यात्मक काव्य’ इनमें से पद्य काव्य के भी दो प्रमुख भेद है - महाकाव्य एवं खण्डकाव्य। खण्डकाव्य की अत्यन्त प्रचलित विद्या है स्तोत्रकाव्य। जिसका अर्थ है –‘ऐसा काव्य, जिसमें भक्तकवि अपनी कविताके माध्यमसे अपने आराध्यकी स्तुति करता है - 'स्तवः स्तोत्रं स्तुतिर्नुतिः।' (अमरकोशः १/६/११) इष्ट देवकी स्तुति के लिए व्यक्तिगत भावनाओंसे ओतप्रोत और साहित्यिक गुणों से सुशोभित लघुकाव्य को 'स्तोत्र' काव्य कहते हैं।

संस्कृत साहित्यके नंदनवनमें उपलब्ध कई प्रकारके देव-तरुओंमें स्तोत्र साहित्य पारिजात समान शोभायमान है। सदाबहार ये स्तोत्र

साहित्यमें आकाश जैसी सर्वव्यापकता, वायु जैसी गतिता, तेज जैसी तरलता, जल जैसी निर्मलता और पृथ्वीकी तरह वैविध्य सभरता है। स्तोत्र साहित्य स्तुति, स्तोत्र, स्तवन, सूक्त आदि नामोंसे प्रचलित है। मानस, पूजा, पञ्चक, अष्टक, दशक, पञ्चाशिका, शतक, अष्टोत्तरनाम, सहस्त्रनाममाला, कवच, अर्गला, कीलक, लहरी आदि प्रकारमें उपलब्ध स्तोत्र साहित्य विभाजित है। उर्मिके अस्तित्वके साथ स्तोत्रका आरंभ हुआ। हृदयके भावोंसे उसे नवजीवन मिला। काव्यमय कल्पनासे उसे वैविध्य मिला। जब तक हृदयकी भावनाओंका अस्तित्व होगा, तब तक 'स्तोत्र' इस संसार में रहेगें वह निर्विवाद सत्य है।

'स्तोत्र' मनुष्य हृदयका प्रथम उद्गार है। 'स्तोत्र' शब्द सबसे पहले ऋग्वेदमें प्राप्त होता है।[1]'स्तोत्र' अर्थवाची अन्य दो शब्द 'स्तोम' और 'उक्थ' मिलते है।[2] ऋग्वेद महदंशे स्तोत्र संग्रहका रूप व्यक्त करता है। इसीलिए कहा जा सकता है कि संस्कृत साहित्यका मंगल प्रारंभ स्तोत्र साहित्यसे होता है। स्तोत्रकाव्यकी प्रशंसनीय परम्परा हमारे यहाँ वैदिक साहित्यसे प्रारम्भ हुई। ऋग्वेद का भाव, भाषा और अभिव्यक्तिमें सरल प्राचीन कालका गायत्री मंत्र स्तोत्र ही है। ('तत्स-वितुवरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्') वेदोमें इन्द्र, अग्नि, विष्णु, वरुण, मरुद्गण, सूर्य, उषा, पृथिवी, नदी, द्यौ, अन्तरिक्ष, प्रजापति आदि को देवता मानकर उनकी प्रशंसामें सूक्त गाये है। वैदिक ऋषि संपत्ति, वीरपुत्र और धनधान्यकी याचना करते थे। यह स्तुति भक्तिकी परंपरा से ही 'स्तोत्र' काव्य का जन्म और विकास हुआ। इसके पश्चात् लौकिक संस्कृत साहित्य एवं हिन्दी साहित्यमें भी स्तोत्र काव्योंकी रचना निरन्तर होती रही हैऔर आज भी हो रही है। रामायण, महाभारत, पुराणोमें, महाकाव्योंमें, बौद्ध स्तोत्रो में, शंकराचार्य के स्तोत्रोमें, शैवस्तोत्र, वैष्णवस्तोत्र और साहित्यमें भी स्तोत्र मिलते है। भक्त कवियोंकी सर्जनशीलताके

फलस्वरूप ही देवीभूषण, दुर्गासप्तशती, सौन्दर्यलहरी, अमृतलहरी, लक्ष्मीलहरी, स्तोत्ररत्नावली, बृहत्स्तोत्ररत्नाकर, स्तोत्रगुच्छ, भक्तामरस्तोत्र आदि स्तोत्रकाव्य कृतियाँ तथा स्तोत्रसंग्रह देखनेको मिलता है। सन्त ज्ञानेश्वर, नामदेव, कबीरदास, सूरदास, तुलसीदास, नरसिंह महेता आदि भक्त कवियोंकी वाणी भी स्तोत्र काव्यके रूप में मान्य है, तथा काव्यके प्रमुख़प्रयोजन 'अनिष्ट निवारण' ('शिवेतरक्षतये' । का.प्र. १/२) की सिद्धिका साधन भी है।

वैदिक और प्रशिष्ट साहित्यमें स्तोत्रकाव्यके लक्षण देखें तो स्तोत्रकाव्य उर्मिवत्से अधिकतर उर्मिमत् होते है। उसमें मुक्तकका कलेवर ज्यादातर होता है। प्रत्येक श्लोक परस्पर अनिबद्ध होता है। फिर भी चमत्कृतिसे परिपूर्ण होते है। भावोद्रेकताकी विशेष अभिव्यक्ति होनेसे भावकी लहरीओंकी सतत अनुभूति उनका विशिष्ट लक्षण है, फिर भी यह भाव भक्तिके साथ विशेषतः जुड़ा होता है। इष्टदेवकी सर्वोपरिताकी स्थापना स्तोत्रकाव्यका प्रधान लक्षण है। स्तोत्रमें नमस्कार, आशीर्वाद, सिद्धान्तका प्रतिपादन, इष्टदेवताका पराक्रमवर्णन, विभूति और प्रार्थना यह छह व्यस्त या सामुदायिक रीतसे 'स्तोत्र' काव्यके लक्षण है। स्तोत्र काव्यके अन्तमें फलश्रुति भी आती है, या तांत्रिक स्तोत्रोकी तरह काव्यकी सिद्धिके लिए प्रयोगविधि भी उपलब्ध होती है। स्तोत्रकाव्यकी शैली सामान्यतः प्रासादिक, माधुर्यपूर्ण, वैदर्भी होती है, कहीं तो गौडी या पांश्चाली भी देखनेको मिलती है जैसे रावणाष्टक। तरंगित भावके साथ भावाभिव्यक्ति के लिए शिखरिणी, वियोगिनी, पंचचामर, उपजाति, वसंततिलका जैसे छंदोके प्रयोग होते है। तत्त्वज्ञानकी चर्चा भी देख़ने मिलती है। भाव और भक्तिका सुभग समन्वय होने से ही वह स्तोत्रकाव्योंमें कठोरचित्त मनुष्यको भी परिद्रावित करनेकीप्रशंसनीय शक्ति होत्ती है। अग्निपुराणकारके 'स्तोत्रकाव्य' के बारेमें वचन है कि 'भक्त अपने आराध्यके प्रति प्रेमयुक्त वचन कहता है अथवा उसकी

प्रशंसा करता है।[3] अतएव अग्निपुराणकारके यह वचन भी स्तोत्र काव्यके लक्षणका बीज माने ज़ा सकते है। वैदिक और प्रशिष्ट संस्कृत काव्यधारामें कई स्तोत्रकाव्य प्राप्त होते है, फिर भी संस्कृत साहित्यशास्त्रीओंने उनके काव्यशास्त्र ग्रंथमें स्तोत्रके स्वरूप या लक्षणका स्पष्ट निर्देश नहीं किया है। स्तोत्र काव्यके लक्षण जो भी हो, काव्यकी यह विद्या हमारे संस्कृत साहित्यकी अनुपम एवं सहृदय हृदयस्पर्शी विद्या है। संस्कृत साहित्य में उसका स्थान विशिष्ट है।

वेद, विश्व-वाङ्मयमें ज्ञान-विज्ञानके आदि स्त्रोत है। भारतीय संस्कृतिके इतिहासमें वेदोंका नितान्त गौरवपूर्ण स्थान है। लौकिक वस्तुओंके साक्षात्कार केलिए जिस तरह नेत्र की उपयोगिता है, उसी प्रकार अलौकिक तत्वोंके रहस्य को जाननेके लिए वेदकी उपादेयता है। वेदों के महत्वका गौरवगान प्राचीनकाल से ही किया जाता रहा है। स्मृतिकार महामुनि मनुने वेदको धर्मका मूल तथा सम्पूर्ण ज्ञानकी निधि माना है।[4] यहाँ तक की मनुष्यकी आस्तिकता भी वेद पर आधारित है। वेद निन्दक को नास्तिक कहा गया है।[5]अथर्ववेद, क्षात्रवेद एवं आयुर्वेदका आदि स्त्रोत है। वह भी सुन्दर स्तोत्रमय मंत्रोसे वंचित नहीं है। अथर्व और अंगिरस के मंत्रोके संग्रहके रूपसे यह वेद अथर्वांगिरस वेद कहा जाता है। अथर्ववेदमें भी आशीर्वादात्मक पौष्टिक सूक्त, विविध अपराधकी निवृत्तिके लिए प्रायश्चित सूक्त, पुत्रोत्पत्ति और सन्तान रक्षाके लिए इत्यादि सूक्त प्राप्त होते है। अथर्वका यह पृथिवी सूक्त राष्ट्रीय भावनाकी पुष्टि करता है। राष्ट्र भक्ति से ओतप्रोत, वीरताकी भावनावाले तथा मातृभूमि के यशोगान से परिपूर्ण इस सूक्तमें कुल तिरेसठ (६३) मन्त्र है। उसके ऋषि अथर्वा, देवता भूमि और छन्द त्रिष्टुप् है। यह सूक्तको पृथ्वी सूक्त और मातृभूमि सूक्त कहते है। यह सूक्त के अधिष्ठाता देव मातृभूमि, समस्त पृथ्वीके मानवोंकी भावनाओंको पोषता है। मन्त्रों में भूमिकी विशेषताओं एवं उसके प्रति अपने कर्तव्योंका बोध कराया

गया है। राष्ट्रीय अवधारणा तथा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावनाको विकसित, पोषित एवं फलित करनेके लिए अत्यन्त उपयोगी सूक्त है। यह सूक्तमें विविधरूप वसुन्धराकी कई सुन्दर और कृतज्ञतापूर्ण शब्दो में स्तुति की गई है। अथर्ववेदके भूमि सूक्तमें सर्वप्रथम पृथ्वीको माता और अपनेको उनका पुत्र बताया गया है। यह सूक्त काव्यात्मक चारूता और भावसमृद्धि से उत्कट बना है। पृथ्वी ही ऐसा स्थल है जिसने जैव विविधता का पोषण और रक्षण किया है, जैसे कोई माता दूधसे अपने शिशुओं का। ('सानो भूमि विसृजतां माता पुत्राय मे पयः। अथर्व १२/१/१०) भूमि अटल है, अपने शिशुओंके लिए सबकुछ सहन करती है। माताके आँचल की छायामें शिशु अपनेको सुरक्षित मानकर अन्नादि सुख़ का अनुभव करता है। संभवतः यह भावसे ही द्रवीभूत होकर ऋषियों ने कहा है- 'भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः' (अथर्व. १२/१/१२) ऋषियों का यह उद्‌गार भूमिरूपीमाताकी रक्षाके अन्तर्भाव में निहित है, जिसका मानवरूपी पुत्रने कई वंशावलियों तक निर्वाह किया है। भूमिकी उत्पत्तिके विषयमें बताया गया है कि -‘उत्पत्ति से पूर्व वह समुद्र के रूप में थी’। (अथर्व.१२/ १/८) सूर्य, चन्द्रमा, पर्जन्यसे महती दिव्य शक्तियाँ निरन्तर पृथ्वीकी रक्षा करती है। पृथ्वी रत्नगर्भा है-प्राणिमात्र के लिए उर्जाका महान् स्त्रोत है। विश्वंभरा, वसुधानीपृथ्वी, सृष्टिकी आधारभूत अग्निको धारण करती है। सुवर्णमय वक्षः स्थलवाली (१२/१/६) भूमि सबके लिए समान है, सबको समता का व्यवहार सिख़ाती है।

भक्त अपने आराध्य के प्रति दीनताका भाव प्रकट करके उनकी स्तुति करता है उसी तरह अथर्वाऋषि समस्त राष्ट्रके लिए पृथ्वी देवीसे कल्याण की स्तुति करते हुए कहते है - "भूतकालीन और भविष्यमें होनेवाले सभी जीवोंका पालन करनेवाली मातृभूमि हमें विस्तृत स्थान प्रदान करें। (१२/१/१) यह हमारी कामनापूर्ति

औरयशोवृद्धिका स्थान प्रदान करें।[6]हमारी पृथ्वी हमें श्रेष्ठ भोग्य पदार्थ और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हो।[7] हमारी जिस भूमिमें चार दिशाएँ और चार विदिशाएँ, धान, गेहूँ आदि पैदा करती है, जो विभिन्न प्रकारके प्राणधारियों और वृक्ष-वनस्पतियोंका पालन-पोषण करती है, वह मातृभूमि हमें गौ आदि पशु और अन्नादि प्रदान करनेबाली हो। (१२/१/४) पृथ्वी देवी हमारे ज्ञान-विज्ञान, शौर्य, तेज, वीर्य और ऐश्वर्यकी वृद्धि करनेवाली हो।[8]विश्वके सभी जीवोंका पोषण करनेवाली यह भूमि अग्रणी, बलशाली इन्द्रदेव तथा हम सबको अनेक प्रकारके धन धारण करानेवाली हो।[9] वह मातृभूमि सभी उत्तम, प्रिय तथा कल्याणकारी पदार्थोंसे हमें सुसम्पन्न करें तथा हमें ज्ञान वर्चस् और ऐश्वर्य प्रदान करें।[10] वह भूमि हमारे श्रेष्ठ राष्ट्रमें तेजस्विता बलवता बढ़ानेवाली हो।[11] जो भूमि हमें सभी प्रकारके अन्न, जल और दूध, घी इत्यादि प्रदान करती है, वह मातृभूमि हमारी तेजस्विता, प्रखरता को बढ़ाए।[12] वह पृथ्वी मातृसता द्वारा पुत्रको दुग्धपान कराने के समान ही अपनी (हम सभी) सन्तानों को खाद्य पदार्थ प्रदान करें।[13] यह धरती हमारी माता है और हम सब उसके पुत्र है।[14] वह वर्धमान भूमि हम सबका विकास करें[15] हमारे शत्रुओं का आप समूल नाश करें। (१/१२/१४) हे मातृस्वरूप भूमे ! सूर्य की किरणें हमारें निमित्त प्रजाओं और वाणीका दोहन करें। (१/१२/१६) वह मातृभूमि विद्या, शूरता, सत्य, स्नेह आदि सद्‌गुणोंसे पालित-पोषित, कल्याणकारी और सुख-साधनोंको देनेवाली है। (१/१२/१७) आप स्वयं स्वर्ण के समान तेज सम्पन्न है। हमें भी तेजस्वी बनाएँ, हममें परस्पर कोई द्वेष भाव न हों, हम सबके प्रिय हों। (१/१२/१८) भूमि हमें प्राण और आयु प्रदान करें। (१२/१/२२) आपके अन्दर विद्यमान श्रेष्ठ सुगन्धित औषधियों और वनस्पतियोंके रूपमें जो गन्ध उत्पन्न होती है, उस सुगन्धि से हमें सुरभित करें।[16] जिस भूमिके उपर शिलाखण्ड और पत्थर है, जिसके भीतर स्वर्ण-रत्नादि अमूल्य खनिज

पदार्थ है, उस धरती माँको हम नमन करते है।[17] पवित्र शक्तिसे हमको पावन करो, हमारी शुद्धताके लिए स्वच्छ जल प्रवाहति करो। (१२/१/३०) हे भूमे ! आपकी पूर्व-पश्चिम आदि चारों दिशाओं उपदिशाओं तथा नीचें और ऊपर की दिशाओंमें जो लोग विचरण करते है, वे सभी हमारे लिए कल्याणकारी हो। हमारा किसी प्रकार अधःपतन न हो। (१२/१/३१) हमारी आयुष्य-वृद्धिके साथ नेत्रज्योति (दर्शनेन्द्रिय)में किसी प्रकारकी शिथिलता न आएँ। सभी मनुष्योंकी आश्रयदाता भूमे, सुप्तावस्था में आप हमारा संहार न करें। (१२/१/३४) आपको खोदें, तो वे शीघ्र उगे बढ़े। अनुसन्धानके क्रममें हमारे द्वारा आपके मर्मस्थलोंको अथवा हृदयको हानि न पहुँचे। छ्हह ऋतुओके दिन-रात सभी तरहसे हमारे लिए सुखप्रद हो। (१२/१/३६) जहाँ (विद्वान, शूरवीर, व्यापारी, शिल्पकार तथा सेवक) ये पाँच प्रकारके लोग आनन्दपूर्वक निवास करते है। जिस भूमिमें निश्चित समय पर जलवृष्टि होकर अन्नादिका उत्पादन होता है, पर्जन्यसे जिसका पोषण होता है, ऐसी मातृभूमिके प्रति हमारा नमन है। (१२/१)४२)"

निधिं बिभ्रति बहुधा गुहा वसु मणिं हिरण्यं पृथ्वी ददातु मे ।

वसूनि नो वसुदा रासमाना देवी दधातु सुमनस्यमाना ॥ अ. १२/१/४४

अर्थात् "अपने अनेक गुह्य स्थलोंमें धन, रत्न आदि तथा सोना-चाँदी निधियोंको धारण करनेवाली पृथ्वी देवी हमारे लिए ये सभी खनिज-पदार्थ प्रदान करें। धनप्रदात्री, वरदात्री, दिव्यस्वरूपा पृथ्वी हमारे उपर प्रसन्न होकर हमें ऐश्वर्य प्रदान करें।" हे पृथ्वी! गाय के दूध देनेके समान ही असंख्य ऐश्वर्य हमारे लिए प्रदान करनेवाली बनें। (१२/१/४५) जो प्राणी हमारे लिए कल्याणकारी हों वे हमें सुख प्रदान करें। (१२/१/४६) सभी आततायीको हमसे पृथक् करें।

(१२/१/५०) वह पृथ्वी, हमें अपनी कल्याणकारी चित्तवृत्तिसे प्रिय धामोंमें प्रतिष्ठित करें। (१२/१/५२) यह पृथ्वी प्रसन्नता-दायी, अग्रणी, विश्वरक्षक, वनस्पतियों और औषधियोंका पालन करनेवाली हो। (१२/१/५७) शान्तिप्रद, सुगन्धि सम्पन्न, सुखदायी, अन्नको देनेवाली, पयस्वती मातृभूमि हमें उपभोग्य सामग्री और ऐश्वर्य प्रदान करनेवाली हो तथा हमारे पक्ष में बोलें। (१२/१/५९) आप मनुष्योंको दुःखोसे रहित करनेवाली वाञ्छित पदार्थोंको देनेवाली क्षेत्ररूपा और विस्तारवाली है। (१२/१/६१) हम दीर्घायुष्य को प्राप्त करते मातृभूमिके लिए हवि प्रदान करनेवाले बनें। (१२/१/६२)

'भूमे मातर्नि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठिम् ।

संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥' १२/१/६३

अर्थात् "हे मातृभूमे ! आप हमें कल्याणकारी प्रतिष्ठासे युक्त करें। ऐश्वर्य और विभूतिमें प्रतिष्ठितकरते हुए स्वर्गकी प्राप्ति कराएँ।"

भूमि सूक्तका स्तोत्र काव्यके रूपमें मूल्यांकनः

स्तोत्र काव्यका प्रथम लक्षण है– 'स्तुतिवर्णन' । यहाँ अथर्ववेदके पृथ्वीसूक्तमें अथर्वाऋषिनेपृथ्वी देवीके लिए प्रयोजे हुए प्रसन्नदायी, अग्रणी, विश्वरक्षक, धनप्रदात्री, वरदात्री, दिव्यस्वरूपा, आश्रयदाता, वर्धमान, मातृस्वरूपा, कल्याणकारी, स्वर्णमयी, हिरण्यवक्षा, वसुधानी, विश्वंभरा, अदिति, कामनाओं का दोहन करनेवाली, शान्तिप्रद, सुगन्धितसम्पन्न आदि प्रशंसामय संबोधन द्वारा पृथ्वी देवीकी स्तुतिकी है। ऋषिका आराध्य देवको उत्कृष्ट सिद्ध करनेका प्रयास दिखाई देता हैं।पृथ्वी देवीकी महत्ता बताते हुए विस्तृत स्थान प्रदान करनेकी ऋषिने याचना की है। ऋषि, देवीसे अन्न, घी, दूध, जल, गौ आदि पशु, औषधिय-रस, गोरस, खनिजपदार्थ, धन, रत्न, सोना-चाँदी इत्यादि भौतिक संपत्ति और ऐश्वर्य प्रदान करके प्राणियोंकोसुखी बनानेकी प्रार्थना करते है ।

स्तोत्रकाव्यमेंभक्त अपने आराध्य देवसे सुरक्षा और उद्धारकी याचना करता है, उसी तरह ऋषि अथर्वाकी पृथ्वीकी स्तुतिमें समस्त राष्ट्रके उद्धार और सुरक्षाकी याचना नज़र आती है। यहाँ ऋषिका पृथ्वीदेवीके प्रति आत्मनिवेदनके साथ विनम्रताके दर्शन होते है | ऋषि, पृथ्वी देवीकी अपार सत्ताका वर्णन करके जड़-चेतन सभी पर उसका प्रभुत्व सिद्ध करते हैं। जगह-जगह पर ऋषि पृथ्वी देवीकेऐश्वर्यका वर्णन करते समय ऋषिका दीनभाव व्यक्त होता हैं। उन पर विचरण करनेवाले दो और चार पैरोवालोकी आश्रयदाता पृथ्वी के प्रति अपराध भाव स्वीकार करते है | जिसमें ऋषिकी विनम्रता, आत्माभिव्यक्ति और दीनता व्यक्त होती है। अथर्वा ऋषि पृथ्वी देवीसे समस्त राष्ट्रके लिए क्षमायाचना,सुरक्षायाचना, दया-करुणायाचना और उद्धारकी याचना करते है | ऋषि,भूमिकी रक्षाके लिए आत्मबलिदान हेतु तैयार रहनेकी और हवि प्रदान करनेकी भावना व्यक्त करते हैं।

स्तोत्रकाव्यका नामाभिधान आराध्य देवके नाम परसे होता है, यहाँ इस सूक्तमें पृथ्वी देवीकी स्तुति की गई है, इसीलिए अथर्वाऋषिने 'भूमिसूक्त' शीर्षक यथार्थ ही चुना है। स्तोत्रकाव्य के अंतमें आराध्य देवके महिमाका वर्णन होता है, यहाँ अथर्वाऋषिने भी अंतिम पद्यमें देवीसे कल्याणकारी प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी प्रार्थनाकी हैऔर ऐश्वर्य व विभूतिमें प्रतिष्ठित स्वर्गप्राप्तिकी याचना की है। अथर्ववेदका यह ‘भूमिसूक्त’ भाव, भाषा और अभिव्यक्तिमें बहुत ही सरल है। प्रसादगुण, उदात्तभाव और काव्यत्व से युक्त है।

स्तोत्रकाव्यके सभी लक्षण यहाँ 'भूमिसूक्त' में भले ही न हो फिरभी ऋषिकीसमस्त राष्ट्रके लिए पृथ्वी देवीके प्रति अनन्य भक्ति भावसे की गई स्तुतिमें भक्तहृदय का भाव यत्र-तत्र दिखाई देता है। कहीं न कहीं स्तोत्रकाव्यके लक्षण इस सूक्तमें नज़र आते है।

पादटीप:-

१. ▪'महि स्तोत्रमव आगन्म' - ऋग्वेद : ३/३१/१४
▪अधि स्तोत्रस्य सख्यस्य - ऋग्वेद ५/५५/९
२. ▪अधा ह्यग्ने क्रतो र्भद्रस्य दक्षस्य साधोः । रथीऋतस्य बृहतो बभूथ - ऋग्वेद : ४/१०/१
▪ ररन्धि सवनेषु ण एषु स्तोमेषु वृत्रहन् । उक्थेष्विद्र गिर्वणः ॥ - ऋग्वेद : ३/४१/४
▪इन्द्रं सोमस्य पीतये स्तोमैरिह हवामहे। उक्थेभिः कुविदागमत् ॥ - ऋग्वेद ३/४२/४
▪ब्रह्म स्तोमं मधवा सोममुक्था योअश्मानं शवसा बिभ्रदेति ॥ - ऋग्वेद : ४/२२/१
▪अस्मा उ ते महि महे विधेम नमोभिरुने समिधोत हव्यैः।
वेदी सूनो सहसो गीर्भिरुक्थैरा ते भद्रायां सुमतौ यतेम ॥ - ऋग्वेद : ६/१/१०
३. प्रशस्तिः परवन्मर्मद्रवीकरण कर्मणः ।
वाची सुमित द्विधा सा च प्रेमोक्तिस्तुतिभेदतः ।
प्रेमोक्ति स्तुति पर्यायौ प्रियोक्ति गुणकीर्तनैः ॥ अग्निपुराण : ३४५/ ३-४
४. सर्वज्ञानगयो हि सः । मनुस्मृति : २/७
५. नास्तिको वेद निन्दकः। मनुस्मृति : २/११
६. पृथिवी नः प्रथतां राध्यतां नः ।। अथर्व : १२/१/२
७. सानो भूमि पूर्व पेये दधातु ॥ अथर्व : १२/१/३
८. भगं वर्चः पृथिवी नो दधातु ॥ अथर्व : १२/१/५
९. अथर्ववेद : १२/१/६
१०. अथर्ववेद : १२/१/७
११. अथर्ववेद : १२/१/८
१२. अथर्ववेद : १२/१/९
१३. अथर्ववेद : १/१२/१०
१४. अथर्ववेद : १२/१/१२
१५. अथर्ववेद : १२/१/१३
१६. अथर्ववेद : १२/१/२३

१७. अथर्ववेद : १२/१/२६
१८. अथर्ववेद : १२/१/३५

<u>**सन्दर्भग्रन्थाः**</u>

१ अथर्ववेदसंहिताः (भाग – २काण्ड 11से 20 तक) सम्पादकः वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीरामशर्मा आचार्य प्रकाशकः ब्रह्मवर्चस्, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार, (उत्तरांचल) आवृत्तिः सप्तम्, २००५

२. ऋग्वेद संहिता : (भाग -2 मंडल : ३,४,५,६) सम्पादक - वेदमूर्ति तपोनिष्ठ पं. श्रीरामशर्मा आचार्य, माता भगवतीदेवी शर्मा प्रकाशकः ब्रह्मवर्चस्, शांतिकुंज, हरिद्वार, आवृत्तिः द्वितीय, १९९५

३. अग्निपुराण : सम्पादक : तारिणीश झा, घनश्याम त्रिपाठी प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद, आवृति1986

४. काव्यप्रकाश : (हिन्दी व्याख्या) श्रीमम्माचार्यविंरचित सम्पादकः डॉ. नगेन्द्र, प्रकाशकः ज्ञान मण्डल लिमिटेड, वाराणसी, आवृत्ति :१९६०

५. मनुस्मृति : हरिदास संस्कृत ग्रन्थमाला २२६, सविमर्श 'मणिप्रभा' हिन्दी टीका सहिता, टीकाकार-पण्डित श्रीहरगोविन्दशास्त्री प्रकाशकः चौखम्बा सीरीज आफिस-वाराणसी, संस्करणः द्वितीय, संवत-२०२१

६. अमरकोश : नाम-लिंगानुशासन किंवा अमरकोश,युनि. ग्रन्थनिर्माण बोर्ड, गुजरात राज्य, अहमदाबाद, आवृत्तिः प्रथम, १९७५ प्रकाशक : जे. बी. सेंडिल

वैदिक साहित्य में नारी

Dr.Amisha Harshalbhai Dave
Assistant Professor
Shree Somnath Sanskrit University constituent Sanskrit College, Veraval

ऋग्वेद हमारा प्राचीन ग्रंथ है। ऋग्वेद में प्राचीनकाल से चली आने वाली आर्यनारी की सभ्यता और संस्कृति पर प्रकाश डाला गया है। कुछ विदेशी नारियां अपने सद्गुणों के कारण और मंत्रों का साक्षात्कार करनेवाली ऋषिकाओके रूप में प्रतिष्ठित हुई है। उनमें एक ऋषिका है अगत्स्यस्वसा। जो अगत्स्य की बहन और बन्धु, सुबंधु, श्रुतबंधु और विप्रबंधु की माता है, जो ऋग्वेद के दसवें मंडल के (10:60:6) मंत्र की दृष्ट्री है।

इक्ष्वाकु वंश में असमाति राजा थे। उनके बंधु, सुबंधु, श्रुतबंधु और विप्रबंधु ऐसे चार पुरोहित थे,जो गौपायनोके नाम से परिचित थे।[1] असमाति राजा के चार पुरोहित थे जिनको छोड़कर उन्होंने दूसरे मायावी पुरोहितों की पसंदगी की जिससे चार भाई गुस्सा हो गए और किरात और आकुलि जो मायावी पुरोहित थे जिसने अभिचारप्रयोग करके सुबंधु के प्राण ले लिया। इसलिए सुबंधु की माता असमाति राजा की स्तुति करती है।

यहाँ एक मंत्र के साथ तीन सूक्तोका कथावस्तु संकलित है। जिसमें देवता असमाति है, छंद अनुष्टुप है। दशम मंडल के 57 में सूक्तमें सुबंधु के ऊपर अभिचार का प्रयोग हुआ था वो संदर्भ दिया गया है। ये सूक्त के प्रथम मंत्र में संजिवनी विद्या और तीसरे मंत्र में प्रेतावाहनविद्या का उल्लेख किया गया है। ये सूक्त के देवता मन है।

जो व्यक्ति बिछड़ गई है उसको वापस लाने के लिए ये सूक्त का विनियोग कहा गया है।[2]

मा प्र गाम पथो वयं मा यज्ञादिन्द्र सोमिनः।

मान्तः स्थुर्नो अरातयः॥ (ऋ 10/57/1)

मनो त्वा हुवामहे नाराशंसेन सोमेन।

पितृणां च मन्ममिः॥ (ऋ 10/57/3)

यत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्।

तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवते॥ (ऋ 10/58/1)

दसम मंडल के 58 में सूक्तमें मृत सुबंधु के देह में इन्द्रिय के साथ मन फिर से शरीर में प्रवेश कर सके उसके लिए विधान कहा गया है। इस सूक्तके देवता मन है। और लिंगदेह के 17 तत्वों से मन प्रधान है।[3]

पुनर्नो असुं पृथिवी ददातु पुनर्वो देवी पुनरन्तरक्षिम्।

पुनर्नः सोमस्तन्वं ददातु पुनः पूषा पथ्यां इ या स्वस्तिः।

(ऋ 10/59/7)

दसम मण्डल के 59 सूक्तमें सोम और निऋति की स्तुति है। इस सूक्त में देवता सोम, निऋति, असुनीति है। निऋत्ति मृत्यु की देवी है। अशुनीति का अर्थ " जीवन का मार्गदर्शक" या "प्राणशक्ति" हो सकता है।[4] इस सूक्त के सातवे मंत्र में पृथ्वी, द्यौ, अंतरिक्ष को प्राण वापस देने के लिए प्रार्थना की गई है। सोम को देह देने के लिए, पूषा को मृतदेह में सूक्ष्मदेह प्रवेश करते समय मार्ग में बाधा न आए उसके लिए प्रार्थना की गई है।

अगस्त्यस्यनद्भयः सप्ती युनक्षि रोहिता।

पणीन्नक्रमीरभि विश्वान्नाजन्नराधसः। (ऋ 10/60/6)

दसम मंडल के 60 वें सूक्त में सुबंधु की माता राजा की स्तुति करती है। भाइयो के आनंद के लिए और धनप्राप्ति के लिए रोहितवर्ण के अश्व को जोड़ने के लिए कहा है। पणिओके पराभव के लिए बताती हैं। देवता असमाति है।[5]

ये चार सूक्तो में कथावस्तु ऐतिहासिक संदर्भ से संकलित है। सूक्त 59 में पुरोहित दो प्रकार के –(1) कुल पुरोहित, (2) भाव-पुरोहित। यजमान भाव-पुरोहित को बदल सकते थे, जिससे पुरातन और वर्तमान पुरोहितो में वैरभाव बढ़ता था। तृत्सुओके राजा सुदासने वशिष्ठ के स्थान पर विश्वामित्र को पुरोहित के स्थान पर नियुक्त करने पर वशिष्ठ ने विश्वामित्र की वाणी को हर लिया था। और विश्वामित्र ने ससर्परि वाक् प्राप्त की थी। ऐसे वशिष्ठ और विश्वामित्र की स्पर्धा वेद में प्रसिद्ध है।[6] सुबंधु को जिवित करने के प्रयत्न में प्रेतावाहन और मृतसंजिवनी विद्या बताई गई है। गरुड़पुराण में मृतात्माको यमलोक ले जानेवाले मार्ग को वर्णित किया गया है।[7] भागवत में भी धुंधुकारीको प्रेतावस्था में से मुक्त करने के लिए भागवतकथा कह गयी है। ऋग्वेद के प्रेत-पितृसूक्त (ऋ.10:14-18), यजुर्वेद के (अध्याय-19,32,35), सोमवेद मे (1/114, 80, 415, 528, 529, 530), अथर्ववेद में (18 वें कांड) पितृयज्ञ के पितृपिण्डयज्ञ के साथ संकलित है। इन सबका फलितार्थ ये है कि प्रेतावाहनविद्या ऋग्वेदकाल जितनी प्राचीन और सुज्ञात है।

अदिति

अदिति चौथे मंडल की एक मंत्र की दृष्ट्रि है। मित्रावरुण और अर्यमा की माता है।[8] इसलिए उसको राजमाता कहा गया है।[9] पौराणिक कथाओं में अदिति दक्षकन्या तथा कश्यप की पत्नी हैं। किंतु वेदों में उनको विष्णु की पत्नी कह गई हैं।[10] अदितिकी द्यौ तथा

पृथ्वी की एकरुप कल्पना की गई है।[11] कई जगह द्यावा पृथ्वी से भिन्न उल्लेख किया गया है।[12] ऋग्वेद और दूसरे ग्रंथों में उनको "गो" कहा गया है।[13] उषा को अदिति मुख कहा गया है।[14]

देवयुग में तीन लोक पर देवताओं का स्वामित्व था। उस समय पुत्र प्राप्ति के लिए एक पांव पर खड़े रहकर कठिन तपस्या की जिसके परिणाम भगवान विष्णु प्रसन्न हुए।[15] भगवान विष्णु को पाकर अदिति ने बारह पुत्रों को जन्म दिया। ये बारह आदित्य बारह मास के बारह सूर्य है। तैतिरीय संहिता में कहा गया है कि अदिति के आठ पुत्र हुए। उसमें से केवल सात पुत्रों को वे देवताओं के पास ले गयी। आठवां पुत्र विवस्वान् का त्याग किया। आठ पुत्र वो आठ 'वसु' हैं। अदिति, वरुण, मित्र और अर्यमा की माता देवमाता है। अदिति का भौतिक आधार असीमित क्षितिज है। और उसकी ओर आकाश के बीच में बारह आदित्य भ्रमण कर रहे हैं। पुराण में इस कल्पना का विस्तृतरूप से वर्णन मिलता है। कश्यप की दो पत्नियां-अदिति और दिति।

अदिति को ((4:18:7) की ऋषिका माना जाता है। जिसमें देवता इन्द्र और छन्द त्रिष्टुप है। ये संवाद-सूक्त है। इन्द्र, वामदेव और अदिति के बीच संवाद होता है। जिस तरह गाय बछिये को उत्पन्न करता है उस प्रकार अदिति ने इन्द्र को जन्म दिया। प्रथम मंत्र में मनुष्य की जन्म-पद्धति के बारे में कहा गया है।मनुष्य जन्म पाकर ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे अपने कुल और मातृभूमि का अपयश ना हो। इस मंत्र में सामाजिक और राष्ट्रीय महत्त्व देखने को मिलता है। चौथे मंत्र में आश्रित और आश्रयदाता दोनों का परस्पर प्रेम और वफादारी देखने को मिलती है। पांचवे मंत्रमें इन्द्र माता के गर्भ में हजारों मास रहा। और ये इन्द्ररूप सूर्य अत्यंत तेजस्वी होने के कारण माता के लिए भारी हो गया। अतः माता ने उसको गर्भ से बाहर फेंक दिया। ये वर्णन नोंधनीय है।इस तरह त्यक्त गर्भ जीवित रहकर,

विकसित होकर, जन्म लेकर महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करता है। सामान्य गर्भकाल से ज्यादा समय बीतता है इस बात का यहा समर्थन मिलता है। इन्द्र के जन्मसमय पर नदीयां हर्ष से कल-कल आवाज करने लगी। रामकृष्ण इत्यादि के जन्मसमय पर भी प्रकृतिने ऐसा प्रतिभाव दिया था। इस मंत्रमें "ऊल्ला" "हर्ष से आवाज करनेवाला" अर्थ में प्रयोजित है। श्रीहर्षके नैषधचरित्त में "ऊल्लु" शब्द प्रयोग ऐसे ही आता है।[16]

श्रीहर्ष बंगाल के निवासी थे वो मानते हैं कि दमयन्ती जब नल को वरमाला पहनाती हैं, तब विरांगनाओं ने 'ऊलूलु' शब्द किया था। 'उलूलु' आवाज़ गौड़देशों में स्त्रियां द्वारा मांगलिक प्रसंग में किया जाता था ऐसा नैषधके टीकाकार मानते हैं। बंगाल में आज भी यह परंपरा चालु है।[17] सातवे मंत्रमे इन्द्र की स्तुति है। देवको प्रसन्न करके अपना इच्छित प्राप्त कर सकते थे ऐसा स्पष्ट होता है। इन्द्रने वृत्र का वध किया था इसलिए ब्रह्महत्या का पाप लगा था। और नदियों ने वो पाप झाग के रूप में धारण किया। इस पर से जाना जाता है कि ऋग्वेदकालीन समाज में ब्रह्महत्या को बड़ा पाप माना जाता था।

अदिति को (10:72:1-6) की ऋषिका माना जाता है। जिसमें देवता विश्वदेवा और अनुष्टुप छन्द है। इस सूक्त में सृष्टि की उत्पत्ति का विस्तृत विवरण होने के कारण तत्त्वज्ञान विषय का मान सकते हैं। ऋग्वेद के पुरुषसूक्त में परमात्मा के विश्वरूप को दर्शाया गया है। पुराणो में वेद के ही सर्जन प्रक्रिया का उपबृंहण किया गया है।

पुराणो में सृष्टि के सर्जन के लिए अंभोद्वाद आधारशील बना है। एकांकी परमात्मा को एक से अनेक होने के भाव से जल का सर्जन किया। जलके सर्जन के बाद उसमें बीज रखा। वो बीज में से सृष्टि उत्पन्न हुई। ये बीज का विकास होने पर हिरण्यगर्भरूप अण्ड

का जन्म हुआ। संवत्सरपर्यंत तैरता रहा और पुरुष प्रजापति का जन्म हुआ। अण्ड तूटते उसके दो भाग हुए और पृथ्वी के बीच का भाग वो अंतरिक्ष। पुराणो में स्वयंभू प्रजापति वो ही हिरण्यगर्भ परमात्मा है। वो खुद प्रकट हुए इसलिए स्वयंभू कहलाए। इस सृष्टि को ब्राह्मी-सृष्टि कहते हैं। इस ब्राह्मी सृष्टि में से मानसी-सृष्टि का सर्जन हुआ।[18] तीसरे मंत्र में दिशाएं और वृक्षों उत्पन्न हुए ऐसा कहा गया है। दक्ष से अदिति और अदिति से दक्ष जन्मे यह बीजांकुर न्याय कहा गया है। चौथे मंत्र में ऐसा कहा गया है। पांचवे मंत्र में अदिति ने आदित्य को जन्म दिया ऐसा कहा गया है। आठवें मंत्र में अदिति सात पुत्रको लेकर देवो के पास गई और आठवां पुत्र मार्तंड को छोड़ दिया। प्रजा की उत्पत्ति और उनकी मृत्यु के लिए सूर्य को वापस ले आए और द्युलोक में धारण किया। एसे मनुष्यमात्र के जन्म-मरण शुरू हुए।

अपाला

अपाला आत्रेयी है। आत्रेयी अर्थात अत्रि गोत्रोत्पन्न, स्त्री अपत्य। भवभूति उत्तररामचरित में वाल्मीकि के आश्रम में लवकुश की सहाध्यायिनी के रूप में आत्रेयी का उल्लेख मिलता है।[19] आत्रेयी के दूसरे अर्थ के लिए “आ+त्रि”, अत्रि- तीन दिनके लिए स्पर्श करने के लिए अयोग्य रजस्वला स्त्री। रजस्वला स्त्री तीन दिन तक अस्पृश्य मानी जाती है।[20]

अपाला अत्रि ऋषि की कन्या है। उसके शरीर पर कोढ होने के कारण उसके पतिने उसका त्याग किया था अत: वो पिता के घर रहती थी। वहाँ रहकर इन्द्रको प्रसन्न करने हेतु उसने तपस्या प्रारंभ की। इन्द्र को सोम अत्यंत प्रिय है, इसलिए अपाला सोमवेल लाने के लिए नदी तट पर गई। वहाँ सोमवेल को मार्ग में चबाकर देखा।

सोमवेल चबाने की आवाज सुनकर इन्द्र वहाँ उपस्थित हुए और अपाला के पास सोम मांगा। अपाला ने इन्द्र को सोम दिया। अतः इन्द्र ने प्रसन्न होकर उसको रथ के आरे में से तीन बार निकलने के लिए कहां और उसकी रोगिष्ट त्वचा दूर करके रोग मुक्त किया।[21] परिणामस्वरूप उसको उसका दाम्पत्य जीवन पुनः प्राप्त हुआ।

अपाला को (8:92:1.7) मंत्र की ऋषिका माना जाता है। जिसके देवता इन्द्र है। इस सूक्त में अपाला के चरित्र-वर्णन के साथ शरीरदोषो को दूर करने के लिए यज्ञ और सोमप्रयोग का वर्णन आता है। धानयुक्त सक्तुमयी और पूरोडाशयुक्त सोमसामग्री का वर्णन है। यदि कोई कन्या किसी रोग के कारण निर्बल तथा निस्तेज होती है तो उसे विवाह के पूर्व सोमलता आदि रोगनाशक और पुष्टिकारक औषधियों के रस का सेवन करके प्रथम अपने आप को समर्थ बनाना चाहिए। ऐसा होने के बाद ही कन्या पति के स्वीकार के योग्य बनती है। सोमलता मुखमें चबाना होता है। सोमलता में पौष्टिक तथा दिव्य गुणवाले पदार्थों का मिश्रण है। सोमलता प्राणशक्ति के दाता है। सोम वैदिककाल से प्रसिद्ध है, जो औषधिराज कहलाता है।[22] चरक संहिता में दिव्यौषधि में सोम का वर्णन दिया गया है।[23] चरक संहिता में कौन-से कारणों की वजह से कुष्ठरोग होता है वो बताया गया है। दूध, दही, परस्पर विरुद्ध आहार से, पतले, चीकने और भारी पदार्थ खाने से, मल-मूत्र के रोकने से, ज्यादा खाकर दण्ड इत्यादि करने से, ज्यादा खाकर धूम्र और अग्नि के पास रहने से, पसीने में तुरन्त नाहकर, ज़्यादा ठंडा पानी पीने से, ज्यादा मेहनत करके तुरन्त न्हाने से, अजीर्ण में खाने से कुष्ठरोग होता है।[24]

चरक संहिता के सातवें अध्याय में कुष्ठरोग दूर करने के लिए विविध प्रकार के लेप, तेल और घी का निर्देश किया गया है।[25] सुश्रुतसंहिता में भी नव-दश अध्याय में कुष्ठरोग से दूर करने के उपाय दिये गए हैं। जिसमें सुरा, अवलेह, पूर्णक्रिया, अयस्कृति, खदिर

विधान, अमृतवल्ली रसका समावेश होता है।[26]ऐसे यहां इस सूक्त में कैसी कन्या के साथ विवाह करना चाहिए और रोगिष्ट कन्याएं देवताओको प्रसन्न करके अपना रोग दूर करती थी वो देखने को मिलता है। ऋग्वेद्‌कालीन समाजका स्पष्ट प्रतिबिम्ब यहां मिलता है।

ऐसे यहां ऋग्वेद्‌कालीन अगस्त्यस्वसा, अदिति, अपाला ऋषिका के बारे में और जिस मन्त्र की वो दृष्ट्री रही है वो सूक्तो की विस्तृतरुप से चर्चा की गई है।

पादनोध

1. ऋग्वेद संहिता.सा.vol-4-page-470
   Vedic Index-MCdonell & Keith, vol-1,P.46,47
2. ऋग्वेद- 10/57/1
3. ऋग्वेद- 10/58/1
4. ऋग्वेद- 10/59/7
   The Hymn of the Rugveda-Griffith-vol-2,page-462
5. ऋग्वेद- 10/60/6
6. ऋग्वेद- 3/53, 7/18,33,82
7. "श्रीमद्भागवतान्मुक्तिः सप्ताहं वाचनं कुरु।"
   "श्रीमद्भागवतमहात्म्ये अध्याय-5-पृ.39-42, गीताप्रेस।
8. ऋग्वेद- 8/4/79
9. ऋग्वेद- 2/27/7
10. वा.सं. 29/60, तै.सं. 7/5/18
11. ऋ. 1/72/9 अथर्व- 13/1/38
12. ऋ. 10/63/10
13. ऋ. 7/82/10
14. ऋ. 1/15/3, 8/10/15, 10/11/1

15. म.अनु.-93
16. नैषधचरित- 14-51
17. विवाहे$प्युत्सवे स्त्रीणां धवलादिमंगलगीतिविशेषो गौडदेशे उलूलु: उध्यते।– नैषधचरित 14-51 श्रीमन्नारायणरचितया नैषधीयप्रकाशाख्यया व्याख्या समुल्लसितम्। महामहोपाध्याय दाधीचपण्डित शिवदत्तशर्मणा टीकान्तरीयटिप्पण्योपस्कृत्य संशोधितम्। पृ,310
18. પુરાણ-વિમર્શ આચાર્ય બલદેવ ઉપાધ્યાય-પૃ.274
19. उत्तररामचरितम्-भवभूति-Edited by J. M. Ashat अंक-2
20. प्रथमे$हनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।
    तृतीये रजनी प्रोक्ता चतुर्थे$हनि शुध्यति॥
    अंगिरास्मृति- श्लोक-नं-38, धर्मशास्त्रसंग्रह- पृ.216
21. ऋग्वेद्संहिता-8/91 सा.भा.पृ.903
22. द्रव्यगणु विग्यान (બૃહત્રયીના દ્રવ્યો)-પાંચમો ભાગ,आचार्य प्रियव्रत शर्मा-पृ. 295
23. सोमो नामौषाधिराज: पंचदशपर्वा स सोम इव हीयते वर्धते च। ચરકસંહિતા-ચિ. 1/4/7- પૃ.378
24. ચરકસંહિતા-અધ્યાય-7
25. ચરકસંહિતા-અધ્યાય-7, ત્રીજો ખંડ,પૃ. 450
26. સુશૃતસંહિતા-અધ્યાય-9,10

नागपूरविदुषि श्रीमती दुर्गाताई पारखी

डॉ. अबोली व्यास
एल.ए.डी महाविद्यालय, नागपूर, महाराष्ट्र
8806690900, abolirajnish@gmail.com

संस्कृत साहित्य काअनेक दृष्टि से अध्ययन किया जाता है। संस्कृत साहित्य का हर एक वैशिष्ठ्य रसिकों को आनंद प्रदान करने वाला, आकर्षित करने वाला, अभ्यासको को प्रेरित करने वाला है। संस्कृत साहित्य में रहने वाले रस, पात्र, उनके स्वभाव विशेष, भाषा, तत्कालीन शिष्टाचार, हर एक कवि की जीवन विषय दृष्टि, साहित्य शास्त्रीय दृष्टि से किया गया काव्य का मूल्यमापन ये सारी चीजे वशिष्ठ्य पूर्ण है। इसीलिए अभ्यसनीयभी है। शास्त्रीय ग्रंथ ज्ञान प्राप्त करने वालों के लिए अभ्यास के विषय है। इतना ही नहीं छोटे बच्चों के लिए पंचतंत्र, नीति शतकम् जैसे पुस्तक संस्कृत भाषा का अपना अलग वैशिष्ट्य है। संस्कृत भाषा का विविध अंगों से अभ्यासआज तकप्रचुरमात्रा में हुआ है, और आज भी हो रहा है। इसका कार्य नागपुर में भी अविरत शुरू है। संस्कृत साहित्य निर्मिती के कार्य में नागपुरअग्रेसर है। नागपुर का संस्कृत सेवा का इतिहास मनोज्ञ है। इस सुनहरे इतिहास के पन्नों कोलिखने में नागपुर की महिलाएं अग्रेगण्य है। डॉलीना रस्तोगी, डॉ शारदा गाडगे, श्रीमती दुर्गा पारखी, डॉ वीणा गानु, डॉ हंसश्री मराठे, डॉ स्मिता होटे,स्व.ललिता शास्त्री आर्विकर, डॉ विभाग क्षीरसागर,डॉ मंजूषाचन्ने इन सभी विदुषियों का सहभागउल्लेखनीय है। प्रस्तुत लेख में केवल नागपुर में स्थितश्रीमती दुर्गा ताई पारखीमहोदया की रचनाओंका विवेचन करने का मानस किया है। ।

श्रीमती दुर्गा ताई पारखीमहोदया ने नागपुर विद्यापीठ की

वाङ्मय पारंगत परीक्षा प्रथम क्रमांक से उत्तीर्ण की हुई है। आप एम्.फिल् डिग्री से सम्मानित हुई है। श्रीमतीदुर्गा ताईपारखी नागपूर स्थित विद्यालयकी निवृत्त शालेय शिक्षिका है। आप अध्यापन कार्य में बहुत ही कुशल है। नागपुर विद्यापीठ और कालिदास संस्कृत विश्वविद्यालय इन दोनों से ही आप संबंध है। प्रौढ जनों के लिए संभाषण वर्ग का आयोजन आप हमेशासेही करती आई है। आप छात्रप्रिय शिक्षिका है। संस्कृत का प्रचार करने में आप अग्रेसर है। आपको महाराष्ट्र शासनने 2016 में कालिदास संस्कृत साधना पुरस्कार से सम्मानित किया गया है।

श्रीमती दुर्गा पारखीमहोदया की संस्कृति रचनाएं

- प्रहेलिका शतकम्
- बालनाट्यवल्लरी
- कथासुमनसौरभम्
- काबुलीवाला

अपनी इन संस्कृत रचनाओं से श्रीमती दुर्गा ताई पारखी इन्होंने संस्कृत सरस्वती का गर्भगृहपरिपूर्ण किया हुआ है। इनमें सेप्रहेलिकाशतकम् यहस्फुट काव्य है। यह पुस्तकविश्व-संस्कृत-पुस्तक मेला बेंगलुरुयहां पर 2011 साल में प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक का विशिष्ट है, छोटे बच्चों को संस्कृत भाषा की तरफ खींचना और संस्कृत भाषा पर प्रेम निर्माण करना। इसी हेतु सेडॉक्टर पारखी नेप्रहेलियों की रचना की हुई है। कहीं-कहीं एक ही उत्तर की दो या तीन पहेलीया का भी इन्होंने इस पुस्तक में रची हुई है में इस पुस्तक में पहेलियों के उत्तरऔर कठिन शब्दों के अर्थसंस्कृत, मराठी, हिंदी और इंग्लिश इन चारों ही भाषाओं में दिए हुए हैं। हर एक पहेलीएक विशिष्ट छंद में लिखी हुई है। प्रहेलिका केबाजू में हीछंद का नाम भी

दिया हुआ है। पहले छह प्रहेलिकाएंमंगलाचरण की है। शुरू शुरू में बहुत ही आसानऔर बाद में थोड़े से कठिनऐसे इन पहेलियों का क्रम है। यह पुस्तक पारखीमहोदया नेअपने चाचा चाचा और पिताजीइनको समर्पित किया हुआ है। इसकी भाषासुबोध सरल है। प्रत्येक प्रहेलिका मेंदिए हुए छंद पर सेलेखिका छंद पर प्रभुत्व रखती है, यह स्पष्ट होता है। संस्कृत साहित्य मेंप्रहेलिकायह काव्य प्रकार कुछ नया नहीं है। लेकिनआज केयुग कोदेखते हुएनए-नएवस्तुओं पररची गई हुईयह प्रहेलिकाएंबहुत हीमनोरंजक है। इन प्रहेलिकाओं की वजह सेबच्चे आसानी से संस्कृत भाषा की और खींचे चले आते हैं। बच्चों की मानसिकता को देखते हुएडॉ पारखी ने यहउपक्रम किया हुआ है। प्रहेलिका यहऐसा काव्य प्रकार हैजो हर उम्र मेंमनोरंजक हीलगता है।डॉ लीना रस्तोगी महोदया ने पारखी महोदया के लिए प्रहेलिका शतकम इस स्फुट काव्य के प्राक्कथन में कहा है कि-

शैशवमिति निष्पापा रम्या चेतोहरा दशा।
शिशूनां रञ्जनं नाम सत्कृत्यं मङ्गलं परम् ॥
अहो किन्तु महान् कोऽयं कालस्य महिमा यथा।
व्यामूढः शिशुवृन्दोऽयं वैपरीत्यं भजत्यहो ।
माध्यमैर्दृश्यश्राव्यैस्ते निर्जिता इव बालकाः।
काव्यशास्त्रविनोदेन नेहन्ते कालयापनम् ।।
तेषां बुद्धिविकासार्थं प्रत्युत्पन्नमतिप्रदा।
प्रहेलिकारत्नमयी माला ह्येषा विराजते ।।
अष्टोत्तरशती माला मङ्गलाचरणैर्युता ।
भाषाज्ञानेऽपि च्छात्राणां रुचिं संवर्धयेत्तराम् ॥

एतादृशीः कृतीर्बह्वीः सरसा सुमनोहराः ।

दुर्गाभगिनिकाऽस्माकं निर्मिमीतां निरन्तरम् ॥ इति शम् ।

पारखी महोदया कीदूसरी संस्कृत रचना है कथा सुमनसौरभम् । यह कथा संग्रह उन्होंने अपने पिताजी और दादादादी -को अर्पण किया हुआ है । इसके मुख्य पृष्ठ पर फूल का चित्र है तो उसकेपृष्ठ भाग पर लेखिका इनका खुद का परिचय दिया हुआ है । यह कथा संग्रहविश्व संस्कृत मेला जानेवारी 2011 में प्रकाशित हुआ हुआ है । इस कथा संग्रह में कुल मिलाकर 11 कथाएं हैं । प्रत्येक कथा अलगअलग विषयों के ऊपर लेकिन बहुत ही आसान भाषा में -लिखी हुई है । रूप वर्ण से भिन्न होने के कारण यहकथासंग्रह बहुत ही चित्ताकर्षक है । कहीं परफूलों को समेटेते हुए फूलों से भी कोमल हृदय तो कहीं अपने लड़के के लिए वधू संशोधन करने वाली मां का प्रबल मन यहां पर वर्णित किया हुआ है । हनुमान के जैसे भक्ति करनी चाहिए ऐसा संदेश भी कहींकहीं पर दिया हुआ है- । तो कहीं-कहीं पश्चाताप में दग्ध मन भी यहां पर वर्णित किया गया हुआ है । यह सारी कथाएं बहुत ही सुंदर है । इन सारी कथाओं की भाषा बहुत ही सरल और आसान है । कभीकभी कथाओं में संभाषण भी लिया -हुआ है । लेखिका को अलंकार का आकर्षण बिल्कुल भी नहीं है । लेखिका कहीं पर भी बड़ेबड़े परिचय-, प्रदीर्घ वर्णन, लंबेलंबे वाक्य-, बड़ेबड़े समास-नहींलेती है । लेखिका का निरीक्षण बहुत ही सूक्ष्म है और उनका संस्कृत भाषा के ऊपर विलक्षण प्रभुत्व है ऐसा यह कथा संग्रह पढ़ने के बादप्रकर्ष रूप से महसूस होता है ।

अनूदित संस्कृत रचना में भी पारखी महोदयाअग्रगण्य है । काबुलीवाला रूपक श्रीमती दुर्गा पारखी महोदया नेसंस्कृत भाषा में अनूदित किया हुआ है । इसके मूल लेखक महाकवि रवींद्रनाथ टैगोर है । काबुलीवाला यह गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर इनकी कादंबरी है । जो

अत्यंत लोकप्रिय है। इस कादंबरी का मराठी मेंअनूवाद नागपुर के एक श्रेष्ठ नाट्य कर्मी श्री रंजन दार्व्हेकर इन्होंने किया हुआ है। इस मराठी अनुवाद का संस्कृत अनुवाद और दुर्गा पारखी महोदय ने किया हुआ है। काबुलीवाला इसका मूल कथानक ऐसा है कि, कोई एक व्यापारी खुद का काबूल देश छोड़कर भारत में उपजीविका के लिए आता है। औरअंगूर आदि फल बेचता है। जिसकी माँ नही है और जो अपने बच्ची की याद मे दुखी है ऐसा काबुलीवाला और उसका पितृ हृदय यहां पर वर्णित किया गया हुआ है। शुरू में काबुलीवाला की तरफ अपराधी के नजर से लोग देखते हैं लेकिन उसके बाद में पितृ हृदय उसका जानकारउसे अपनाते हैं। यह सारा कथा भाग इस काबुलीवालारूपक में आया हुआ है। इस रूपक कोप्रकाशितश्री अरविंद पारखी जी ने किया हुआ है। बाल साहित्य होने की वजह से इसमें कहीं पर भी क्लिष्टता नहीं है। भाषा के परिवर्तन के हिसाब से कहींकहीं पर भाव का भी - परिवर्तनहोनासहजता से आ जाता है। लेकिनऐसा कुछ भी इस अनूदित रूपक मैं नहीं हुआ है। मुष्टा- मुष्टी, केशा-केशी, शब्दा-शब्दी ऐसे शब्दों का प्रयोग इसमें आता है। कहीं कहीं पर मिने-मिनटले इस प्रकार के मराठी शब्दों का उपयोग भी यहां पर दिखता है।

श्रीमती दुर्गा पारखी महोदया का बाल नाट्यसंग्रह है, बालनाट्यवल्लरी। यह पुस्तक संस्कृत भारती ने प्रकाशित किया हुआ है। इस नाट्य संग्रह में कुल मिलाकर 30 बाल नाटक है। छात्राओं को उद्देश्य कर कर इन नाटकों की रचना की गई हुई है। छात्रों को नीति मूल्य सीखाने काकवयित्री का यह प्रयास बहुत ही स्तुत्य है।

श्रीमती दुर्गा महोदया की इन सारी रचनाओं का अभ्यास करने के बाद कुछ वैशिष्ठ्य दृष्टि पथ पर आए। वह ऐसे-

श्रीमती दुर्गा महोदया की कही पर भी कठिन भाषा का उपयोग नहीं करती है। कथा में आने वाले मनःस्थिती के वर्णन से महोदया की संवेदनशीलता का भी परीचय होता है। संस्कृत का प्रचार करना यह उनकी प्राथमिकता होने की वजह सेवह अपनी हर रचना में बहुत ही सरलता का प्रयोग करती है। बच्चों केमानसिक विकास काअभ्यास करते हुएकवयित्री ने बाल साहित्य की रचना अधिक की हुई है। काबुलीवालारूपक का अनुवाद कर कर अनुवाद कार्य में भी आप अग्रेसर है यह सिद्ध होता है। प्रहेलिका शतकम में आने वालेछंदों केनाम सेकवयित्री काछंदों के ऊपरहोने वाला प्रेम भी स्पष्ट होता है। कवियत्री की सारी रचनाएं आबल वृद्धो के लिए, संस्कृत के प्रचार और प्रसार के लिएबहुत ही उत्तम है। इसी प्रकार की रचनाएंवह और भी करें, रचनाओं के लिए ईश्वर उनको शक्ति देऔर लंबी उम्र देऐसीईश्वर को प्रार्थना करते है।

संदर्भ ग्रंथ-

- प्रहेलिका शतकम्, (श्रीमती दुर्गाताई पारखी)
- बालनाट्यवल्लरी,(श्रीमती दुर्गाताई पारखी)
- कथासुमनसौरभम्, (श्रीमती दुर्गाताई पारखी)
- काबुलीवाला,(श्रीमती दुर्गाताई पारखी)
- नागनगरीतील संस्कृत साहित्य, (डॉ. अबोली र. व्यास)

वैदिक काल में स्त्रीविमर्श

डॉ. चन्द्र भूषण
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत विभाग
एस एल के कालेज, सीतामढ़ी
दूरभाष - 9934760505

सारांश

वैदिक काल को नारी की स्थिति का स्वर्णिम काल कहा जाता है। इस काल में नारी पुरुष के साथ समान रूप से समाज के उत्थान में सहायक थी।नारी को समाज में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त था तथा उसे लक्ष्मी, देवी, साम्राज्ञी आदि सम्मानसूचक नामों से अभिहित किया जाता था। विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना नारी का सृष्टि के विकास क्रम में प्रभूत योगदान है अतएव ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्मा की संज्ञा से विभूषित किया गया है- **"स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"**। इस काल में कन्या को समाज में पुत्र के समान आदर प्राप्त था।कन्या को पुत्र के समान शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। शिक्षा के प्रारंभ से पूर्व पुत्री को भी उपनयन संस्कार से संस्कारित कर अध्ययन करने का अधिकारी बनाया जाता था।वैदिक काल में नारी एवं पुरुष दोनों का संस्कारों से संस्कृत होना परम आवश्यक माना जाता था। वैदिक युग में बौद्धिक क्षेत्र में नारी की उत्कृष्ट स्थिति दृष्टिगोचर होती है।अनेक मंत्रद्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख वैदिक संहिता में प्राप्त होता है।ऋषियों की भांति ऋषि कन्याएं भी ऋचाओं का साक्षात्कार करती थी।विवाह के क्षेत्र में भी नारी की स्थिति उत्कृष्ट थी। बाल विवाह की प्रथा नहीं थी कन्याओं का विवाह परिपक्वावस्था में होता था। वे विवाह के संबंध में स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थीं।

परिवार में उनका अत्यंत उच्च एवं प्रतिष्ठित स्थान हुआ करता था। परिवार की बड़ी वधू समस्त गृह प्रबंध में प्रधान संचालिका हुआ करती थीं। घर के समस्त कार्य तथा दायित्व उसके संरक्षण में तथा उसकी इच्छानुसार संपादित किए जाते थे।परिवार के समस्त सदस्य उनका आदर करते थे और आज्ञा का पालन करते थे। वैदिक युग में नारी को पत्नी के रूप में बहुत आदर प्राप्त था। आर्य पत्नी को घर मानते थे। पत्नी पुरुष की अर्धांगिनी होती है अतः पत्नी के बिना पति अपूर्ण है। तत्कालीन महिलाएं पति के साथ युद्ध में भी जाती थीं और उनके रथों का संचालन करती थीं। इसके अतिरिक्त दौत्य कर्म में भी निपुण हुआ करती थीं।

कुंजी शब्द - साम्राज्ञी, स्त्री शिक्षा, अर्धांगिनी, ऋषि कन्याएं, मंत्रद्रष्टा,दौत्य कर्म ।

परिचय

भारतीय संस्कृति सदैव ही **"यत्रनार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:"**सिद्धान्त का अनुगामी रही है। इसकी जड़ें हमें वैदिक ऋचाओं में प्राप्त होती हैं। वैदिक काल को नारी की आदर्श स्थिति का स्वर्णिम काल कहा जाता है।इस काल में नारी पुरुष के साथ समानरूप से समाज के उत्थान,परिष्कार तथा संस्कार में सहायक थी। नारी को समाज में अत्यन्त सम्मान एवं उच्च स्थान प्राप्त था तथा उसे लक्ष्मी,देवी,साम्राज्ञी[1],महिषी आदि सम्मानसूचक नामों से अभिहित किया जाता था|वह शरीर में नाड़ी की भाँति समाज मेंमहत्त्वपूर्ण स्थान रखती थी।[2]वह विधाता की सर्वोत्तम परिकल्पना

---

1 ऋग्वेद 10.85.46

"साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रां भव।

ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु"।।

2 शर्मा, डा. मालती – वैदिक संहिताओं नारी, पृष्ठ 1

के रूप में समादृत थी और उसका सृष्टि के विकास- क्रम में प्रभूत योगदान है।इसलिए बृहदारण्यकोपनिषद् में उसे सृष्टि की रिक्तता को पूर्ण करने वाली कहा गया है – **"अयमाकाश:स्त्रिया पूर्यते"**।[1]ऋग्वेद में स्त्री को ब्रह्मा की संज्ञा से विभूषित किया गया है – **"स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"**[2]

ऋग्वैदिक समाज में नारी पुरुष के समक्ष समानता का स्थान रखती थी[3]। पुरुष के साथ नारी की समता अर्धांगिनी शब्द से स्पष्टतया व्यक्त होती है। दंपति शब्द भी नारी एवं पुरुष के समान रूप से स्वामी होने का संकेतक है। वैदिक साहित्य में वर्णित नारी एवं पुरुष की उत्पत्ति की कथा उनके मध्य समत्व भाव की द्योतिका है[4]।

ऋग्वेद काल में पुत्री को समाज में पुत्र की ही भाँति समान आदर प्राप्त था इसका संकेत हमें ऋग्वेद के एक मन्त्र में मिलता है जिसमें दम्पति अपने पुत्र पुत्रियों के दीर्घायु होने की कामना करता है।[5]एक अन्य ऋचा में माता – पिता के वक्ष पर लेटी हुई कन्याओं का वर्णन प्राप्त होता है जो कन्याओं के प्रति अपार[6]स्नेह का साक्षी है। यद्यपि कतिपय स्थानों पर यथा अथर्ववेद संहिता[7] तथा ऐतरय

---

1 बृहदारण्यकोपनिषद् - 1.4.3

2 सोती वीरेंद्र चंद्र, - 'भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व', पृष्ठ 83

3 Upadhyay H C, "Status of women in India" p39

4 शतपथ ब्राह्मण – 14,4,2,1,5

5 ऋग्वेद – 8.31.8

6 ऋग्वेद – 3.31.1-2

7 अथर्ववेद – 6.11.3 –
"प्रजापतिरनुमतिः सिनीवल्यचीकलृपत् ।
स्त्रेषुयमन्यत्र दधत् पुमान् समु दधदिह"।।

ब्राह्मण[1] में अवश्य कन्या के प्रति उदासीन दृष्टिकोण प्राप्त होता है तथापि इन अल्प संकेतों से हेय दृष्टिकोण की पुष्टि नहीं होती।अपितु बृहदारण्यकोपनिषद् में विदुषी पुत्री की प्राप्ति की कामना की गई है[2] तथा उसके निमित्त पूजा – पद्धति का वर्णन है ।

वैदिक काल में स्त्री शिक्षाएवं संस्कार

वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा का पर्याप्त प्रचार-प्रसार था। कन्या को पुत्र की भाँति समान शिक्षा-दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार था।[3] शिक्षा के प्रारंभ से पूर्व पुत्री को भी उपनयन संस्कार से संस्कारित कर अध्ययन करने का अधिकारी बनाया जाता था। वे गुरुकुल में रह कर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए यज्ञोपवीत, मौञ्जी, मेखला तथा वल्कल वस्त्र धारण करते हुए शिक्षा प्राप्त करती थीं। **यमस्मृति** में इसका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है-

पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धमिष्यते।

अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा ।।[4]

---

1 ऐतरेय ब्राह्मण – 33.1 – “कृपणं हि दुहिता ज्योतिर्हि पुत्रः”

2 बृहदारण्यकोपनिषद् - 4.4.18 –
“अथ यः इच्छेद् दुहिता मे पण्डिता जायेत ।
तिलौदनो पाचयित्वा अश्नीयातामिति ।।“

3 Prabhu P.H. – “Hindu Social Organization” p-28
“So far as education was concerned the position of women was generally not unequal to that of men. Women had similar education as that of men. She took part in philosophic debates like men.”

4 यम – वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, भाग 1-2, पृष्ठ 402

इस निमित्त यजुर्वेद में कन्याओं को सुशिक्षितकरने हेतु उपदेश भी प्राप्त होता है-

चिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद।

परिचिदसि तया देवतयाङ्गिरस्वद् ध्रुवासीद।।[1]

अथर्ववेद में एक स्थान पर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए विद्या ग्रहण करने वाली कन्याओं द्वारा शिक्षा की परिसमाप्ति पर योग्य वर को प्राप्त करने का उल्लेख प्राप्त होता है - **ब्रह्मचर्येणकन्या युवानं विन्दते पतिम्।**[2]

वैदिक संहिताओं में यत्र तत्र अनेक प्रमाण प्राप्त होते हैं यथा बह्वृची(संहिताओं के अधिकाधिक मन्त्रों की पंडिता, कठी(कठ शाखा का अध्ययन करने वाली), आपिशला (आचार्य आपिशलि के व्याकरण की अध्ययनकर्त्री) इत्यादि जिनसे नारी द्वारा उच्च वैदिक शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार की पुष्टि होती है। वेद में स्त्री को चतुष्कपर्दा अर्थात् धर्म,अर्थ, काम और मोक्ष- इन चार तत्वों की ज्ञाता अथवा चतुष्कोण वेदी की निर्माण - प्रक्रिया को समझने वाली कहा गया है[3]।

वैदिक शिक्षा के अतिरिक्त वे युद्धविद्या, परा एवं अपरा विद्या, गणित, शिल्प,नृत्य, गीत-संगीत इत्यादि विद्याओं के अध्ययन का अधिकार रखती थीं। वैदिक सूक्तों में विष्पला, वध्रिमती,

---

1 यजुर्वेद – 12.53

2 अथर्ववेद – 11.5.18

3 ऋग्वेद – 10.114.3 –
"चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतपतीका वयुनानि वस्ते।
तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतुर्यत्र देवा दधि"।।

मुद्गलानी[1]आदि महिला योद्धाओं का वर्णन मिलता है। ऋग्वेद में नृत्य संगीत में कुशल नारियों का वर्णन भी प्राप्त होता है[2]।

वैदिक काल में नारी एवं पुरुष दोनों का विभिन्न धार्मिक संस्कारों से सुसंस्कृत होना परम आवश्यक माना जाता था। कतिपय संस्कार जो आज मात्र पुरुष वर्ग के लिए ही आरक्षित हो गए हैं उस काल में नारी वर्ग के लिए भी विधेय थे। कन्या की शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण होने के कारण उनका उपनयन संस्कार से संस्कारित होना आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य भी था। कन्याएं यज्ञोपवीत धारण कर ज्ञानार्जन हेतु गुरुकुलों में निवास करती थीं। यज्ञोपविता नारी का उल्लेख हमें ऋग्वेद संहिता[3]में प्राप्त होता है। अथर्ववेद संहिता भी नारी के उपनयन एवं विद्या अध्ययन के अधिकार का समर्थन करती है।

वैदिक युग में बौद्धिक क्षेत्र में नारी की उत्कृष्ट स्थिति अनेक साक्ष्यों द्वारा प्रमाणित होती है। तत्कालीन अनेक मंत्र द्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख वैदिक वाङ्मय में प्राप्त होता है। ऋषियों की भाँति ऋषिकाएं (ऋषि कन्याएं) भी ऋचाओं का साक्षात्कार करती हुई दृष्टिगत होती हैं जो इस तथ्य का पोषक है कि नारियों को वेद मन्त्रों के अध्ययन एवं सृजन से विरत नहीं रखा जाता था।उस काल में नारी जीवनपर्यन्त नैष्ठिक जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मवादिनी रहने के

---

1 ऋग्वेद 10.102

2 ऋग्वेद 1.92.4
विमल चन्द्र पाण्डेय – “प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास”, पृष्ठ 111 से उद्धृत -

3 ऋग्वेद 10.109.4 –
देवा एतस्यामवदन्त पूर्वे सप्त ऋषयस्तपसे ये निषेदुः।
भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता दुर्धां दधाति परमे व्योमन् ।।

लिए पूर्ण स्वतंत्र थी। उस काल में स्त्रियों के दो भेद प्राप्त होते हैं- **ब्रह्मवादिनी** एवं **सद्योवाह**[1]। सद्योवाह वे स्त्रियां होती थीं जो अपने ब्रह्मचर्याश्रम पर्यंत विद्या ग्रहण करने तथा वेदाध्ययन करने के लिए अधिकृत थीं ताकि विवाहोपरान्त वे विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कार एवं पूजा पाठ संपन्न करके अपना दायित्व पूर्ण कर सके। ब्रह्मवादिनी नारियां शिक्षा के सर्वोच्च शिखर पर जाने हेतु स्वतंत्र थीं। वे वैदिक ऋचाओं के अध्ययन के साथ-साथ मंत्रदर्शन, ऋचासृजन,काव्य-रचना, मीमांसा जैसे गूढ़ विषयों के अध्ययन हेतु अपना पूरा जीवन समर्पित करती थीं। ऋषिकाओं की पदवी नारी समाज के लिए सुलभ थी क्योंकि वैदिक संहिता काल में मंत्रद्रष्ट्री नारियां यथा अदिति, इंद्राणी, लोपामुद्रा, सिकता-निवावरी, जूहु,सूर्या-सावित्री,रोमशा-कक्षीवान्,वाक्-आम्भृणी,शची-पौलोमी, शाश्वती-आङ्गिरसी, घोषा-कक्षिवती,श्रद्धा - कामायनी,मैत्रेयी इत्यादि का उल्लेख प्राप्त होता है जिनके द्वारा विभिन्न ऋचाएं साक्षात्कृत हैं। सुशिक्षित नारियां पुरुषों की भाँति अध्यापन कार्य करते हुए अध्यापिका, आचार्या, उपाध्याया,उपाध्यायी आदि गरिमामय पदों को सुशोभित करती थीं अतः शिक्षा के क्षेत्र में उन्हें पूर्ण स्वतन्त्रता एवं समान अधिकार प्राप्त थे[2]।

---

1 हारीत – वीरमित्रोदय,संस्कारप्रकाश, भाग 1-2, पृष्ठ 402
द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवाह्यश्च ।
तत्र ब्रह्मवादिनी नामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्येति।।
सद्योवधूनां तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाहः कार्यः।

2 Dharma Dr. P.C.- "Status of Women in Vedic Age"
Quoted in Journal of Indian History, 1948
"They were educated in spiritual and the secular subjects.The secular side of their education consisted of fine arts and military science. There was lady Risis in Rigvedic times who composed verses,performed sacrifices, offered hymns to the Gods and won glory and fame, e.g. Surya, Saci, Sarparanj, mamta etc."

विवाह एवं स्त्रियों की स्थिति

वैदिक युग में चूँकि नारियां वेदाध्ययन के लिए स्वतन्त्र थीं अतः उन्हें पुरुष के समान याज्ञिक अधिकार प्राप्त थे। अथर्ववेद में एक स्थान पर नारी को यज्ञ में भाग लेने,यज्ञ करने तथा दूसरों को यज्ञ कराने के लिए अधिकृत किया गया है।[1]इसके अतिरिक्त अनेक स्थलों पर पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से सम्पादित अनुष्ठानों के विवरण प्राप्त होते हैं।[2] ऋग्वेद के दशम मण्डल का 114 वाँ सूक्त भी नारी के यज्ञ करने के जन्म-सिद्ध अधिकार की पुष्टि करता है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में कहा गया है कि गृहस्थ को पत्नी के बिना अकेले यज्ञ करने का अधिकार नहीं है –"*अयज्ञियो वा एषः योऽपत्नीकः*"[3]

पत्नी के अभाव में यज्ञानुष्ठान पूर्ण नहीं माना जाता था। पति द्वारा दी गई आहुति देवताओं द्वारा स्वीकार नहीं की जाती थी। अतः विभिन्न धार्मिक कर्मकाण्डों, संस्कारों एवं अनुष्ठानों को संपादित करने का भी अधिकार नारी को पूर्णरूप से प्राप्त था।

विवाह के क्षेत्र में भीनारी की स्थिति अत्यन्त उत्कृष्ट थी। बाल-विवाह की प्रथा नहीं थी। कन्याओं का विवाह परिपक्वावस्था में होता था तथा वह विवाह के संबंध में स्वयं निर्णय लेने के लिए स्वतंत्र थी।[4] ऋग्वेद में कहा गया है कि उस समय विवाह योग्य किसी भी युवती को अपने मनोनुकूल वर चुनने की स्वतन्त्रता थी।[5]

---

1 अथर्ववेद 6.122.5
"शुद्धा पूता योषितो यज्ञियो इमा ब्रह्माणां हस्तेषु प्रपृथक् सादयामि।
यत्काम इदमभिषिञ्चामि वोऽहमिन्द्रो मरुत्वान्त्स ददातु मे"।।

2 ऋग्वेद 10.72.5/17

3 तैत्तिरीय ब्राह्मण – 3.3.3 (भट्टभास्कर मिश्र टीका)

4 आष्टिकर डा मधुकर, वेदकालीन स्त्रियाँ, पृष्ठ 11

5 ऋग्वेद 10.27.12 –

वेद में लिखा है- **"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानम् विन्दते पतिम्"**[1]अर्थात् पूर्ण ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर कन्या शिक्षा ग्रहण करती हुई विवाह करें। क्षत्रिय समाज में स्वयंवर[2] की प्रथा प्रचलित थी जिससे यह ज्ञात होता है कि कन्या का विवाह प्रौढ़ावस्था प्राप्त करने के पश्चात होता था जब वह इस निर्णायक क्षेत्र में निर्णय लेने में सक्षम होती थी। ऋक् संहिता[3] के एक मंत्र के सूक्ष्मानुशीलन से यह ज्ञात होता है कि विवाह के समय वधू पूर्ण परिपक्व एवं विकसित होती थी। वैदिक समाज में दो पूर्णतया विकसित व्यक्तियों के संबंध को विवाह की संज्ञा दी जाती थी।[4] इसके अतिरिक्त वैदिक काल में अंतर्जातीय विवाह[5] के संकेत भी प्राप्त होते हैं ये सभी दृष्टांत संहिता काल में विवाह- संबन्धी स्वतन्त्र विचारधारा के द्योतक हैं।

विवाह के बाद पति – पत्नी को एकरूप, एकप्राण माना जाता था। पति या पत्नी किसी भी कारण से विवाह विच्छेद नहीं कर सकते थे। समाज में एक पत्नीव्रत का आदर्श था। ऋग्वेद में एक प्रसिद्ध उपमा इस प्रकार है कि ये दो पक्षी पति-पत्नी की तरह सतत एक साथ रहते हैं और एकसाथ उड़ते हैं। ऋग्वेद के अनेक ऋचाओं

"कियती योषामर्यतों वध्यो परिप्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशा स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।।"

1 अथर्ववेद 11.5.18

2 ऋग्वेद 10.27.12

3 ऋग्वेद 10.22.4-6

4 वैदिक इण्डेक्स, पृष्ठ 536-537

5 (क)ऋग्वेद 1.112.19
पाण्डेय, विमल चन्द्र "प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास" पृष्ठ 110
(ख)ऋग्वेद 5.61.17-19 तथा 10.63.1

(1.124.7, 4.3.2, 10.71.4) में एक पत्नीव्रत की प्रथाके प्राप्त दृष्टान्तों से भी नारी की सशक्त स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। दूसरा विवाह करना समाज में निंदनीय माना जाता था।[1]

वैदिक कालीन समाज में नारी समाज को आहत करने वाली सती कुप्रथा का प्रचलन नहीं था।पति के निधन होने पर स्त्री का पुनर्विवाह अथवा विधवा विवाह का उल्लेख प्राप्त होता हैं।[2] ऋग्वेद में विधवा स्त्री के विषय में कहा गया है कि वह मृत पति का त्यागकर भावी पति को प्राप्त करे।[3] अथर्ववेद (9.5.27-28) में भी पुनर्विवाह अथवा विधवा-विवाह का उल्लेख प्राप्त होता है।ऋग्वेद में पति के मृत होने पर युवती का देवर के साथ विवाह करने का वर्णन प्राप्त होता है।[4] डा० ए सी दास और श्री केणी प्रभृति विद्वानों ने भी स्पष्ट रूप से कहा है कि वेदकाल में सती प्रथा का अस्तित्व ही नहीं था, अपितु उस समय पुनर्विवाह की परंपरा थी।[5]

---

1 आष्टिकर, डॉ मधुकर , वेदकालीन स्त्रियाँ, पृष्ठ 11

2 आष्टिकर, डॉ मधुकर, वेदकालीन स्त्रियाँ, पृ0 11
"अपश्यं युवतिं नीयमानां जीवां मृतेभ्यः परिणीयमानाम्।
अंधेन यत् तमसा प्रकृतासीत् प्राक्तो अषाचीमनयं तदेनाम्।। अथर्ववेद"

3 अथर्ववेद 9.5.27-28
"या पूर्वं पतिं वित्वाथान्यं विंदतेऽपरम् ।
पच्चौदनं च तावजं ददातों न वियोंषतः।।"

4 उदीर्ण्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुप शेष एहि।
हस्तग्राभ्यस्यं दिधीषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ।। ऋग्वेद
डा मधुकर अष्टिकर – "वेदकालीन स्त्रियाँ" पृष्ठ 13 से उद्धृत

5 वही , पृष्ठ 13

संहिता कालीन समाज में नियोग प्रथा का संकेत प्राप्त होता है । नियोग से तात्पर्य है कि नि:संतान पत्नी अथवा विधवा स्त्री का पुत्र- प्राप्ति हेतु अपने देवर अथवा पूर्व निर्धारित पुरुष के साथ नियुक्त होना। इसके संकेत ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों[1] में प्राप्त होते हैं जो नारी के प्रति अत्यंत उदार दृष्टिकोण के परिचायक हैं।

वैदिककालीन समाज में पर्दा अथवा अवगुण्ठन की प्रथा का प्रचलन नहीं था। स्त्रियाँ पर्दे से रहित होकर स्वतन्त्रतापूर्वक सबसे मिल सकती थीं| वे विदथ (सभा तथा समिति) एवं समन (उत्सव तथा मेला) में स्वतन्त्र रूप से सम्मिलित होती थी तथा अपने विचारों का आदान-प्रदान करती थीं।[2]ऋग्वेद[3] में एक स्थान पर स्त्री के लिए सभावती शब्द का प्रयोग हुआ है जिससे उनके सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने का संकेत प्राप्त होता है। एक स्थान पर सौभाग्यशाली नववधू को आशीर्वाद प्राप्ति हेतु सभी आगंतुकों को दिखाए जाने का भी उल्लेख मिलता है।[4]वैदिक काल में सह-शिक्षा तथा कन्याओं के लिए उच्च शिक्षा प्राप्ति की स्वतंत्रता इस तथ्य को प्रमाणित करती हैं क्योंकि यदि पर्दा प्रथा होती तो कन्याएं उच्च स्तर पर शिक्षित नहीं हो पाती तथा अनेक ऋषिकाओं के विवरण जो ऋषियों की भांति वेद की शिक्षा देती थीं वेदकाल में इस प्रथा के अभाव को दर्शाते हैं।

---

1 ऋग्वेद 1.167.5-6

2 अथर्ववेद 14.1.20

"गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमावदसि।"

3 1.167.3

4 ऋग्वेद 10.85.33

"सुमंगलरियं वधुरिमां समेत पश्यत ।

सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्वितं परतेन ।।"

अथर्ववेद[1] में कतिपय स्थलों पर नारी द्वारा अपने सम्पत्ति विषयक अधिकार हेतु न्यायालय जाने का वर्णन है अतः वैदिक काल में पर्दा प्रथा के अभाव होने के कारण स्त्रियों ने अबाधगति से जीवन के सभी क्षेत्रों में अपने मार्ग प्रशस्त किए।

वैदिक काल में स्त्रियों की आर्थिक स्थिति

वैदिक काल में आर्थिक क्षेत्र में भी नारी सबलतथा अत्यन्त समृद्ध थी। उसे सम्पत्ति संबंधी अनेक अधिकार प्राप्त थे। पुत्रियाँ पुत्र की भाँति पिता की सम्पत्ति में समान अधिकार रखती थीं।[2] अभ्रातृक कन्या तो अपने पिता की सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी होती थी।[3] वे कन्याएँ जो अविवाहित रहकर अपने पिता के घर में जीवन व्यतीत करती थीं उनके लिए भी पिता की सम्पत्ति में अधिकार हेतु प्रार्थनाएँ ऋग्वेद[4] और अथर्ववेद[5] में प्राप्त होती हैं। स्त्री का अपने पति की सम्पत्ति में सह स्वामित्व था। पति द्वारा विवाह के समय यह शपथ ली जाती थी कि आर्थिक मामलों में किसी भी प्रकार पत्नी के अधिकार एवं हित का अतिक्रमण नहीं किया जाएगा।[6] नारी की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के लिए स्त्रीधन की व्यवस्था की गई थी। विवाह के समय स्त्री को उपहार स्वरूप प्राप्त होने वाली वस्तुएं जिस

---

1 अथर्ववेद 2.36.1- "जुष्टा वरेयु समनेषु वल्गुः"

2 ऋग्वेद 2.17.7

3 ऋग्वेद 1.124.7–"अभ्रातेव पुंस एति प्रतीचो गर्तारूगिव सनये धनानांम्।"

4 ऋग्वेद 10.85.13 तथा 38

5 अथर्ववेद 14.1.13

6 अथर्ववेद 10.35.5 तथा 12.3.14
Shastri, Madhu – "Status of Hindu Women" से उद्धृत

पर स्त्री का एकमात्र अधिकार होता था, स्त्री - धन कहलाता था। इस संपत्ति को **पारिणाह्य** कहा जाता था जिसका उल्लेख तैत्तिरीय संहिता में प्राप्त होता है- **'पत्नी वैपारिणाह्यस्य ईशः'**(तैत्तिरीय संहिता 6.2.1.1) अर्थात् उपहार के रूप में नारी कोप्राप्त होने वाली वस्तुओं पर नारी का अधिकार होता था। विधवा स्त्री हेतु धन की व्यवस्था करने का संकेत अथर्ववेद में प्राप्त होता है।[1]ये सभी संकेत वैदिक संहिता- काल में नारी समुदाय की आर्थिक सबलता तथा सुसम्पन्नता के द्योतक हैं ।

युद्ध-क्षेत्र एवं प्रशासन में स्त्रियों की भूमिका

ऋग्वेद में महर्षि मुद्गल की पत्नी मुद्गलानी द्वारा युद्धक्षेत्र में उनके साथ जाने तथा रथ संचालन का वर्णन प्राप्त होता है जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिककालीन नारी ने युद्ध-भूमि में भी अपने शौर्य एवं पराक्रम से पुरुष समुदाय को अभिभूत कर दिया था।[2]वे न्यायकर्त्री के रूप में भी कुशल थीं। ऋग्वेद में वे कुशल न्याय द्वारा राजप्रबन्ध में सुस्थिरता स्थापित करती दृष्टिगोचर होती हैं| तत्कालीन नारी दौत्य कर्म में भी निपुण हुआ करती थी जिसका प्रमाण सरमा-पणि संवाद से प्राप्त होता है। सरमा इन्द्र की ओर से दूत बन कर पणि नामक असुर के पासगई थी। सरमा-पणि संवाद तत्कालीन महिलाओं के प्रखर बुद्धि काअद्भुत उदाहरण है।[3]

इसके अतिरिक्त संहिताकालीन नारी विधाननिर्मात्री, ज्योतिर्विद्, भूगर्भविद् आदि अनेक रूपों में हमारे समक्ष उपस्थित होती हैं जिससे

---

1 अथर्ववेद 18.3.1
"इयं नारी पतिलोकं वृणानां निपद्यते उपत्व मर्त्य प्रेतम्।
धर्मं पुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं च धेहि ।।"

2 ऋग्वेद 10.102.2 "रथीरभून्मुद्गलानी गविष्टौ भरे।"

3 ऋग्वेद 10.108वाँ सूक्त

यह ज्ञात होता है कि तत्कालीन नारी प्रत्येक कर्म एवं क्षेत्र में कुशल और सक्षम थी।

वैदिककालीन स्त्रियों की सामाजिक स्थिति

वैदिक काल में परिवार में उनका अत्यंत उच्च एवं प्रतिष्ठित स्थान था। परिवार की बड़ी वधू समस्त गृह प्रबंध में प्रधान संचालिका हुआ करती थीं। घर के समस्त कार्य तथा दायित्व उसके संरक्षण में तथा उसकी इच्छानुसार संपादित किए जाते थे।परिवार के समस्त सदस्य उनका आदर करते थे और आज्ञा का पालन करते थे।[1]

वैदिक युग में नारी को पत्नी के रूप में बहुत आदर प्राप्त था। आर्य पत्नी को घर मानते थे- **"गृहिणी गृहमित्याहुः न गृहं गृहिणीं विना"**।[2]पत्नी पुरुष की अर्धांगिनी होती है अतः पत्नी के बिना पति अपूर्ण है। वह पुरुष के साथ समत्व भाव से जीवन यापन करते हुए उसके लिए सदैव से प्रेरणा एवं शक्ति के स्रोत थी।[3]माता के रूप में वह बच्चों में उत्तम शिक्षा द्वारा संस्कार का आधान करते हुए उन के भविष्य की निर्मात्री है- **"माता निर्माता भवति।"**[4]इसीलिए माता गुरुओं में प्रथम है-**"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरुषो वेद"**।[5]शतपथब्राह्मण के अनुसार संस्कृति के उत्थान, उन्नयन एवं

---

1 ऋग्वेद 10.85.46

2 सोती, वीरेंद्र चन्द्र – "भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व", पृष्ठ 88

3 ऋग्वेद 1.3.11
"चोदयित्री सुनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम् ।
यज्ञं दधे सरस्वती"।।

4 यास्क, निरुक्त

5 सरस्वती, महर्षि दयानंद, "सत्यर्थप्रकाश" के द्वितीय समुल्लास से उद्धृत

उत्कर्ष में नारी का महत्त्वपूर्ण योगदान है।वैदिक मंत्रोंमें नारी के सहनशीलता,सौम्यता, सौष्ठवता, ममता प्रभृति गुणों की बारम्बार प्रशंसा की गई है। उनकों अदिति,सरस्वती,चंद्रा,ज्योतिआदिअनेक महिमापूर्ण विशेषणों से विभूषित किया गया है।[1] उन्हें अमृतरसदायिनी कहा गया है तथा मधुर एवं सत्य वचनों की प्रेरक तथा सन्मति से सम्पन्न बताया गया है।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वैदिक काल में नारी की स्थिति अत्यन्त उदात्त एवं गरिमापूर्ण थी। वे समाज में अत्यन्त उत्कृष्ट एवं सम्माननीय पद पर आसीन थीं। नारी को धर्म, राजनीति, ज्ञान-विज्ञान, समाज-व्यवस्था सभी क्षेत्रों में पुरुष के समान अधिकार एवं स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वह पुरुष के साथ समान रूप से समाज के अभ्युत्थान, परिष्कार एवं संस्कार में सहायक थी। नारी की शक्तियों को विकसित करने के लिए जितनी सुविधाएँ, सुअवसर एवं संसाधन संहिता काल में प्राप्त थे वे आधुनिक युग में कल्पनातीत थे। यह काल परवर्ती समाज में नारी के अधिकारों तथा शक्तियों के लिए सदैव पथप्रदर्शक रहा है।

---

1 यजुर्वेद 8.43
“इडे रन्ते हव्ये काम्ये चंद्रे ज्योते अदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अध्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतम्”।।

प्राचीन नारी संस्कृति के संदर्भ में वर्तमान नारी - चेतना की अवधारणा

डॉ सुधा पाण्डेय
असिस्टेंट प्रोफेसर
सोगरा महाविद्यालय
बिहारशरीफ, नालन्दा

कितनी बड़ी विडंबना है कि असमानता से कोसों दूर नर-नारी संबंध के आदर्श का सर्वाधिक सुंदर जीवन-दर्शन अर्धनारीश्वर के रूप में निर्विवाद रूप से सबसे पहले भारत में ही विकसित हुआ अर्थात् पुरुष आधा नारी बने और नारी आधा पुरुष। तभी वे परस्पर एक दूसरे को बेहतर तरीके से समझ सकेंगे। किंतु पुरुष वर्चस्विता पहले. भी इस मनोवैज्ञानिक जीवन दर्शन को अहं के चलते आचारित करने में अनिच्छुक रही। अब भी हम विचार शून्य, विवेक शून्य कठपुतलियों की भाँति स्त्री पुरुष संबंधों में आपसी समझ। मुचुअल अंडरस्टैंडिंग की अवधारणा पश्चिम से आयातित कर स्वयं को परिष्कृत करने की आधुनिकता यो सींच रहें हैं। वस्तुतः नारी-चेतना की मुहिम स्वयं स्त्री के लिए अपने अस्तित्व को मानवीय रूप में अनुभव करने और करवाने का आंदोलन है। "मैं मनुष्य हूँ और मनुष्य की ही भाँति समाज में रहने की अधिकारी हूँ। मेरा "स्व" दाँव पर न लगे। मेरी अस्मिता सुरक्षित रहे" इसके लिए उसे यह निश्चित करना होगा कि वह अपनी अस्मिता की लड़ाई कैसे लड़े। अपना अधिकार कैसे पाए। उसे पुरुष के कदम से कदम मिलाकर चलने के लिए सोचना नहीं है वरन् ऐसा प्रकाशमान आदर्श रखना है कि पुरुष ही उसका अनुकरण करे।

आरम्भिकी

मानव जाति की जन्मदात्री नारी गृहस्थ जीवन की धुरी है और सृष्टि की आधारशिला भी। उसने अपने विशिष्ट भावों प्रेम, सहानुभूति, वात्सल्य, दया, ममता के कारण अपने गुणों, व्यवहार और सौन्दर्य से समाज, राजनीति, सभ्यता, संस्कृति, धर्म सभी को प्रभावित किया है। फिर साहित्य जो समाज का दर्पण होता है वह प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकता है? समाज का प्रबुद्ध नागरिक होने के नाते हर युग के साहित्यकारों ने नारी को मध्य विन्दु में रख कर अपना सृजन कार्य किया है। प्राचीन काल के साहित्य में जिस नारी को देवी तक की उपाधि दी जो आवश्यकता पड़ने पर दुर्गा तक रूप धारण कर सकती थी, वही नारी परिवर्तित होती परिस्थितियों में कब दोयम दर्जे का प्राणी मानी जाने लगी, यह समझ ही नहीं पाई ? कब उसके त्याग, प्रेम, सहानुभूति, सेवा, दया, सहनशीलता जैसे भावों के कारण उसे अबला कहकर पुकारा जाने लगा, यह समझ ही नहीं पाई? उसकी स्थिति का हम साहित्य के युगानुरूप इस शोध पत्र में अध्ययन करेंगे।

वैदिक काल में नारी

विश्व के प्राचीन ग्रंथ वेदों में नारी को अत्यंत महत्वपूर्ण एवं गरिमामयी स्थान प्रदान किया है। वेदों में नारी की यज्ञीय अर्पत (यज्ञ के समान पूजनीय) स्वीकार किया है तो कहीं रत्ना की उपाधि दी है। इतना ही नहीं वेदों में नारी को देवी, सरस्वती, विशेष तेज युक्त, समृद्धि लाने वाली, इन्द्राणी, विदुषी जैसी आदि आदर सूचकों शब्दों से पुकारा है। सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद में से ज्ञात होता है कि यह समाज की महत्वपूर्ण सदस्या थी, पुरूष की भांति हर सामाजिक व पारिवारिक गतिविधियों में भाग लेने की स्वच्छंदता थी। उसे सह शिक्षा पाने, इच्छानुसार वर चयन करने, अध्यापन कार्य करने, पर्वो

व उत्सवों में शामिल होने, धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेने की ही नहीं बल्कि अनुष्ठान आयोजित करवाने तक की स्वतन्त्रता थी। इतना ही नहीं हमारे सबसे प्राचीन वेद ऋग्वेद के एक मंत्र में तो पुरोहित नारी को समाज्ञी बनाकर सास-ससुर, ननद-देवर पर शासन करने तक का आशीर्वाद देते हुए दिखाई देते हैं।

सम्राज्ञी श्वसरै भव, सम्राज्ञी श्वश्वां भव

ननांन्दरि सम्राज्ञी भव, सम्राज्ञी देवशु ।।

इस प्रकार के मंत्रों से ज्ञात होता है कि वैदिक युग नारी समाज की सम्मानीय एवं महत्वपूर्ण सदस्या थी। शंकर प्रसाद जी ने वैदिक कालीन की स्थिति सम्यक अनुशीलन कर लिखी अपनी पुस्तक 'सामाजिक उपन्यास एवं नारी मनोविज्ञान' में लिखा है कि "वैदिक युग में स्त्री भोग्या भी रही और पूज्या भी रही और प्रेरिका भी, सहयोगिनी भी रही और सहचारिणी भी। वैदिक युग की नारी पूरी नारी थी। आज की तरह अधूरी नारी नहीं थी।"[1]

"अतः हम कह सकते हैं कि वैदिक काल में नारी स्वाभिमानी, साहसी, स्वतन्त्र थी। वह पुरूष की अमानत नहीं थी। उसका अपना स्वतंत्र मानवी के रूप में अस्तित्व था। वह पुरूष अर्द्धांगिनी थी। दोनों की समाज में समान स्थिति एवं महत्व था। पूर्ण रूप स्वछंद होकर भी एक-दूसरे के पूरक थे।

उपनिषदों में नारी

उपनिपदों में इस सुंदर संसार को परब्रह्म की यज्ञशाला कहकर पुकारा गया है। इस युग में मनुष्य सांसारिक जीवन के आनंद से विमुख होकर तप के मार्ग को अपनाने लगा। जिसमें सबसे बड़ी बाधा बनकर नारी आई। यहीं से वैदिक काल की स्वतंत्र, सबल, स्वाभिमानी नारी जो अपने व्यक्तित्व के कारण समाज के आदशों को

प्रभावित करती थी वह परतंत्र, निर्वल, निस्सहाय होने लगी। अभी तक जिस नारी को जीवन के हर क्षेत्र में स्वतन्त्रता थी अब उसकी स्वच्छंदता पर अंकुश लगने लगा। अब उसके स्थान एवं सम्मान का कमिक हास होने लगा। अभी तक पुरूप-स्त्री को एक तेज की दो द्युति कहा जाता था। अब उनकी स्थिति में अन्तर आना प्रारंभ हो गया था। पुरूप धीरे-धीरे समाज पर अपना नियंत्रण बढ़ाता जा रहा था। जो नारी अभी तक पुरुष के समान थी जब पुरूप कर्ता यना तो नारी क्रिया बनकर आई, जब पुरुष भर्ता बना तो नारी भार्या बनकर आई, जय विद्वान बना तो वह उसकी विद्या बनकर आई, जब यह गृहपति के रूप सामने आया तो यह गृहलक्ष्मी बनकर आई। परन्तु समय ने ऐसी करवट ली कि वैदिक युग की मंत्रों की रचना तक करने वाली विदुषी नारी जो अपने ज्ञान के बल पर ऋषि मुनियों के साथ पटों वाद-विवाद तक कर लेती थी अब उसके सभा-संगोष्ठियों में जाने तक पर प्रतिबंध लगने लगा।

यदि हम उपनिषद काल को नारी अपकर्ष एवं अधोगति का वपन काल कहे तो कोई अनुचित नहीं होगा। जिसके विषय में बल्लभ दास तिवारी ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी काव्य में नारी' में लिखा है कि उपनिषद काल में वह आदर, सम्मान और अधिकारों की द्दष्टि से यह महत्व न रहा जो उसे वैदिक काल में प्राप्त था। अत एव भारतीय नारी की अधोगति का आरम्भ यही से मानना समीचीन जान पड़ता है।[2]

वैदिक युग के नारी की गौरवगाथा की गूंज का स्वर अब आकर धीमा होना प्रारम्भ हो गया। अपूर्ण एवं अबला महसूस करने लगी जो बहुत अनुचित था।

नर-नारी दोनों सृष्टि का आधार है वे एक-दूसरे विरोधी नहीं बल्कि पूरक हैं। जिस प्रकार सांसों के शरीर का कोई महत्व नहीं

उसी प्रकार मानवी के बिना मानव जीवन का भी कोई औचित्य नहीं।

स्मृति ग्रंथों में नारी

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवताः।

यत्र नास्तु ना पूज्यन्ते, सर्वास्तत्रफलाः क्रियाः ।"[3]

अर्थात् जहाँ नारी की पूजा की जाती है। वहाँ देवताओं का निवास होता है और जहाँ नारी की पूर नहीं की जाती उनके सभी कार्य निष्फल होते हैं। मनुस्मृति की यह सर्वविदित श्लोक स्मृति ग्रंथों में नारी के उत्कृट स्थिति को प्रमाणित करती है। स्मृति ग्रंथों में स्पष्ट शब्दों में अंकित है कि यदि कोई भी मानव अपनी एवं अपने कुल की उन्नति एवं प्रसिद्धि चाहता है तो वह अपने घर की मानवी प्राणी माता, बहन, पत्नी, दुर्गे को प्रसन्न रखे।

सारांश यह है कि स्मृतिग्रंथकारों ने मानव की सफलता की कुंजी मानवी को बताया है। हाँ इतना आवश्यक है इसके साथ-साथ स्मृतिग्रंथकारों ने नारी के बहुत सारे उत्तरदायित्वों एवं कर्तव्यों की भी उम्मीद की है। जैसे :- वह घर के बड़े-बुजुर्गों की सेवा-सुश्रूशा करे, गुरूजनों का आदर-सम्मान करे, घर आए अतिथि को देवता समान समझे, कम बोले, मीठा बोले, मितव्ययी हो, वह कभी विलाप-प्रलाप न करे इत्यादि। स्मृति ग्रंथों में साफ शब्दों में लिखा है कि ईप्या, द्वेप, चोरी, धूर्तता, अहंकार, क्रोध, प्रवृचा, नास्तिकता जैसे अवगुणों से रहित सेवा प्रेम, ममता, सहानुभूति, दया जैसे सद्गुणों से युक्त नारी ही समाज एवं राष्ट्र के लिए बन्दनीय है। स्मृति में कई स्थानों पर आपको नारी निंदा भी देखने को मिलती है। स्मृतिग्रंथकारों ने निर्लज्जा एवं दुष्टा नारियों की निंदा की, जो धर्म के मार्ग को त्यागकर एवं सद्कर्मों की तिलांजलि देकर अधर्म के मार्ग का अनुसरण करती है। सम्यक अनुशीलन करने पर आप अनुभव करेंगे

कि वह नारी निंदा नहीं बल्कि दुराचारों को निंदा है।

सती नारी की प्रशंसा करते हुए स्मृति ग्रंथों में लिखा हुआ है कि सती नारी के चरणों में धरती के हो तीर्थ समाए । एक सती के चरणों की धूल धरती माँ पवित्र हो जाती है। इन ग्रंथों में माँ सर्वोपरि स्थान दिया है और किसी विद्वान ने कहा भी है "एक आचार्य दस शिक्षकों से श्रेष्ठ होता है और एक पिता सौ आचार्यों की अपेक्षा श्रेष्टतर होता है और एक माता सहस्त्र पिताओं से श्रेष्ठतम होती है।" अनिवार्य रूप से कह सकते हैं कि नारी त्याग की मूर्ति है, सृष्टि की जननी है, देवी का स्परूप है इसलिए वह वन्दनीय है।

पुराणों में नारी

प्राचीन ग्रंथ पुराणों में भी नारी की तत्कालीन स्थिति ज्ञात होती है। "ब्रह्म, पदम, वैष्णव, शैव भागवत नारदीय, मार्कण्डेय, लिङ्ग, बराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरूड़, ब्रह्माड इन सभी अर्थात अट्ठारह पुराणों में नारी की चर्चा हुई है। इनमें वर्णित विदुषी महिलाओं की चर्चाएं हमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचाती है कि इस काल में स्त्रियों के पठन-पाठन की समुचित व्यवस्था थी।"[4]

जहाँ पुराणों से हमें महिलाओं के पठन-पाठन एवं सभा-संगोष्ठियों में वाद-विवाद के प्रमाण मिलते हैं, यहीं कुछ पुराणों में महिलाओं से जुड़ी कुप्रथाओं एवं कुरीतियों के प्रचलन की भी जानकारी मिलती है। जैसे - गरुड़ पुराण से हमें सती प्रथा, भागवत पुराण से दहेज प्रथा की जानकारी मिलती है जो नारी के अपकर्ष को प्रमाणित करती है।

इसके अतिरिक्त हिन्दु धर्म के सोलह संस्कार में से पुंसवन नामक संस्कार का अध्ययन भी यदि गहराई से करे तो वह भी समाज में स्त्री के पतन की स्थिति की ओर इंगित करता है क्योंकि पुंसवन नामक संस्कार के पीछे दो उद्देश्य प्रतीत होते है। प्रथम तो

यह कि गर्भ में पल रहा बच्चा लड़का हो और द्वितीय की वह बच्चा सभी दोषों व रोगों से मुक्त हो। यह संस्कार वर्तमान समय की सबसे घ णित कुप्रथा का ही प्रतिरूप था। अन्तर केवल इतना है कि आज यह कार्य वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग कर किया जाता है और उस युग में यह कार्य मंत्र सिद्धि से सम्पन्न किया जाता था।

निष्कर्ष रूप से कह सकते हैं कि इस युग में नारी की स्थिति प्राचीन काल की तुलना में अपकर्ष की ओर अग्रसर थी। समाज की परम्परा इस युग में नारी को सवला से अबला, स्वाधीन से पराधीन, आत्मनिर्भर से परामुखापेक्षिता की ओर ले जा रही थी।

धार्मिक महाकाव्यों (रामायण एवं महाभारत) में नारी

महर्षि वाल्मीकि धार्मिक महाकाव्य रामायण में नारी के आदर्श प्रतिरूप को प्रस्तुत किया है। उन्होंने एक ओर राजा दशरथ की प्रिय रानी कैकेयी के द्वारा महाराज दशरथ का रणक्षेत्र में सहायता कर वीरता की प्रतिमान स्थापित किया और साथ ही केकैय नरेश के पुत्र न होने पर राजकुमारी कैकेयी ने पुत्री होकर पुत्र की भांति कैकेयी नरेश की सहायता के लिए आए हुए अयोध्या नरशे राजा दशरथ की सहायता कर पुत्री को पुत्र के समान समझने की समाज को शिक्षा प्रदान की। राजा जनक की पुत्री सीता के माध्यम से राजभवनों के वैभवशाली जीवन का परित्याग कर अपने स्वामी श्री राम के साथ जंगल-जंगल भटक कर एवं अग्नि परीक्षा जैसी कठिन परीक्षा देकर पतिव्रता नारी का प्रतिमान स्थापित किया। इसी के साथ रामायण में ही त्याग, सेवा-सुश्रुशा की प्रतिमूर्त उर्मिला जिसने अपने पति की खुशी के लिए अपने पति लक्ष्मण को श्री राम के साथ जाने की अनुमति देकर स्वयं ने चौदह वर्ष विरह विवाते हुए अपनी सास माताओं की सेवा की। रामायण के नारी पात्र के चरित्र एवं व्यक्तित्व के माध्यम महर्षि वाल्मीकि ने आदर्श स्थापित किए। जिसमें से कुछ

नारी पात्र का तो नर के समान महत्व है जबकि कुछ नारी पात्र सीता के जैसे है, जिन्होंने स्वयं के चरित्र को समाज के सामने आदर्श प्रमाणित करने के लिए अग्नि परीक्षा से गुजरना पड़ा था। रामायण महाकाव्य के चतुर्थ काण्ड किष्किंधा में महर्षि वाल्मीकि इस पंक्ति के माध्यम से समाज को नारी का सम्मान करने का उपदेश देते नजर आते हैं

"नहि स्त्रीशु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्ति दारूणाम् ।"[5]

अर्थात् कोई भी महान् व्यक्ति स्त्री पर अत्याचार नहीं कर सकता।

इसी प्रकार महाकाव्य कहलाने वाला ग्रंथ महाभारत में भी कई वृतांत ऐसे मिलते हैं जो नारी को परोपकारिणी, वीरांगना, धर्मज्ञा, सहधर्मिणी, विदुशी, त्यागमयी, वात्सल्य की प्रतिमूर्ति एवं दिव्य गुणों से युक्त स्वीकार किया गया है। इस महाग्रंथ की सत्यवती, कुंती, उत्तरा की स्थिति से प्रमाणित होता है कि इस युग में विधवाओं की स्थिति आधुनिक कहे जाने वाले इस युग की भांति हृदयविदारक नहीं थी।

इन महिलाओं ने विधवा होते हुए भी अपनी सामर्थ्य एवं बुद्धिमता के बल पर घर एवं प्रशासन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हुए समाज में अपनी प्रतिष्ठा स्थापित की। परन्तु इस महाकाव्य में भी हिन्दु धर्म का पवित्र ग्रंथ रामायण के आदर्श नारी पात्र सीता की अग्नि परीक्षा की भांति ऐसे कई प्रसंग हैं जो नारी के स्थिति को प्रस्तुत करते हुए हृदयभेदन करते है। जैसे पांचाली को भरी सभा में वेश्या कहा जाना मानव इतिहास की अति निकृष्ट हृदय विदारक घटना श्रेष्ठ सभासदों से भरी सभा के सम्मुख पांचाली का वस्त्र हरण होना नारी की समाज में अपकर्ष की स्थिति को प्रमाणित करने वाली घटना है।

महाभारत काल की नारी के विषय में डॉ. किरण बाला अरोड़ा ने लिखा है कि वैदिक की स्थिति अपेक्षाकृत काल्पनिक कही जा सकती है तो वाल्मीकि रामायण में आदर्श के घरातल पर उसका स्वरूप अकित हुआ। परन्तु महाभारत में नारी की यथार्थ स्थिति का चित्र है।[6]

द्रौपदी के वस्त्र हरण का प्रसंग जहाँ नारी के अपकर्ष की स्थिति को प्रस्तुत करता है वहीं के पश्चात द्रौपदी द्वारा भरी सभा में बैठे श्रेष्ठ बुद्धिजनों, विद्वानों, सभासदों से न्याय की गुहार लगाय अपने अधिकारों के प्रति जागरूकता एवं खुले केश रखने की प्रतिज्ञा उसके स्वाभिमानी स्वभाव को प्रस्तुत है।

इस प्रकार महाभारत काल में नारी की मिली-जुली परिस्थिति चलती रही।

बौद्ध एवं जैन धर्म में नारी

बौद्ध धर्म के प्रवर्तक महात्मा बुद्ध ने तत्कालीन समय में नारी की वास्तविक स्थिति को अनुभव का स्त्री को बुद्धिमान बताते हुए स्त्री शिक्षा पर वल दिया। इतना ही नहीं उन्होंने समाज में फैले स्त्री संबंधी मिथ्या विचारों जैसे :- विधवा स्त्री को सुबह देखने से अपशगुन होगा, मृत्यु के पश्चात् पुत्र द्वारा मुखाग्नि से ही स्वर्ग की प्राप्ति होती है, विधवा व वंध्या स्त्रियों को कई धार्मिक अनुष्ठानों में बैठने पर प्रतिबंध था। इन सभी बड़े को मिव्या बताकर बौद्ध विहारों में बौद्ध भिक्षुणी बनने की अनुमति प्रदान कर, उन्हें बुद्धिमान कहकर आत्मबल प्रदान किया। जिससे इस युग की स्त्री ने कुछ चैन की सांस लेनी आरंभ ही की थी कि महात्मा बुद्ध के निर्पाण के पश्चात बौद्ध धर्म में कुछ विकृतियां आ गई जिसका वैचारिक मतभेद होकर बौद्ध धर्म दो शाखाओं में बंट गया :- ब्रजवान और हीनयान। बौद्ध धर्म की व्रजयान शाखा स्त्री भोग को मोक्ष का आधार बताया गय।

जिसके विषय में डॉ. शिव कुमार शर्मा ने अपनी पुस्तक 'हिन्दी साहित्य एवं प्रवृतियाँ' में लिखा है कि: सिद्धि लाभ के लिए गुप्त मंत्रों का जाप, आचार विहीन गुप्त क्रियाएं विशेषकर निम्न वर्ग की नारियों से भोग आदि अपनाया गया। इनके योगिनियों के द्वारा मनुष्य की कामुकता को खूब बढ़ावा मिला।"[7]

बड़ी ही विडम्बना का विषय है कि सभी दुःख और दर्द की दवा बनकर उभरे जैन एवं बौद्ध धर्म के युग में नारी मोक्ष प्राप्ति की सीढ़ी बनकर रह गई।

आदि काल में नारी

लगभग 1000 ई. के आसपास तक आते-आते नारी पुरूष रूपी मदारी के इशारे पर नाचने वाली बंदरिय बनकर रह गई। विदेशी आक्रमणकारियों के प्रहार एवं देशी राजाओं के आपसी गृह युद्धों में उलझे रहने के कारण बाहर से असुरक्षा की भावना और अन्दर से अशिक्षित होने के कारण नारी ने स्वयं को घर में ही इंड कर लिया। इस युग तक आते-आते नारी के नारीत्व के सभी गुण दया, सहानुभूति, ममत्व, प्रेम सभी गुण जहरी मॉसल देह में समा गए। जिसका वर्णन हिन्दी साहित्य के आदि काल में कई रचनाओं जैसे :- विद्यापति से पदवती में, जायसी की पदमात्त में, चन्दवरदायी की पृथ्वीराजासों में देखने को मिलता रहा। इस युग में अधिकत्तर नारी के परकीया रूप का ही चित्रण देखने को मिला।

मध्यकाल में नारी

यह युग नारी के अपकर्ष का चरमस्थ था। वहाँ राजा हो या जन साधारण सभी नारी को अपनी विलासिता को शांत करने के लिए मात्र उपभोग की वस्तु समझते थे। वहीं महात्मा कवीर जैसे लोग नारी से दूर रहने का संदेश देते नजर आए।

नारी की झांई पडत अंधा होत भुजंग

कबिरा तिन की क्या गति, जो नित्त नारी के संग।[8]

जहाँ हिन्दी साहित्य के भक्ति काल के कवियों ने नारी विषयक ऐसे दुर्वचन कहे वहीं रीति काल के कवियों ने भी नारी की स्थिति के अपकर्ष को प्रस्तुत करने में कोई कसर न छोड़ी। उन्होंने नारी के इस साढ़े तीन हाथ के शरीर का चित्रण इस भाँति किया है जैसे वह स्वयं कोई उत्पादक और नारी उसका उत्पाद हो। पुरूष को अपने यौवन कलश में डुबोए रखना ही इस युग में नारी जीवन का लक्ष्य था।

यदि मध्य काल के साहित्य सम्यक अनुशीलन करके निष्कर्ष निकाले तो महसूरा होता है कि इस युग के साहित्यकारों का ध्यान नारी की वास्तविक दयनीय अवस्था, विवपता, घुटन, पीड़ा की ओर गया ही वे उसके रूप सौन्दर्य के जाल में ही उलझ कर रह गये।

आधुनिक काल में नारी

आधुनिक युग में भारतीय नारी ने अपनी उपेक्षा का अनुभव कर असन्तो प्रकट किया तो सुदृढ़ समाज के लिए यह विषय एक प्रश्न चिह्न की भांति खड़ा हो गया। इस विषय का गहराई से अध्ययन करने पर मुझे इसके मुख्य दो ही कारण महसूस हुए। प्रथम नारी का स्वयं को पुरूप की अपेक्षा क्षीण समझना और द्वितीय हमारा सामाजिक ढांचा एवं परम्पराएं। निस्संदेह रूप से यह सत्य है कि अनवरत रूप से समाज चली आ रही परम्पराओं के रूप में कुप्रथाएं और सभ्यता संस्कृति के नाम पर कर्तव्य का निवर्हन करते-करते वह बंधनों की बेड़ियों जकड़ी गई। उसे अनुभव करने का अवसर ही नहीं मिला उसे कव पुनर्विवाह अपराध लगने लगा? कब पर्दे में स्वयं को सुरक्षित अनुभव करने लगी?

वर्तमान काल में नारी सभ्यता, संस्कृति के नाम पर चली आ

रही कुप्रथाओं को, धर्म की आड़ लेकर हो रहे शोषण का परम्पराओं के नाम लगी जंजीरों और कर्तव्य के नाम हो रहे शोपण का विरोध कर स्वयं को सबला मानवी सिद्ध करने के लिए प्रयासरत है। आज की त्यागमूर्ति मानवी अपनी कोमलता का पूर्ण परित्याग करके घर के साथ-साथ जीवन के हर क्षेत्र में अथक परिश्रम कर अपने स्वेदकणों को वहाकर अपनी सुनिश्चित उपस्थिति दर्ज करा रही है।

देवी से दासी और दासी से मानवी बनने की इस कहानी में उसे स्वयं को पहचानने में, उसकी सोई शक्ति को चेताने में, उसे अपना ध्येय वनाने में व उस ध्येय प्राप्ति के मार्ग वतलाने में प्रयुद्ध साहित्यकारों, श्रेष्ठ समाज सुधारकों और महान् चिंतकों ने योगदान दिया। राजा राम मोहन राय जैसे श्रेष्ठ जनों ने सती प्रया जैसी कोढ़ स्वरूपा कुप्रथा को बंद करवाया तो दयानंद सरस्वती एवं ईश्वर चंद्र विद्या सागर जैसे बुद्धि जीवियों नारी शिक्षा पर कार्य किया। क्योंकि शिक्षा रूपी कुंजी से ही स्वच्छंदता रूपी ताले को खोला जा सकता । वहीं आधुनिक युग संवेदनशील साहित्यकारों ने नारी की वास्तविक सामाजिक स्थिति का चित्रण कर उसकी जदयवेधी स्थिति को समाज के सामने प्रस्तुत करते हुए प्रेमचंद जैसे मनोवैज्ञानिक लेखक ने लिखा है किः "स्त्री पृथ्वी की भांति धैर्यवान है, शांति सम्पन्न है, सहिष्णु है, पुरूप में नारी के गुण आ जाते है तो वह महात्मा वन जाता है। नारी में पुरूष के गुण आ जाते है तो वह कुलटा हो जाती है।"[9]

इस प्रकार मानव मन के कुशल मनोवेता मुंशी प्रेम चंद नारीत्व के गुणों पर प्रकाश डालते हुए अपना नारी के प्रति दृष्टिकोण प्रस्तुत किया। इस युग के दूरदृष्टा साहित्यकारों ने अपनी अनुभव शक्ति से यह महसूस कर लिया था कि समाज के अंग नारी को अक्षम रखकर राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर नहीं ले जाया जा सकता। उन्होंने अपने वाडमय में नारी को मध्य बिंदु में रखकर यह स्पष्ट किया कि किसी

भी राष्ट्र का हर क्षेत्र धर्म, राजनीति, साहित्य व इतिहास सभी पर नारी का सौन्दर्य एवं व्यक्तित्व का प्रभाव पड़ता है।

निष्कर्ष :

वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल तक नारी की स्थिति अनवरत रूप से अपकर्ष की ओर अग्रसर थी। वैदिक युग में जहाँ नारी को मानवी स्वरूपा नहीं बल्कि देवी स्वरूपा माना गया था जिसके बिना कोई भी धर्म कार्य अधूरा माना जाता था। वही उपनिषद् काल नारी को भक्ति में सबसे बड़ी बाधा के रूप में देखा गया। उसके पश्चात स्मृति ग्रंथों उसे अबला बतला का पति, पिता, पुत्र के हाथो रक्षित बताया गया। इसके अलावा हमारे धर्म ग्रंथ रामायण की नायिका सीता द्वारा अपने सतीत्व को प्रमाणित करने वाली अग्निपरीक्षा किसे ज्ञात नहीं है? महाभारत जैसे महाकाव्य की नायिका द्रौपदी का दुनियां के एक से बढ़कर एक श्रेष्ठ जनों से भरी सभा में चीरहरण को हम कैसे भूल सकते हैं? मध्य काल तक आते-आते नारी एक मानवी न रहकर पुरुष की विलासिता को शांत करने वाली वस्तु बनकर रह गई। आधुनिक युग में नारी सदियों की सुप्तावस्था से जागकर सचेत हो गई और शिक्षा रूपी शस्त्र पाकर वह आत्मनिर्भर एवं साहसी हुई। जिसके कारण सदियों से सोया हुआ उसका स्वाभिमान जाग गया है। आज वह खुलकर अन्याय के विरूद्ध आवाज उठाने लगी है और अपने अधिकारों के लिए लड़ने लगी है।

वर्तमान काल में नारी हर क्षेत्र में पुरूष के समान सम्मान एवं अधिकार पाना चाहती है और नारी के इस प्रवास में सरकार भी कभी विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, स्वास्थ्य संबंधी योजनाओं के माध्यम से, कभी महिलाओं के संरक्षक में कानून बनाकर एवं जागरूकता फैलाकर पूरा सहयोग दे रही है। महिलाएं भी सरकार के सहयोग से लाभ उठाकर हर क्षेत्र आगे बढ़कर राष्ट्र की उन्नति में

अपना अविस्मरणीय योगदान दे रही है।

आवश्यकता इस बात की है कि जिस प्रकार अति से अमृत भी विप बन जाता है। उसी प्रकार आवश्यकता से अधिक स्वछंदता भी उन्नति की ओर नहीं बल्कि पतन की ओर ले जाती है। जीवन के हर क्षेत्र में संयम की आवश्यकता है। यदि नारी की स्वतंत्रता राष्ट्र की उन्नति में सहायक है तो राष्ट्र को उन्नति के शिखर पर पहुंचाने एवं उसे बनाए रखने के लिए नारी का संयमित एवं विवेकशील व्यक्तित्व उसके लिए अनिवार्य है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. शंकर प्रसाद, सामाजिक उपन्यास और नारी मनोविज्ञान, पृ.स. 25, अनुपम प्रकाशन, पटना, 19781
2. वन्तम दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. स. 69, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा, 1974
3. मनुस्मृति, 3156।
4. वल्लभ दास तिवारी, हिन्दी काव्य में नारी, पृ. स. 69, जवाहर पुस्तकालय, मधुरा, 1974।
5. रामायण, किरिया काण्ड, पृ. स. 33, 361
6. डॉ. किरण वाला अरोड़ा, साटोतरी हिन्दी उपन्यासों में नारी, पृ. स. 100।
7. शिवकुमार शर्मा, हिन्दी साहित्य एवं प्रवृतियाँ, पृ. स. 21, अशोक प्रकाशन, दिल्ली। 8
8. श्याम सुन्दर दास, कबीर ग्रंथावली, इण्डियन प्रेस, प्रयाग।
9. प्रेमचंद, गोदान, पृ. स. 150, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।

उत्तरसीताचरितम् महाकाव्य में महिलासशक्तिकरण की अवधारणा

डॉ० चंद्रप्रभा गंगवार*

असिस्टेंट प्रोफेसर , संस्कृत, राजकीय स्नातकौत्तर महाविद्यालय,बीसलपुर ,पीलीभीत,उ0प्र0।

वर्तमान समय नारी जागरण और उद्‌घोष व सशक्तिकरण का समय है। स्त्री का कार्यक्षेत्र घर की चार दीवारी से निकलकर आर्थिक, राजनीतिक ,सामाजिक तथा साहित्यिक क्षेत्र में विस्तृत हुआ है। वैदिक साहित्य, आर्ष काव्य,पौराणिक साहित्य व लौकिक साहित्य में स्त्री अपाला, घोषा, गार्गी, अनुसुइया, सीता,द्रौपदी शकुंतला इत्यादि विविध रूपों में अपने सशक्त स्वरूप के साथ प्रस्तुत है। भारतीय संस्कृति की निरंतर प्रभावित होने वाली सुदीर्घ परंपरा में नारी की स्थिति गौरव, सम्मान, प्रतिष्ठा, सौंदर्य, योग्यता इत्यादि समय–समय पर किंचित परिवर्तन के साथ शोभायमान है।वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति पुरुषों के बराबर थी। उन्हें सामाजिक व आर्थिक अधिकारों में पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। उत्तर वैदिक काल में भी स्थिति सामान रही। कलानुक्रम से परिवार व मानव समाज में आई गिरावट से स्त्रियों की सामाजिक स्थिति में पतन होता गया।महिला समाज के बनाए गए कानून की जंजीरों में जकड़ती चली गयी।

वर्तमान में महिला सशक्तिकरण एक ज्वलंत विषय है। सशक्तिकरण का अर्थ महिलाओं के अधिकारों तथा शक्तियों का स्वाभाविक रूप से समावेश । सशक्तिकरण एकमानसिक अवस्था है जो कुछ विशेष आन्तरिक कुशलताओं और शैक्षिक, सामाजिक, आर्थिक,राजनैतक आदि परिस्थितियों पर आधारित होती है। जिसके लिए समाज में आवश्यक कानूनों,सुरक्षात्मक प्रावधानों और उनके भली– भाँति क्रियान्वयन हेतु सक्षम प्रशासनिक व्यवस्था होनाअत्यन्त आवश्यक है। वास्तव में सशक्तिकरण एक सक्रिय तथा बहुआयामी प्रक्रिया है जिसे राज्यके सक्रिय हस्तक्षेप के बिना समाज के सम्बन्धों में इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता है।

˙ महिलाओं के लिये सर्वसम्पन्नतथा विकसित होने हेतु सम्भावनाओं के खुलेंद्वार, भोजन,पानी, घर, शिक्षा,

स्वास्थ्य, सुविधाएं, शिशु पालन, प्राकृतिक संसाधन, बैंकिग सुविधाए ˙, कानूनी अधिकार तथा प्रतिभाओं के

विकास हेतु पर्याप्त रचनात्मक अवसर प्रदान करना हीमहिला सशक्तिकरण है।

संस्कृत साहित्य के प्रहरी कवियों ने अपने साहित्य के माध्यम से महिलाओं से जुड़ी बाल विवाह, सती प्रथा, दहेज प्रथा, बहु विवाह, बेमेलविवाह, विधवा विवाह जैसी प्रथाओं को मुखरित किया। विद्वान आचार्यों के स्वरचित महाकाव्यों में इस प्रकार के अनेक**महिला सशक्तिकरण** से सम्बन्धित संदर्भों का प्रयोग किया है।

आधुनिक संस्कृत कवियों की परंपरा में पंडित रेवा प्रसाद द्विवेदी देववाणी संस्कृत के प्रखर पोषक व उपासक हैं। द्विवेदी जी का जन्म 22 अगस्त 1935 को मध्य प्रदेश के भोपाल के समीप नंदनगर अथवा नादनेर में हुआ था।[1]आधुनिक संस्कृत साहित्य में आपने अपनी अमूल्य लेखनी से महत्वपूर्ण योगदान किया है।द्विवेदी जी द्वारा रचित **उत्तरसीताचरितम** महाकाव्य आधुनिक महाकाव्य परंपरा में नायिका प्रधान महाकाव्य है।पहले इसका नाम **सीताचरितम** था। बाद में उत्तर सीताचरितम रखा गया।[2] उत्तर सीता चरितम का संपूर्ण इतिव ृत सीता के इर्द–गिर्द ही घूमता रहता है। साहित्यदर्पण में आचार्य विश्वनाथ नायिका को भी नायक के समान गुणवान बताते हैं। भारतीय संस्कृति व धर्म का साक्षात स्वरूप सीता को द्विवेदी जी एक नूतन प्रगतिशीलता के साथ प्रस्तुत करते हैं। सीताचरितम महाकाव्य में द्विवेदी जी ने स्त्री समाज की समस्याओं को प्रकाशित किया है।

सीता, कौशल्या, कैकेयी, उर्मिला इत्यादि सभी स्त्रियों को द्विवेदी जी ने तत्कालीन महिला समाज से जोड़ते हुए मुखरित रूप में प्रस्तुत किया है। सीता तो मानो महिला सशक्तिकरण के प्रतीक के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित होती है। द्विवेदी जी ने उर्मिला सीता संवाद के द्वारा महिला समाज के जागरण की बात कही है।

उर्मिला सीता से कहती है "यदि पुरुष अपनी मां मर्यादाओं का हनन कर नारी के ऊपर अन्याय व अत्याचार करें तो नारी को चुप नहीं बैठना चाहिए अपितु सबला होकर अन्याय का विरोध करना चाहिए–

पुरूषः स्थितिमीदशीं यदि प्रतिहन्तुं क्रमतेस्वतस्ततः।

अबला प्रबलात्वमीयुषी किंतु न ब्याज्जगती शिवेच्छया।।[3]

स्त्रियों को भी पुरुषों के सामान की अपनी भी निजी मान मर्यादा एवं सम्मान की रक्षा के लिए तत्पर हो जाना चाहिए। द्विवेदी जी के दृष्टिकोण में यही धर्म है। समाज में जो भी उद्दंड व्यक्ति चाहे वह स्त्री हो या पुरुष यदि स्त्रियों पर अत्याचार करता है। तो नारी को चुप नहीं बैठना चाहिए अनेक स्थलों पर दिवेद्वी जीने नारी सशक्तिकरण व नारी जागरण की बात कही है ।

उत्तर सीता चरितम में सीता पर त्याग की घटना को वर्णन करने के लिए द्विवेदी जी ने सनातन परंपरा में चले आ रहे चल का आश्रय नहीं लिया है। उत्तर सीताचरितम की सीता जन अपवाद को सुनकर श्री राम के द्वारा बुलाए जाने पर राज परिवार की सभा में स्वयं अयोध्या का व श्रीराम को त्यागने की घोषणा करती हैं–"भले ही कमल अपने हृदय में सूर्य की प्रथा को धारण करें समाज उसको कीचड़ से उत्पन्न ही मानता है। मैंने अपनी पवित्रता का प्रमाण दे दिया है। फिर भी अयोध्या की जनता मुझ में दोष देख रही है अतः हे माता! मैंस्वयं बन जा रही हूं।"[4]

वर्तमान युग विज्ञान का युग है तथा नायिका का निरीक्षण भी वैज्ञानिक दृष्टिकोण से होना चाहिए। उत्तर सीताचरितम में सीता एक प्रभावशाली सशक्त, आकर्षित नायिका है। जो अपने स्वाभिमान, आत्मबल और सत्यसंकल्प के आधार पर विशेष गुणों को प्रदर्शित करती हैं। युग की चेतना को आत्मसात कर वर्तमान असंतोष जनक स्थिति के प्रति विद्रोह व आक्रोश व्यक्त करके नई मान्यताओं की स्थापना करती है। उर्मिला के माध्यम से द्विवेदी जी ने नई चेतना का आवाहन किया है। यदि पुरुष स्त्री की मर्यादा को नष्ट करना चाहता है। तो अबला होते हुए भी नारी को प्रबला क्यों नहीं हो जाना चाहिए? विश्व कल्याण के लिए। [5]द्विवेदी जी

के दृष्टिकोण से सीता समस्त संसार के कल्याण और मंगल विधान व नारी सशक्तिकरण के लिए ही मानव शरीर धारण कर प्रकट हुई है—

निमीकुलतपसाम् वासत्फलं पुण्यभयाको रविकुल जनुषां वा जानकीत्आर्या।

व्यरुचदवनिपालस्यार्थं भद्रासनस्थ श्रितवपुरिव लोकस्ययोदषसी लक्ष्मीश्री।।[6]

उनका रूप व गुण अद्वितीय है ।नवीन समुद्र मंथन से उत्पन्न लक्ष्मी सी पद्मासन पर विराजमान आश्रम में महामुनियों की पूर्ण प्रज्ञा की पुनः जाज्वल्यमानं लोक नेत्रों में शिव की ज्योदिष्मती चंद्रकला से सुधा बिखेरती, मूर्तिमती, वैदिक संस्कृति सीसंयासकषाय धा,रण की हुई आदि कवि की छंदस्वती प्रतिभा, पृथ्वी की दिव्य पुत्री, वह पुरुषोत्तम की पत्नी, रावण की कालरात्रि के समान राष्ट्र की देवी के रूप में स्थापित है—

पद्मासनास्था कमलेव नूत्नात्पयोधिमन्थादुपजायमाना ।

प्रज्ञेवपूर्णा विमले मुनीनां पदे पुनर्मास्वरतां दधाना ।।

ज्योतिष्मतीवेन्दुकलेन्दु मौलेनत्रेषु लोकस्य सुधां दुहाना ।

वपुष्मतीवागम संस्कृति श्रीः संन्यास काषाय कमाश्रयाणा ।। [7]

सीता ओज में शक्ति स्वरूपा दुर्गा है। समस्त सिद्धियां से परिपूर्ण सीता प्रत्येक परिस्थिति में अटल अडिग रहती हैं। द्विवेदी जी की सीता राजमहल सुकुमार राजकुमारी नहीं वरन् वन के कष्ट पूर्ण वातावरण में भी आनंदित हो अपने दायित्वों का पालन करने वाली सशक्त स्त्री है।

सीता का राम के प्रति अपरिमित प्रेम एवं श्रद्धा उनके पतिव्रत धर्म का परिचायक है लोकपवाद को सुनकर भी वे तनिक दुखी या विचलित नहीं होती बल्कि पति श्रीराम की कीर्ति के लिए वन कानन कहीं भी जाने को तैयार हो जाती ह। सुख शांति से पूर्ण राम राज्य में उनके कलंक की तपन नहीं पैदा करना चाहती और विश्वकल्याणके लिये साकेत छोड़कर वन को जाना चाहती

हैं उन्हें कष्ट केवल इतना है कि मनुष्य स्त्रियों को केवल स्त्री होने के कारण शंका से देखता है।[8]

गर्भभारभरालसा सीता निर्जन वन में तनिक भी भयभीत नहीं होती।निडर हो प्रसव वेदना को आत्मसात कर रघुकुल अंश को जन्म दे उनकी सुरक्षा में तत्पर रहती है । उनका आदर्श पति व्रत धर्म वर्तमान समय की स्त्रियों के लिए एक आदर्श है जो छोटी–छोटी बातों पर अपने पति, परिवार, पिता किसी के भी सम्मान की रक्षा न कर केवल स्व– सुख व अहंकार को वरीयता देती है। परिवार से सामंजस्य स्थापित कर चलना स्त्री की दुर्बलता नहीं बल्कि सबलता है। सशक्तता है ।वही स्त्री सीता जैसी सशक्त है जो विपरीत परिस्थितियों में अपने परिवार व पति व समाज के कल्याण के लिए स्व सुख व सभी स्वार्थ को त्याग देती है।सशक्त स्त्री के चित्रण में द्विवेदी जी ने सीता में धैर्य, गंभीरता, पांडित्यऔर अपूर्व भाषण क्षमता के गुण को चित्रांकित किया है। सीता परित्याग के निश्चय को प्रकट करने में समर्थ श्रीराम की विमलचित धर्मपत्नी स्वयं ही धैर्यपूर्वक अपने पांडित्यपूर्ण विचारों को प्रकट करते हुए कहती है–

वीक्षतेयदपि सर्वबिम्बतः शैत्यमुदभवति नैव जातुचित।

एवमेव न निशीथिनीयतेः क्वापि नियति तुषारशीतता ।। [9]

सीता के माध्यम से द्विवेदी जी एक सशक्त महिला के चरित्र को प्रस्तुत करना चाहते हैं । जिसकी एक विशेषता है स्वकार्य स्वयं से करना। सीता को द्विवेदी जी ने एक स्वावलंबी स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया है जो अपने पुत्रों के पालन पोषण के साथ ही आश्रम में ऋषि कन्याओं को भी कार्यों की शिक्षा देकर उन्हें कर्म कुशल बना देती है। ऋषि वाल्मीकि के आश्रम में सीता के आने के बाद से विकास दिखाई देने लगता है । यदि सीता स्वपरिश्रम से जंगल के आश्रम को नगर जैसा बना सकती हैं । तो वर्तमान समय की निर्बल महिलाएं यदि मिलकर कार्य करें तो क्या नहीं कर सकती । नेतृत्व करने की क्षमता भी सीता के अंदर है जो आश्रम की सभी बालिकायें सीता के अनुसार कार्य को कुशलतापूर्वक संपन्न करती है।

आत्मनिर्भरता की भावना भी एक स्त्री को सशक्त बनाती है। सीता में आत्मनिर्भरता की भावना कूट–कूट कर भरी है। सूर्य बिम्ब के रंग की भांति दो वस्त्र अतसी के धागों से स्वयं बनाकर पहनती हैं। वस्त्र ,बर्तन, चटाई, खेल ,खिलौने इत्यादि वस्तुओं वे स्वयं से बनाती हैं । और अपने पुत्रों को भी स्वावलंबन की शिक्षा बाल्यावस्थामें ही दे देती है। उत्तर सीताचरितम् महाकाव्य में सीता अपने पुत्रों के साथ परिश्रम करती दिखाई देती हैं ।धान के खेतों को स्वयं निराई करती है और कृषकों की कठोर हाथों से की गई स्वभूमि सेवा को करारी मात देती हैं। [10]

आश्रम के कठिन तप व्रत का पालन करने से कृषकाय सीता मन से सशक्त हैं । वे धैर्य पूर्वक अपने बच्चों का पालन पोषण करती हैं क्योंकि आर्य जाति की तपस्विनों में बच्चों का पालन प्रथम और सर्व प्रधान कार्य के रूप में तय हुआ है। [11]सीता मानसिक रूप से भी सशक्त हैं । द्विवेदी जी सीता के महान चरित्र के द्वारा जी सशक्त नारी का चरित्र प्रस्तुत करना चाहते हैं ।वह उसमें पूरी तरह से सफल हुए हैं ।लव कुश के साथ चंद्र केतु का युद्ध जब समाप्त हो जाता है तो श्री राम आश्रम पहुंचते हैं सब कुछ ज्ञात होते हुए भी सीता पराडमुख रहती हैं ।समस्त परिवार के पहुंचने पर भी वह जरा भी विचलित नहीं होती और अपने कर्तव्य मार्ग पर अडिग रहती है।[12]

उत्तर सीताचरितम् में द्विवेदी जी ने आचरण की महत्व पर अत्यंत बल दिया है । क्योंकि स्त्री की सच्चरित्रता व पवित्रता ही उसकी शक्ति होती है । और वही उसकी सशक्तता की परिचायक होती है ।यदि स्त्री चरित्रवान होगी तो वह निश्चय ही समाज के समक्ष सशक्त रूप में खड़ी रहेगी ।सीता के हृदय में उठने वाले व्यथित भावों के माध्यम से समस्त स्त्री जाति की व्यथा को द्विवेदी जी ने प्रकट किया है संपूर्ण सीताचरितम् महाकाव्य में सीता व उर्मिला को एक सशक्त स्त्री के रूप में प्रस्तुत किया गया है जो शारीरिक, मानसिक व भावनात्मक रूप से सशक्त हैं ।

वर्तमान भौतिकवादी युग में मां सीता की भांति ही प्रत्येक स्त्री को पग–पग पर कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है ।हमें प्रेरणा लेनी चाहिए मां सीता के सशक्त आदर्श चरित्र से जो विपरीत परिस्थितियों में धैर्य के साथ अडिग रहकर अपने दायित्व

का निर्वाह करती हैं परंतु सत्य व सदाचार का मार्ग कभी नहीं त्यागती है ।उत्तर सीता चरित्र की सीता के माध्यम से द्विवेदी जी ने वर्तमान समाज के लिए महिला सशक्तिकरण का एक अनूठा उदाहरण प्रस्तुत किया है ।जो अपनी संस्कृति ,धर्म मर्यादा ,व सदाचार में रहकर भी जगत के सर्वोत्कृष्ट पद को प्राप्त कर एक आदर्श स्थापित करती हैं। महिलासशक्तिकरण व नारीजागरण के मुखरित स्वर के कारण यह महाकाव्य आधुनिक संस्कृतसात्यि का अद्वितीय महाकाव्य है ।

1. पृष्ठ सं0 354 ,आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा ,श्री केशव मुसलगाँवकर ,चौखम्बासुरभारती प्रकाशन,वाराणसी,उ0प्र0।
2. पृष्ठ सं0, 48 , **उत्तरसीताचरिचतम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन** ,शोधप्रबन्ध, श्री राकेशचन्द्र ,सन् 2019 में लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ द्वारा शोध उपाधि प्राप्त।
3. 3/57 उत्तर सीताचरितम् , षष्ठ संस्करण,रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी ।
4. 2/4–6 उत्तर सीताचरितम् , षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी ।
5. 4/54 उत्तर सीताचरितम् , षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी ।
6. 1/68 उत्तर सीताचरितम् , षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी ।
7. 9/51–52 उत्तर सीताचरितम्,षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी।
8. 3/8–9 उत्तर सीताचरितम्,षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी।
9. 3/5 उत्तर सीताचरितम्,षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी।
10. 6/44 उत्तर सीताचरितम्,षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी।
11. 6/58 उत्तर सीताचरितम्,षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी।
12. 9/3 उत्तर सीताचरितम्,षष्ठ संस्करण, रेवा प्रसाद द्विवेदी ,प्रकाशक कालिदास संस्थान वाराणसी।

संस्कृत वाङ्मय में महिलाओं की स्थिती

लीना पांडे
संशोधन अभ्यासक
E-mail ID : leenaspande@gmail.com
Mob. No. 8087108061

सारांश -

वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माण में नारी ने अपने विविध रूपों द्वारा जो अद्वितीय योगदान दिया उससे वह विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँची।

अर्थवेद ने नारी को -

सुभसत्तारा [1] (अर्थवेद 20:126:6) सौभाग्यवती,

स्योना [2] (अर्थवेद 14:2:1) सुखकारिणी

शिवा [3] (अर्थवेद 14:2:18, 19:40:2) कल्याणकारिणी,

सुमङ्गली [4] (अर्थवेद 142:26)

आदि विशेषणों से संबोधित कर उसकी श्रेष्ठता व ज्येष्ठता को रूपांकित किया है।

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में महिलाओं की स्थिति बहुत गौरवशली थी, और यह मेरा शोधप्रबंध वर्तमान समाज को फिरसे यही समझाने का फलस्वरूप है।

उद्देश -

प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में महिलाओं की गौरवशाली स्थिति से वर्तमान समाज को अवगत करना ।

संशोधन पद्धती -

प्रस्तुत शोध निबंध के लिए विवेचनात्मक शोध पद्धती अपनाई गई है।

वागर्थाविव संयुक्तों वागर्थप्रतिपत्तये।
जगतः पितरौ वन्दे पार्वतीपरमेश्वरौ।[5]

महाकाव्य 'रघुवंशम्' से उद्धृत यह पंक्ति समाज में स्त्री - पुरूष समानता की सूचक है। भारतीय संस्कृति अर्धनारीश्वर की परंपरासे ओतप्रोत है। अर्थात समाज में स्त्री - पुरूष को समान दर्जा मिलना चाहिए। इस भावना का सम्मान करनेवाली.।

वैदिक साहित्य में नारी का गृहस्थाश्रम में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान था। दुहिता के रूप में पत्नी या माता के रूप में वह सर्वथा सम्मान योगी थी ''जायेदस्तम्' जाया ही घर है।

गृहिणी गृहमुच्यते

की भावना ऋग्वेदीय युग में प्रौढ़ता को प्राप्त कर चुकी थी।

सामाजिक दायित्वों के निर्वाह हेतु नारी का शिक्षित होना आवश्यक है। ऋग्वैदिक काल में नारी का जो गौरव होता था उसका मूल कारण स्त्री शिक्षा का प्रचलन ही था। ऋग्वेद से हमे ऐसे कई प्रमाण मिलते है, जिससे हमे ज्ञात होता है कि स्त्रियां वेदाध्ययन करती थी।

ऋग्वेद में 24 ऋषिआकों का उल्लेख है। इन्होंने वैदिक मन्त्रों का दर्शन किया था। इनके द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या 224 है। इन ऋषिकाओं का सूक्तों का सार्वकालिक एवं सार्वभौतिक महत्व है। वाक् आम्भृणी का वाक्सूक्त भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे, कामायनी का श्रदधासूक्त मनोवैज्ञानिक दृष्टि से, रोमशा ब्रम्हवादिनी का सूक्त आध्यात्मिक दृष्टि से, इन्द्राणी का सूक्त सामाजिक दृष्टि से तथा सूर्या

सावित्रीका सूक्त सांस्कृतिक दृष्टि से आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने वैदिक काल में थे।

ऋग्वैदिक काल में महिलाओं का गृहिणी के रूप में व्यापक अधिकार प्राप्त थे। उसे घर की सम्राज्ञी माना जाता था। इसी संदर्भ में ऋग्वेद के दशम मण्डल में वधू को दिया जानेवाला आशीर्वाद -

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।। [6]

अर्थात - वधू तुम सास, ससुर, ननद और देवरों पर प्रेम का साम्राज्य स्थापित करो। सब तुम्हारे अनुशासन में रहे।

महिलाओं को समाज में गौरपूर्व स्थान प्राप्त था। पारस्कर गृहयसूत्र में नारी के गौरव का वर्णन हमे प्राप्त होता है।

'तमाद्य गाथां गास्यामि या स्त्रीणामुत्तम यश इति।'[7]

ऋग्वेद के मन्त्रों से महिलाओं के धार्मिक अधिकार एवं कर्तव्यों का ज्ञान होता है। यज्ञ में अर्धांगिनी के रूप में उसकी पुरूष के समान सहभागिता थी। महिला सहधर्मिणी थी, जिसके साथ मिलकर धार्मिक कार्य का अनुष्ठान किया जाता था। और इसलिए एक अविवाहीत व्यक्ति यज्ञ के अधिकार से वंचित था।

'अयज्ञो वा हयेष योऽपत्नीकः।'[8]

ऋग्वेद की महिलाएँ राष्ट्र के प्रति बडी जागृक थी। वह राष्ट्र की जिम्मेदार नागरिक थी। राष्ट्रीय महत्त्व की गतिविधियों के संचालन में उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका अथर्ववेद में इन्द्राणी का आदर्श सेनानी के रूप में चित्रण किया गया है। वह अजेय है। सेना के आगे चल कर नेतृत्व करती है।

प्रेत पादो प्रस्फुरतं वहतं प्रणतो गृहान् ।
इन्द्राण्येतु प्रथमाऽजीताऽमुषिता पुरः।।[9]

खेल ऋषि की पत्नी विश्पला अपने पति के साथ युद्ध में गई थी। वहां युद्ध के दौरान उसकी जांघ टूट गई। अश्विनी कुमारों ने उसकी कृत्रिम जांघ बनाई थी। (ऋग्वेद 1/112/10 और 1/118/8)

याभिर्विश्पला धनसामथर्व्यं सहस्त्रीमीह्ल आजावजिन्वतम्।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्।[10]
युवं धेनुं शयवे नाधितायपिन्वतमश्विना पूर्व्याय।
अमुचतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घा विश्पलाया अधत्तम।।[11]

भूमि जोतने वाला कृषक पृथ्वी को माता के समान पूज्य मानता है। जो स्वयं को मातृभूमि का पुत्र मानकर अपने भागोद्गार व्यक्त करता है -

माता भूमिःपुत्रोSहं पृथिव्याः [12]

तैत्तिरीय उपनिषद के अधिप्रज अर्थात प्रजाविषयक संहितामें माता को पूर्वरूप माना गया है।

माता पूर्वरूपं पितोत्तररसम् । प्रजा संधिः।[13]

साथ ही माता को भगवान मानने की शिक्षा दी जाती है।

मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव।[14]

वैदिक वाङ्मय में पाई गई इस सराहनीय भूमिका का संस्कृत साहित्य में भी स्वागत किया गया है। महाभारत में माता को परमगुरू कहकर संबोधित किया गया है।

गुरूणां चैवसर्वेषां माता परमको गुरूः।।[15]

बृहदारण्यक उपनिषद में, एक दम्पति जो विद्वान और दीर्घायु पुत्री की प्राप्ति की कामना करते है, उस विवाहीत जोडे के लिए विशेष औषधि का कथन है।

अथ य इच्छेद् दुहिता में पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति
तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तम श्रीयातामीश्वरौ जनयितवे ।।[16]

यह कथन उस लोकप्रिय धारणा को खंडित करता है कि वैदिक साहित्य में कन्या संतान की इच्छा का अभाव है। बेटी को महत्त्व देने की इस वैदिक विचारधारा का प्रभाव संस्कृत साहित्य में भी देखने को मिलता है। महाभारत में लडकियों को लक्ष्मी का निवास कहा गया है।

नित्यं निवसले लक्ष्मीः कन्यकासु प्रतिष्ठिता।[17]

रामायण में कन्या का दिखना शुभ माना गया है। वनवास से लौटने वाले राम का पहले कन्याओंद्वारा और उसके बाद ही उनके विश्वसनीय सेनापतियों और मंत्रियों द्वारा स्वागत और अभिषेक किया जाता है।

उपरोक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि वैदिक काल महिलाओं के लिए स्वर्ण युग था।

कविकुलगुरू कालिदास का साहित्य मानो भारतीय संस्कृति का एक प्रतिबिंब है। अभिज्ञान शाकुन्तलम् की शकुन्तला हो, वह 'कुमारसंभवम्' की रति हो या पार्वती, रघुवंश महाकाव्य में सुदक्षिणा हो या इंदुमती, चाहे मेघदूत की यक्षप्रिया हो या विक्रमोर्वशीयम् की उर्वशी, भगवती पार्वती शिव की पत्नी बनी जो स्वयं को कृतददास कहते थे। वह सभी भाग्यशाली महिलाओं के लिए एक स्पृहणीय और आदर्श बन गई ।

सुदक्षिणा चक्रवर्ती सम्राट की पट्टराणी है, लेकिन फिर भी गुरू वशिष्ठ के आश्रम में नंदिनी की सेवा स्वयं करती है। वह महान नारी गौरव की संरक्षिका है। जिन्होंने भारतीय नारी के लिए आदर्श स्थापित किया। अभिाज्ञन शकुन्तला में राजा दुष्यन्त शकुन्तला के साथ गन्धर्व विवाह करते हैं। इससे स्पष्ट है कि उस समय गंधर्व विवाह प्रथा विद्यमान थी। और इसलिए महर्षि कण्व ने भी इसे

अनुमोदित किया है। साथ ही ब्रम्हचारिणी महर्षि कण्व के आश्रम में भी रहती है। इससे स्पष्ट है कि उस समय स्त्रियाँ भी ब्रम्हचर्य व्रत का पालन करती थी। जैसे तपस्विनी गौतमी आदि।

जब शकुंतला पतिगृह जाने के लिए निकलती है, तो कण्व, जो एक वनवासी है, लेकिन सांसारिक मामलों के भी जानकार थे। शकुन्तला से कहते है कि पतिकुला जाकर -

शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृत्तिंसपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मास्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुसेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधराः।।[18]

(अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/18)

गौतमी की उनका समर्थन करती है।

अर्थात - आप सास-ससुर, गुरूजन मंडली की सेवा करेंगी आप सखी का भाव रखेंगी, पति के प्रतिकूल व्यवहार पर भी क्रोधपूर्वक प्रतिकार आप नही करेंगे, आप अपने परिवार के साथ सही रवैया रखेंगे, अपनी भाग्य पर कभी नही घमंउ मत करो, इस प्रकार महिलाओं को मिलती है 'गृहलक्ष्मी' की उपाधि और इससे विपरीत आचरण करणेवाली महिलाए मानसिक विकास उत्पन्न करती है। यह उपदेश आज भी उतना ही महत्वपूर्ण है। जितना पहले था।

शकुन्तला गौतमी और शार्ङ्ग्ख के साथ दुष्यन्त के महल में जाती है। प्रतिहारी राजा से कहती है –

ननु दर्शनीथा पुनरस्या आकृतिर्लक्ष्यते।[19]

जिस पर राजा तुरंत उत्तर देता है -

भवन्तु । अनिर्वर्णनीय परकलत्रम्।[20]

किसी और की पत्नी पर नज़र डालना सही नहीं है, क्या आज ये संभव हो सकता है? राजा का यह उत्तर धर्मनीति के अनुरूप है। शकुन्तला ने अवगुंठन धारण कर रखा है। उस समय राजा उन्हें अवगुंठन धनवती कहकर बुलाते है। लेकिन जब राजा दुष्यन्त उसे पहचान नही पाये तभी गौतमी उससे कहती है -

'जाते, मुहूर्त मा लज्जस्व । अपनेष्यामि तावत्
तेऽवगुणुनम् । ततस्त्वां भर्ताऽभिज्ञास्यति।' [21]

इससे स्पष्ट है कि कालिदास के समय में कुलशिलवती स्त्रियाँ अवगुंठन करती थी।

विक्रमोर्वशीयम् नाटक में, काशीराज की कन्या पुरूरवा की पट्टामहिषी थी। लेकिन राजा को उर्वशी से प्यार है। एक पत्नी व्रत का आदर्श यहाँ टूट जाता है।

भास के नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' में भी यही बात लागू होती है। यह नाटक संस्कृत साहित्य का एक चमकता हुआ रत्न है। वासवदत्ता होते हुये भी इसमें उदयन और पद्मावती की कथा पीरोई गयी है। वासवदत्ता शील, धैर्य उदारता साहस प्रेम की प्रतिमूर्ति और आदर्श भारतीय महिला है, जो अपने पति के प्रति समर्पित है पूरे दिल से समर्पित है।

शूद्रक के प्रकरण 'मृच्छकटिकम' में नायक के रूप में ब्राम्हण चारूदत्त और नायिका के रूप में उज्जयिनी की गणिका वसंतसेना है। एक गणिका और एक संस्कृत नाटक की नायिका की बात भले ही गलत लगे लेकिन ये सच है। यद्यपि वसन्तसेना एक गणिका है। लेकिन चारूदत्त के प्रति उसका प्रेम सच्चा है। राजा का साला शकार के सभी प्रलोभनों को वह ठुकरा देती है।

भारवि के महाकाव्य किरातार्जुनियम में द्रौपदी के चरित्र का उत्कृष्ट एवं प्रभावशाली चित्रण किया गया है। द्रुपद सुता ने धर्मराज युधिष्ठिर को जिस विनम्र लेकिन कठोर आवाज में संबोधित किया, जिसने बृहस्पति को भी आर्श्चचकित कर दिया, वह भारवी की सभी प्रतिभा और गुणों के साथ-साथ एक स्त्री महिला के शानदार रूप को भी व्यक्त करता है।

बाणभट्ट की विश्वप्रसिद्ध संकृत साहित्य कृति कादंबरी में बाणभट्ट द्वारा चित्रित नारी पात्रों में सौम्य हृदय, विरहविधुरा, महाश्वेता के साथ-साथ सरल हृदय, गंधर्व राजकुमारी मुग्धा कादंबरी के उत्तम सौंदर्य का सुंदर संयोजन है।

महाकवि श्रीहर्ष की नैषधियचरितम् एक अनूठी कृति है, जिसमें श्रीहर्ष ने दमयंती के बाल भाव कौमार्य , विवाह और विवाह के बाद का चित्रण किया है। दमयंती बहुत सुन्दर है, प्रतिभाशाली और सरल हृदय वाली विनम्र, नम्र और धैर्यवान हैं। वह नारी महिमा का पात्र है। विदर्भ नंदिनी ने नल से विवाह करने के लिए स्वयंवर का आयोजन किया। भगवान इंद्रादि नल को उसके पास भेज देते हैं। लेकिन वह विनम्रता से उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर देती है और नल का स्वीकार कर लेती है।

इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि प्राचीन काल में भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिती गौरवपूर्ण थी। वह समय उनके लिए स्वर्णयुग था।

यदि आज भी सभी लोग अपने - अपने धर्म, मातृधर्म, पितृधर्म, पुत्रधर्म आदि ठिक से पालन करें तो भारत को फिर से 'विश्वगुरू' बनने में देर नही लगेगी। बस, सभी भारतीयों के मन में निम्नलिखित भावना जागृत होनी चाहिए

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवतः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलः क्रिया।।[22]

सन्दर्भ सूचि

1. अर्थवेद 20:126:6
2. अर्थवेद 14:2:1
3. अर्थवेद 14:2:18, 19:40:2
4. अर्थवेद 142:26)
5. रघुवंशम्-1/1
6. ऋग्वेद-10/85/40
7. पारस्कर गृहसूत्र 1/7/2
8. तै.ब्रा.2/2/2/6
9. अथर्ववेद 1/27/4
10. ऋग्वेद 1/112/10
11. ऋग्वेद 1/118/8
12. अथर्ववेद 12/1/12
13. तै.उ.1/3
14. तै.उ.1/11
15. महाभारत 1/211/16
16. बृ.उ.6/4/17
17. महाभारत 13/11/14
18. अभिज्ञानशाकुन्तलम् 4/18
19. अभिज्ञानशाकुन्तलर अंक 5
20. अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 5
21. अभिज्ञानशाकुन्तलम् अंक 5
22. मनुस्मृति 3/50

गंगादेवीकृत 'मधुराविजयम्' महाकाव्य का ऐतिहासिक महत्त्व

मधुरा प्रमोद किरपेकर
(UGC - Junior Research fellow of Sanskrit & Musicology
Savitribai Phule Pune University)
पता - 308, स्वरश्री, शुक्रवारपेठ, कऱ्हाड, जि. सातारा, महाराष्ट्र.
पिनकोड - 415110
मो.नं - 9527267078 / 8975524543
Email - madhurakirpekar1234@gmil.

भारतवर्ष में स्त्री साहित्यकारों की विदुषी परंपरा प्राचीन काल से चली आ रही है। गंगादेवीकृत 'मधुराविजयम्' अथवा 'वीरकंपरायचरितम्' यह संस्कृत महाकाव्य इसी परंपरा की मध्ययुग की एक महत्वपूर्ण रचना है। इ. 1371 में लिखित यह महाकाव्य कर्नाटक के विजयनगर के सम्राट वीरकंपरायद्वारा मदुरै सल्तनत पर विजय का ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत करता है। 9 सर्गों में निबद्ध यह महाकाव्य विजयनगर के स्वर्णिम इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण समकालीन लिखित साक्ष है। साहित्यिक एवं ऐतिहासिक धरातल पर यह उच्चकोटि की रचना है, इसी कारण स्त्री साहित्यिक के साथ ही स्त्री इतिहासकार के रूप में गंगादेवी का बहुमूल्य योगदान है। प्रस्तुत महाकाव्य के प्रारंभ में गंगादेवी ने अपने श्वशुर बुक्कराय का पराक्रम तथा विजयनगर प्रशस्ति का वर्णन किया है। मदुरै सुल्तान द्वारा प्रजा पर अत्याचार, मंदिर नष्ट करना इस अराजक का वर्णन महाकाव्य में किया है। यह उत्पीडन नष्ट करने हेतु कंपराय मदुरै पर चढ़ाई कर

विजय प्राप्त करता है तथा पुनः दक्षिणदेश को पूर्ववैभव, गरीमा प्रदान कर प्रजा को परकीय दासता से मुक्त करता है।

कंपराय की पत्नी युवराज्ञी गंगादेवी अर्थात गंगांबिका काकतीय वंश के आंध्रदेश की राजकन्या है। एकशिलानगर के निकट उसकी निवासभूमि थी। वह सर्वविद्या पारंपगत, कलाशास्त्र विशारद, साहित्य निपुण, राजकाज धुरंधर और शस्त्रपारंगत थी। सभी आदर्श भारतीय नारी के गुणों से मंडित उसका व्यक्तिचित्र दिखाई देता है। उसे अपने श्वशुर कुल एवं पति के पराक्रम का सार्थ अभिमान था। मध्यकाल में भारत पर होनेवाले लगातार आक्रमण व अस्थिरता के कारण सभी क्षेत्रों के साथ शिक्षा क्षेत्र भी बहुत आहत हुआ था। ऐसे काल में एक स्त्री द्वारा लिखा गया यह विद्वत्तापूर्ण संस्कृत ग्रंथ शिक्षा के प्रति आदरभाव तथा संस्कृति व साहित्य के प्रति आत्मीयता का बड़ा उदाहरण है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि, विजयनगर के शासन में स्त्रियों की शिक्षा को केवल स्वातंत्र्य ही नहीं अपितु उसका गौरव किया जाता था और उनके कलागुणों को सम्मान दिया जाता था। प्राचीन व मध्ययुगीन इतिहास में एतद्देशीय इतिहासकारों की संख्या अन्य देशों की तुलना में गिनी-चुनी हैं और उसमें भी स्त्रियों का योगदान अत्यल्प है। इसीलिए गंगादेवीकृत मधुराविजयम् का इस दृष्टिकोण से बहुमूल्य योगदान है।

प्रस्तुत महाकाव्य वीररसप्रधान है तथा इसकी शैली ओघवती, अक्लिष्ट, सरस एवं सुंदर है। इसमें विविध छंदों का प्रयोग बखूबी किया गया है। कालिदास और बाणभट्ट की शैली की छाप भी इसपर दिखाई पड़ती है। अनेकबार इतिवृत्त आधारित साहित्य में इतिहास और काव्य के बीच रेखा खींचना इतिहासकारों के लिए समस्या का विषय होता है किंतु अतिशयोक्ति, आलंकारिकता, दिव्यता के

मर्यादित व सम्यक प्रयोग से यह महाकाव्य ऐतिहासिक तथ्यों को हानि नहीं पहुँचाता है तथा वास्तविकता पर जोर देकर इतिवृत्त सरलता कथन करता है, यही इसकी विशेषता है।

विजयनगर साम्राज्य यह भारतीय इतिहास का एक महत्वपूर्ण कालखंड रहा है। विद्यारण्यस्वामी के प्रेरणास्वरूप हरिहर और बुक्कराय इस बंधुद्वय ने दक्षिण में इस हिंदू साम्राज्य की नींव रखी। इस्लाम में धर्मांतरित हुए इस बंधुद्वय को विद्यारण्यस्वामी ने विजयनगर के विरुपाक्ष मंदिर के निकट पंपातीर्थ पर साम्राज्य निर्माण धर्मरक्षा एवं पुनरुज्जीवन के लिए उपदेश कर पुनः हिंदु धर्म में लाने का क्रांतिपूर्ण कार्य किया। इसी उपदेश की प्रेरणा आगे मधुराविजयम् में भी दिखती है। हरिहर व बुक्कराय के काल में विजयनगर राज्य का विस्तार पूर्वकोकण, तुळु, तोडायमंडलम्, मबर, होयसाळ, द्वारसमुद्र इस प्रदेशों में हुआ था। बुक्कुरायने दीर्घकाल शासन किया। (सर्ग 1 श्लोक 75)

कर्णाटलोकनयनोत्सवपूर्णचन्द्र
स्साकं तया हृदयसंम्मतया नरेन्द्रः।
कालोचितान्यभुवन् क्रमशस्सुखानि
वीरश्चिराय विजयापुरमध्यवात्सीत् ॥

इसप्रकार से वर्णन किया है।

कंपराय कंपनुडु, वीरकंप इन्ह नामों से महाकाव्य में वर्णित इसका नायक बुक्कराय का ज्येष्ठ पुत्र अर्थात कुमार कंप यह एक अत्यंत कर्तृत्ववान, गुणवान तथा पराक्रमी शासक के रूप में प्रस्तुत होता है। अपने आयु के किशोरकाल से ही वह अपना कर्तृत्व प्रदर्शित करना प्रारंभ करता है। जैसे कि, बुक्करायने उसे विजित प्रदेश कोलार में शासक के रूप में जिम्मेदारी सौंपी थी। शासन के

साथ साथ कंपराय को अनेक युद्धों का सफल अनुभव भी था। बुक्कुराय की महारानी देवायी का यह पुत्र अपनी कार्यकुशलता के कारण युवराजपद के लिए चयनित हुआ। बुक्कराय ने उसे अपना मंत्रीमंडल, सैन्य और मांडलिक नायक सौंप दिए। तथा गौरव के साथ अपने अलंकार बहाल किए। (सर्ग 3 श्लोक 39)

सहस्त्रशस्तुङ्गतुरङ्गवीचयो
मदद्विपद्वीप विशेषितान्तराः।
भवन्तमुग्रायुधनक्रराजयो
भजन्ति नित्यं बहुला बलाब्धयः ॥

सर्ग 3 के श्लोकों में कंपराय को युवराजपद प्राप्त होने का वर्णन किया हुआ है। इस स्थान पर बाणभट्ट रचित कादंबरी के शुकनासोपदेश की तरह नीति उपदेश, राजकारण का ग्यान तथा राजधर्म का बोध बुक्कराय द्वारा कंपराय को कराया जाता है। बुक्कराय का अपने पुत्रपर अपार प्रेम वर्णित है तथा उसके कार्यकर्तृत्व पर वह विश्वास भी व्यक्त करता है। (सर्ग 3 श्लोक 36)

भवाद्दशास्तु स्वतः एव शुध्दया
गुरुपदेशैर्गुणितप्रकाशया।
धिया निरस्तव्यसनानुबन्धया
विलोक्य कार्याणि विधातुमीशते॥

इससे यह स्पष्ट होता है कि, भावी सम्राट के रूप में कंपराय प्रस्तुत होने लगा था। वही योग्य एवं सक्षम नेतृत्व था।

विजयनगर के शासक क्षत्रिय थे इसके विविध प्रमाण इस महाकाव्य में वर्णित है। कंपराय के जन्म के समय उसके क्षत्रियोचित वैदिक विधी संपन्न हुए तथा संध्याविधी के उच्चारण के प्रसंग में इसका प्रमाण मिलता है। (सर्ग-1 सर्ग श्लोक 68)

मित्राभ्युदयशालिन्या भूत्या नीत्या प्रभूतया।
मनुमेव पुनःजातं तममन्यन्त मानवाः ॥

इस महाकाव्य का नायक कंपराय का यथातथ्य वर्णन किया गया है। अनेकबार ऐतिहासिक व्यक्ति का चरित्र वर्णन विस्तार से मिलता है, किंतु उसका स्वरूप वर्णन क्वचित् ही सूक्ष्मता और विस्तार से मिल पाता है। लेकिन इस महाकाव्य में नायक की पत्नी स्वयं कवयित्री होने के कारण कंपनराय का व्यक्तिचित्रण उसके कर्तृत्व से लेकर स्वरूप तक सटीक तरीके से मिलता है। काव्य के अनुसार कंपराय अत्यंत सुंदर, सुस्वरूप एवं सौष्ठवपूर्ण शरीरयष्टी से संपन्न था तथा शक्तिशाली और वीरबाहु भी था। वह इतना सौंदर्यपूर्ण था की, मन्मथपूजा के समय राजस्त्रियाएं मन्मथ के स्वरुप उसे आरेखित करती थी। उसका मुखचंद्र तेजोमय था। वह अपने घने एवं लंबे केश बांधकर फुलों से सजाता था, हिरों का कमरबंध बांधता था। उसके आंखों की किनार किंचित् आरक्त थी और नेत्र चमकदार थे। उसकी हस्तरेखाएं भी महान वीर के लक्षणों से युक्त थी।

रूपवर्णन के साथ उसके गुणों का बखान भी किया है। वह एक नीतिमान, धार्मिक, त्यागी, उच्च मूल्यों को माननेवाला, सात्विक और गुरूजनों का आज्ञाधारक था। युद्धकला के साथ वह नीतिशास्त्र मे भी निपुण था। धनुर्विद्या की शिक्षा उसने अपने पिता से पाई। इसीके साथ वह कलाउपासक और संगीतज्ञ भी था। इसी कारण उसके लिए संगीतैकनिधी संगीतसाहित्यार्णव, गानपरमेश्वर इन उपाधियों का प्रयोग हुआ है। सांस्कृतिक समृद्धी यह विजयनगर के शासकों का विशेष लक्षण रहा है, वह कंपराय मे भी घटित होता है। उसके दरबार मे अनेक गायक, साहित्यिक, संगीतज्ञ, कवी थे। साहित्य व संगीतचर्चा के आयोजन उसके दरबार मे होते थे। कंपराय

रसिक वृत्ति का था। (सर्ग 5 श्लोक 13)

उचिततालमुदञ्चित विभ्रम चतुरचारिचमत्कृत सौष्ठवं ।
मुहुरसाववरोधमृगी दृशां मुखरसोज्ज्वलमैक्षत नर्तनम् ॥

तथा

प्रपेदिरे प्राक्तनजन्म विद्याः ।

इस प्रकार कंपराय की रसिकता उद्‌धृत होती है।

यह महाकाव्य अपने प्रवाहीपन के कारण इतिवृत्त यथायोग्य रीत्या प्रकट करता है। सर्ग 8 में गंगादेवी ने वर्णित किया है की, कंपराय के पास एक अत्यंत दुखी महिला आकर पूरे दक्षिण देश में होनेवाले अत्याचार और अधर्म को बताती है। मंदिरों को तोडना, लोगों पर अत्याचार करना, धार्मिक कृत्यों पर रोक लगाना, सुंदरेश्वर शिव का मंदिर गोमांस, मद्य से भ्रष्ट करना, लोगों की हत्या यह भीषण चित्र वह महिला कथन करती है। यह मदुराई की देवी मीनाक्षी इस महिला के रूप मे कंपराय को दृष्टान्त देने और जागृत करने पधारी थी, ऐसा वर्णन कर और दैवी संकेत को गंगादेवी ने की मेरी काव्यात्मक ढंग से चित्रित किया है। इस द्वारा केवल राज्यविस्तार नहीं अपितु जनता हित और धर्मरक्षा को इंगित किया है। समकालीन इतिहासकार मोरोक्को प्रवासी इब्न बतूता अपनी पुस्तक 'रिहला' द्वारा दक्षिण के इन्ही अत्याचारों का हृदयद्रावक वर्णन सामने रखता है। इस दुर्दशा को नष्ट करने हेतु कंपराय कार्यान्वित हो उठता है। बुक्कराय द्वारा उसे मदुरई के सुल्तान पर और दक्षिणदेश के उत्पीडक, जुल्मी शासकों पर आक्रमण करने का आदेश देता है। (सर्ग 3 श्लोक 43)

अनेने देशानधिकृत्य दक्षिणान्
वितन्यते राक्षसराजदुर्नयः ।

त्वायपि लोकत्रयतापहारिणाः
विधीयतां राघवकर्म निर्मलम् ॥

जिसप्रकार श्रीराम ने दुष्ट रावण के अत्याचारों से पृथ्वी को मुक्त किया था उसी प्रकार तुम राक्षसरुपी सुल्तान से दक्षिणदेश मुक्त कर राम का मार्ग आचरो। दक्षिणविजय के दरमियान के दरम्यान वनराजा चंपराज पर कंपराय ने विजय प्राप्त कर कांचीपुरम पर अपना अधिकार जमाया। चंपराज दिल्ली के तुघलक सुल्तानों का सहकारी था और उनकी ओर से शासन चलाता था। इसलिए चंपराज को मारकर कंपरायने उसकी राजधानी बरकतपुरम् के साथ कांचीमंडलम् जीता।

अथ वञ्चितततत्खड्ग प्रहारः कम्पभूपतिः।
अकरोदसिना चम्पममरेन्द्रपुरातिथिम् ॥

इसप्रकार चंपराज के वध का स्पष्ट निर्देश किया है। यह युद्ध व्रींचीपुरम् में हुआ। इससे यह स्पष्ट होता है कि, अत्याचारीयों का साथ देनेवाले स्वकीय राज्यकर्ताओं को भी कंपरायने जीवित नहीं छोडा, ऐसे कंटकों का उसने उच्चाटन किया।

दक्षिण के पांड्य और चोळ यह दो महत्वपूर्ण शासक दिल्ली के मुस्लिम शासकों व्दारा पराभूत हुए थे। उनको विजयनगर के शासकों ने आश्रय प्रदान किया। कंपराय के दक्षिण विजय के दरमियान युद्ध में चोळ, पांड्य, केरळ आदि राजाओं ने उसका साथ दिया। मधुराविजय के बाद इन राजाओं को कंपरायने उनके राज्य सम्मान से वापस किए। वह कब्जा करने की आततायी लालसा से अलिप्त था, यह इसीका निर्देशक है। उन राजाओं ने अपने राज्य स्वीकार कर कंपराय की संप्रभुता मान्य की। (सर्ग 4 श्लोक 32)

आलोकशब्दमुखरै रस्याग्रे पादचारिभिः।
चोलकेरलपांड्याद्यैर्वैत्रित्वं प्रत्यपद्यत॥

तथा तोंडमंडलम् का राजा संबूवराय पर विजय प्राप्त कर उसने उस प्रदेश पर अधिपत्य स्थापित किया। दक्षिण देश पे आक्रमणों मे से मदुरै सुल्तान पर विजय हासिल करना ये कंपराय की सबसे बड़ी उपल्ब्धि रही। दिल्ली के तुघलक सत्ता का प्रतिनिधिस्वरूप यह सुल्तान जलालुद्दीन एहसन शाह मदुरै पर शासन कर रहा था। आगे उसने दिल्ली के विरुद्ध विद्रोह कर स्वतंत्र शासन शुरु किया। इसीने होयसळ राजा बल्लाल को पकडकर निर्घृणता से मारा था। इसका संकेत 'वल्लालसंपल्लतिकाकुठारम्' ऐसा सर्ग 9 मे मिलता है। काव्य में सुल्तान का उल्लेख सुरतरनुड्डू, तुरूष्कसाम्राज्यकृताभिषेकम् किया है। इससे यह समझता है की, ये दिल्ली के तुघलकों से संबंधित था। यह अत्यंत क्रूर और अत्याचारी था। कंपरायद्वारा इसे मदुरै पर चढ़ाई के समय (इ.स.1343) मार दिया गया। मधुराविजय के बाद कंपरायने महाराजाधिराज, सम्राट, महामंडलेश्वर, परमेश्वर आदि बिरुद धारण किए। इस विजय से वह सेतुबन्ध रामेश्वर तक संपूर्ण दक्षिणदेश का अधिपति बना। कंपराय ने अपने अभियान की शुरुवात बिंब से की और समापन श्रीरंगम् मे किया।

कंपराय ने राजकीय सीमा विस्तार के साथ धर्मरक्षा और उसके पुनरुज्जीवन का महत्वपूर्ण कार्य किया। सुंदरशिव और मीनाक्षी देवी के बंद किए मंदिर पुनः खोलकर फिरसे नित्योपचार और धार्मिक अनुष्ठान आरंभ किए। श्रीरंगम् मठ को पूर्ववैभव प्रदान किया। मंदिरों को अनुदान एवं सुरक्षा दी। वैदिक धर्म कि पुनर्स्थापना और मंदिरों का पुनर्निर्माण, ब्राह्मणों को अग्रहार ऐसे पुण्यकर्म संपादन किए। प्रजा को धर्माचरण का उनका अधिकार बहाल किया।

प्राप्त किया हुआ नवीन राज्य योग्य पद्धति से प्रशासित होना आवश्यक है, यह बुक्कराय का कंपराय को संदेश इसमे वर्णित है।

तुरूष्कभंगस्तव नैव दुष्करः।

जनयितुस्संप्राप्तवान् शासनम्।

तथा

प्रशाधि काञ्चीमनुवर्तित प्रजः।

इस पंक्तियों से 'स्वराज्य से सुराज्य की ओर' यह संकेत प्राप्त होता है। कंपराय एक वीर योद्धा के साथ आदर्श, लोकप्रिय प्रशासक भी था। उसकी तुलना मनोकामना पूरी करनेवाले, सर्व फल प्रदान करनेवाले सर्वांगीण उपयुक्त कल्पवृक्ष से की है। (सर्ग 2 श्लोक 18)

कल्पद्रुमास्तेन हरिष्यमाणां
मत्वा निजां त्यागयशः पताकाम् ।
पयोधरप्रेषितपुष्पवर्षाः
प्रागेव सन्धानमिवान्वतिष्ठनः ॥

वह प्रजा से स्वल्प मात्रा में ही कर ग्रहण करता था अपितु न माँगते हुए भी उसके राज्य में सुखी व समृध्र प्रजा उसे कर प्रदान करती थी। (सर्ग 5 श्लोक 5)

करपरिग्रहमाचरति प्रभौ मृदुतरं मुदितप्रकृतिर्महीे।
विविधसस्यविशेषनिरन्ततरा पुलकितेव भृशं समरज्यत॥

इस पंक्तियोंद्वारा उसका सुशासन, जनता के प्रति सौहार्द और कर्तव्यदक्ष आदर्श मूर्ति प्रतीत होती है।

कुछ इतिहासकारों के मतानुसार हरिहर द्वितीय यह कंपराय से अलग व्यक्ति थी। किंतु इस काव्य में कंपराय को हरिहर इस नाम से स्पष्टतः निर्देशित किया है। 'हरिहरात्मजमेव समालिखितम्' यह पंक्ति उसीको दर्शाती है। अतः द्वितीय हरिहर यही कंपराय था इस मत को

अधिक पुष्टी मिलती है।

'मधुरा विजयम्' यह महाकाव्य का शीर्षक मधुरा पर विजय के साथ अन्याय पर न्याय की, बुराई पर अच्छाई की, अधर्म पर धर्म की विजय सुझाता है। इस महाकाव्य में महाकाव्य के सभी लक्षण घटित होते है तथा इतिहास को भी साझा करने में यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। तत्कालिन प्रथा-परंपरा, रीति- रिवाज, समाजजीवन, राजकारण, राजव्यवस्था, युध्द, शासन आदि का भी यह महाकाव्य दर्पण प्रतीत होता है। दक्षिण मे हिंदु साम्राज्य की नींव रखने का इतिहास इस काव्य से आरेखित हुआ है। परकीय दासता से मुक्ति, स्वसंस्कृति, स्वधर्म की रक्षा, प्रजाहित, राष्ट्रोत्थान, मूल्यों की रक्षा, संस्कृति की पुनर्स्थापना यह 'मधुराविजयम्' के प्राणतत्त्वयुक्त बिंदू हमे विजयनगर साम्राज्य के गौरव का तथा भारतीय संस्कृति की रक्षा का ऐतिहासिक महत्त्व बताते है।

संदर्भसूचि -

1) मधुराविजयम् (भावप्रकाशिकाख्यव्याख्यासमलङ्कृतम्) व्याख्याता - पोतुकुच्चि सुब्रह्मण्यशास्त्री
2) विजयनगर साम्राज्य Wikipedia
3) मधुराविजयम् - मराठी विश्वकोश

वाल्मीकि रामायण में नारियाँ

डॉ. पूर्णिमा सिंह राना

महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित 'रामायण' हमारी प्राचीन भारतीय संस्कृति का मूलाधार है। यह हमारे भारत वर्ष का राष्ट्रीय आदिकाव्य' है। रामायण पद 'रामस्य- अयनम से निर्मित है, इसका अर्थ है- **'राम का मार्ग या राम के जीवन को प्रकाशित करने वाला ।'** स्वयं ब्रह्मा ने इसे आदिकाव्य से सम्बोधित किया है यथा-

"आदिकाव्यमिदं राम त्वयि सर्वं प्रतिष्ठितम"[1]

यह नैतिक तथा धार्मिक आदर्शों का भण्डार होने के साथ-साथ मानवीय मूल्यों से अलङ्कृत समाजशास्त्र भी है। इसमें सहस्त्रों शताब्दियों पूर्व के भारतीय जीवन यापन का रोचक वृत्तान्त निहित है। इसमे महर्षि वाल्मीकि द्वारा तत्कालीन परम्पराओं, धारणाओं, भावनाओं तथा आकाङ्क्षाओं का सजीव चित्रण किया गया है। अतः यह प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति की अमूल्य निधि है।

किसी समाज की सभ्यता का सच्चा मापदण्ड नारी की स्थिति को माना जाता है। महर्षि वाल्मीकि ने अपने इस महाकाव्य में कथानक के प्रवाह में अनेक स्थानों पर नारी के यथार्थ स्वरूप का उल्लेख किया है। जिसके कारण हमारे समक्ष नारी के गुण-दुर्गुण, महत्ता दुर्बलता आदि मानवीय मूल्यों का मिश्रित स्वरूप उपस्थित हो जाता है। इस सन्दर्भ में अन्तः साक्ष्य की दृष्टि से नारद मुनि द्वारा वाल्मीकि के समक्ष सीता के उदात् चरित्र का उल्लेख किया गया है।[2] इस दृष्टि के समाज में नारी के प्रमुख रूप से तीन अङ्ग माने गए हैं-(1)कन्या (२) पत्नी (3) माता।

इन अङ्गों का विश्लेषण करना समीचीन प्रतीत होता है। साथ ही समाज में प्रचलित धारणाएं भी नारी जीवन को प्रभावित करती रही हैं।

(1) **कन्यात्व** - आज की भाँति रामायणकाल में भी कन्याओं को माङ्गलिक तथा उनकी उपस्थिति को शुभ शकुन माना जाता था। इस सन्दर्भ में रामायण में अनेक उदाहरण मिलते हैं यथा - राम के वन से वापस लौटने पर अयोध्या में कुमारी कन्याओं द्वारा स्वागत किया जाना[1], राम के राज्याभिषेक के समारोह में आठ सुन्दर कन्याओं का उपस्थित होना[2] आदि । इन उदाहरणों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रामायण काल में कुमारी कन्याओं का पूजन किया जाता था तथा उनकी उपस्थिति शुभ मानी जाती थी । रामायण काल में पुत्री के उत्पन्न होने पर माता पिता द्वारा स्वयं को सौभाग्यशाली माना जाता था । इस सन्दर्भ में राजा जनक को सीता की प्राप्ति होने पर उनके सुख सौभाग्य में वृद्धि होने का उल्लेख मिलता है ।[3] पुत्री के कन्यादान को अनिवार्य तथा धार्मिक कर्त्तव्य माना जाता था ।[4] अतः ऐसा प्रतीत होता है की पुत्री का उत्पन्न होना हर्ष की बात थी।

(i) **शिक्षा**- रामायण काल में पुत्री को विवाह से पूर्व समुचित शिक्षा प्रदान की जाती थी। इस सन्दर्भ में अनेक उदाहरण मिलते हैं जिनसे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि स्त्रियों की सामाजिक स्थिति उत्कर्ष पर थी। यथा- सीता द्वारा सन्ध्योपासना में राजकीय कार्यों में तत्पर होना [5],तारा द्वारा मन्त्रों का जानकार होना[6], राजकीय कार्यों में पति का साथ देने हेतु राजधर्म के ज्ञाता के रूप में सीता का वर्णन।[7] देवासुर संग्राम में राजा दशरथ के प्राणों की रक्षा करने के सन्दर्भ में कैकेयी का वर्णन[1] आदि। यहाँ स्पष्ट हो रहा है कि

स्त्रियों को कर्मकाण्ड, नैतिक तथा व्यावहारिक शिक्षा, राजधर्म, सङ्गीत-नृत्य, सैन्य आदि की शिक्षा प्रदान की जाती थी।रामायण काल में कुमारी कन्याएं पर्दे जैसे नियन्त्रण अथवा औपचारिकताओं के बन्धनों से मुक्त रहती थी। वे नगर के उद्यानों में सुसज्जित होकर सायंकाल में भ्रमण करने जाती थी।[2] ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है।

(2)पत्नीत्व– कन्या विवाह के बाद 'वधु' का पद ग्रहण करती थी यथा –"**उह्यते पतिगृहात् पतिगृहम् इति वधूः।**" नवविवाहिता होने के कारण पति के घर में वह कुछ समय अजनबी के समान रहती थी । धीरे-धीरे परिवार के सदस्यों के प्रेम और स्नेह से वह घुल-मिल जाती थी। इस काल में सास-ससुर और पुत्रवधु के बीच नितांत स्नेह सिक्त सम्बन्ध दिखाई देते है। दशरथ और कौशल्या आदि रानियों का अपनी पुत्रवधुओं के प्रति हार्दिक और निश्छल स्नेह था।

(i)कर्तव्य– महर्षि वाल्मीकि के अनुसार, "**पति ही पत्नी की एकमात्र शरण है।**"[3]अतः पत्नी की एकान्तिक निष्ठा और सेवा भावना ही उसका परम कर्तव्य है। अभूषणों से अधिक पत्नी की शोभा पति से होती है। वह पति के बिना नही जीवित रह सकती।[4] अतः पत्नी द्वारा पति की सेवा करना ही सनातन धर्म है।

(ii)अनुशासन तथा आत्मत्याग - रामायणकालीन समाज पत्नी से कठोर अनुशासन तथा अत्मत्याग की अपेक्षा रखता था। इस सन्दर्भ में पति के आचरण के विषय में अनुसुइया द्वारा सीता के समक्ष विस्तृत चर्चा की गयी है।[1] जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि पत्नी में अत्मत्याग और अनुशासन होना अनिवार्य था।

(iii)पतिव्रता - रामायण में प्रायः सभी स्थलों पर साध्वी तथा पतिव्रता नारियों का वर्णन मिलता है। जैसे- इन्द्र की पत्नी शची,

राम की पत्नी सीता, इसी प्रकार अहिल्या, अनुसूयाआदि। इस सन्दर्भ में दशरथ के द्वारा कौशल्या के प्रति कथन मिलता है कि कौशल्या सी आदर्श नारी में दासी, सखी, पत्नी, बहन और माता सबके एकत्र दर्शन किये जा सकते हैं।[2]आदि। अतः यहाँ यह स्पष्ट होता है कि प्रायः पत्नी द्वारा पतिव्रत धर्म का पालन करना सर्वोपरि माना जाता था।

(iv)शारीरिक आकर्षण– रामायणकाल में स्त्रियों में नैतिक गुणों के अतिरिक्त शारीरिक आकर्षण की भी अपेक्षा की जाती थी। वह युग सुन्दरियों का युग माना जाता था। इसके अनेक उदाहरण मिलते है यथा-सीता, कैकेयी, रम्भा, मेनका, अहिल्या आदि। महर्षि वाल्मीकि ने स्त्रियों के अंगो की तुलना किसी अन्य नारी से न करके पुष्पों, पल्लवों, पशु पक्षियों के अंगों से की है। यथा- **श्यामा**[3], **वपुश्लाध्या**[4], **करिकराकरौ**[5], **कदलीकाण्डसदृशौ** ।[6]आदि। इसके अतिरिक्त वाल्मीकि के अनुसार स्त्री का समस्त आकर्षण तभी पूर्ण और सार्थक है जब वह हृदय से उदार और स्वभाव से भी सुन्दर हो। अतः ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि रामायणकाल में नारियाँ शरीरिक रूप के साथ-साथ चारित्रिक तथा स्वभाव से भी सुन्दर थी।

(V) दुष्ट नारी का परित्याग -रामायण काल में दुष्ट नारी का भी उल्लेख मिलता है। इसे दो वर्गों में बाँटा जा सकता है-

१ . जो स्त्रियां पति द्वारा अपनी दुश्चरित्रता के कारण त्याग दी गयी थी तथा एक निश्चित अवधि के बाद पुनः ग्रहण कर ली जाती थी। जैसे- गौतम द्वारा अपनी पत्नी अहिल्या का त्याग तथा राम द्वारा उनके उद्धार के बाद पुनः ग्रहण कर लेना।

२. जो स्त्रियाँ सदा के लिए परित्यक्त कर दी गयी हों जैसे-

कैकेयी को राजा दशरथ द्वारा त्याग दिया जाना आदि ऐसा राजा दशरथ द्वारा कथन मिलता है।[1] अतः ऐसा अनुमान लगाया जा सकता है कि समाज में नारी का चरित्रवान होना आवश्यक माना जाता था।

(vi) **महत्वपूर्ण अधिकार**---- रामायण काल में नारी को कुछ महत्वपूर्ण अधिकार भी प्राप्त थे, यथा-

(क) **भरण पोषण का अधिकार**-पति का सबसे प्रमुख कर्तव्य तथा पत्नी का सबसे प्रमुख अधिकार था-उसके भरण पोषण की व्यवस्था करना। इस सन्दर्भ मे अयोध्या कांड मे उल्लेख मिलता है यथा - वन गमन के अवसर पर राम के समक्ष सीता द्वारा उनके भोजन आदि की आशा करना[2], राम द्वारा भरत के प्रति राज्य की स्त्रियों के कुशल क्षेम के प्रसङ्ग को प्रश्न पूछना।[3] आदि अतः यहाँ स्पष्ट हो रहा है कि पत्नी का भरण पोषण करना पति का प्रथम कर्तव्य माना जाता था ।

(4) **संपत्ति का अधिकार** ---"आज की भाँति रामायण काल में भी स्त्रियों को जो धन विवाह के अवसर पर माता –पिता से मिलता था वह स्त्री धन कहलाता था। इस सन्दर्भ में कौशल्या का उल्लेख मिलता है जिसके अनुसार उनके पास एक हजार गाँव थे।[4] आदि –अतः ऐसा प्रतीत होता है कि विवाह मे प्राप्त धन पत्नी कि निजी संपत्ति मानी जाती थी जिस पर केवल उसी का अधिकार होता था।

(ग) **वैवाहिक आधिकार**– रामायण काल मे पत्नियों को वैवाहिक अधिकार प्राप्त थे।उनके लिए स्पष्ट विधान दिया गया था कि उसके ऋतुकाल मे पति को उससे अवश्य सहवास करना चाहिए ऐसा न करने वाला पति पापी माना जाता था ।इस संदर्भ में भरत

द्वारा "दुष्टात्मा"[1] कहकर उस पति की तीव्र भर्त्सना की गई है ।

घ) **सहधार्मिक क्रियाओं का अधिकार** - रामायण काल के पति और पत्नी दोनों मिलकर कर समस्त धार्मिक क्रियाएं करते थे।पत्नी दो ऋणों से पति को उऋण करने मे सहयोग देती थी- (1) देवऋण (यज्ञ आदि द्वारा), (2) पितृ ऋण (सन्तानोत्पादन) यह मान्यता प्रचलित थी कि पति पत्नी संयुक्त रूप से अपना कर्म फल भोगते है।[2] इस सन्दर्भ में रामायण में अनेक उदाहरण मिलते हैं यथा- राज्याभिषेक के अवसर पर सीता की रत्नजड़ित मूर्ति को सिंहासन पर बैठाकर यज्ञानुष्ठान पूर्ण कराया जाना[3] मू कौशल्या द्वारा स्वयं ही एक स्वस्ति यज्ञ किया जाना जबकि उस समय दशरथ कैकई को मनाने मे लगे थे आदि।[4] अतः ऐसा प्रतीत होता है की समाज मे पति पत्नी को समान अधिकार प्राप्त थे।

अनैतिकता का विरोध करने का अधिकार -रामायण काल में नारी विनम्रता की मूर्ति होने के साथ साथ अपमानित होने या लांछित होने पर प्रज्ज्वलित क्रोधाग्नि के समान रूप धारण कर लेती थी । यथा - दशरथ द्वारा कैकेयी को वर देने में विमुखता प्रकट करने पर कैकेयी द्वारा क्रोधित होना[5], शूर्पणखा द्वारा खर राक्षस को अपमानित करना क्योंकि वह राम को दंडित करने मे असफल था।[6] आदि ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं।

3.मातृत्व- प्राचीनकाल से ही सी मान्यता प्रचलित है कि पत्नी के जीवन की गौरवमयी परिणति अथवा उसका पूर्णतम विकास माता बनने पर ही पूर्ण होता है। पुत्र प्रसव करके पत्नी वास्तव में अपने पति को ही पुनर्जन्म देती है। इसीलिये वह धात्री और जननी कहलाती है। रामायण काल में पत्नी द्वारा पुत्र प्राप्ति करना वंशवृद्धि तथा सामाजिक माँग की पूर्णता हेतु आवश्यक माना जाता था। इस

सन्दर्भ में रामायण के बालकाण्ड में पार्वती का पुत्र की अभिलाषा से शिव से संयुक्त होने का आख्यान वर्णित है।[1].जिसमें देवों द्वारा विघ्न डाले जाने पर पार्वती द्वारा उन्हे नि: सन्तान होने का श्राप दिया गया था। इससे प्रतीत होता है कि बाँझ (बन्ध्या) होना अत्याधिक विषाद पूर्ण माना जाता था।[2] माता बनना सर्वाधिक श्रेष्ठ माना जाता था।

(i)<u>सुयोग्य सन्तान प्राप्ति</u>- रामायणकाल में वैवाहिक दृष्टि से वर वधु का चयन भावी सुयोग्य सन्तान की प्राप्ति हेतु किया जाता है। इस सन्दर्भ में अनेक उदाहरण मिलतेहैं , यथा राक्षस सुमाली द्वारा अपनी पुत्री कैकसी से मुनीश्वर विश्रवा को पति बनाने तथा तेजस्वी पुत्र प्राप्ति करने का वर्णन[3] वानर राज केसरी की पत्नी अंजना से वायुदेव द्वारा पुत्र प्राप्ति का वर्णन [4] आदि। अत: ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण काल में स्त्री पुरुष केवल सुयोग्य सन्तान की इच्छा से समागम करते थे, तथा अन्य समय ब्रम्हचर्य, सयंम नियम का पालन करते थे।

(ii) **मनोवांछित सन्तान प्राप्ति**- उस काल में मनोवांछित संतान हेतु नारी के आचार-विचार की आत्यन्तिक शुद्धता को प्रमुख माना जाता था। इस सन्दर्भ में कश्यप द्वारा अपनी पत्नी दिति से नियत समय तक आचार की शुद्धता भंग न करने तथा उत्तम सन्तान प्राप्ति का उल्लेख किया गया है।[1] जिससे यह स्पष्ट होता है कि मनोवांछित सन्तान की प्राप्ति हेतु आत्यन्तिक शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाता था।

(iii)<u>सन्तान के प्रति निश्छल प्रेम</u>- महर्षि वाल्मीकि ने मातृत्व प्रेम को दिखाने के लिये उसकी तुलना गौ से की है, इस सन्दर्भ में रामायण के अयोध्या काण्ड में वन गमन के अवसर पर कौशल्या

द्वारा राम के पीछे अनुगमन करने का मार्मिक वर्णन मिलता है।[2] जिसमें गाय द्वारा बछड़े के पीछे-पीछे चलने की क्रिया की तुलना कौशल्या से की गयी है। यहाँ मात्र प्रेम का सच्चा आदर्श परिलक्षित हो रहा है। रामायणकाल से माता पारिवारिक जीवन का केन्द्र बिन्दु थी तथा माता के प्रति पुत्रों के स्नेह और आदरपूर्ण भाव थे।

4.अप्सरा तथा वैश्या वर्ग-रामायण में अप्सराओं का बार- बार उल्लेख मिलता है। सामान्यत: वे गणिकाओं वारांगनाओ से भिन्न नही थी । पौराणिक दृष्टि से अप्सराओं की उत्पत्ति समुद्र मन्थन से हुई, परन्तु उनको न देव और न दानव ही पत्नी रूप में ग्रहण करने को तैयार हुये। जिससे वे साधारणा: (सबके लिये सुलभ) स्त्रियाँ बन गयी ऐसा उल्लेख बालकाण्ड में मिलता है।[3]

अप्सराओं की वैश्यावृति रम्भा-रावण-प्रसंग से सिद्ध होती है। जिसमें रावण का कथन मिलता है कि अप्सराओं का कोई पति नही होता।[1] अप्सराएं नृत्य गान में दक्ष होती थी तथा ऋषि–मुनियों के संयम को भंग करने के लिये नियुक्त की जाती थी। रामायण प्राचीन भारतीय इतिहास में सम्भवत: पहली रचना है , जिसमें वैश्या वर्ग को राजकाज में सम्मिलित किया गया है तथा उन्हें राजकीय स्वीकृति भी मिली। इस सन्दर्भ में अयोध्यानगरी को कहा गया है- **गणिकावर-शोभिता**।[2] तथा सामान्य वैश्याओं के लिए **रूपाजीवाः**[3] शब्द प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार अनेक उदाहरण मिलतें है जिनसे अनुमान लगाया जा सकता है कि राजाओं के संरक्षण में तथा राजकीय मनोरंजन में भी वैश्याएं सम्मिलित थी।

5. सामाज में प्रचलित परम्पाराएं तथा धारणाएं-

रामायणकालीन समाज का नारी के प्रति दृष्टिकोण विभिन्न पहलुओं से निर्धारित होता था, जिसके कारण समाज में अनेक

धारणाओं तथा परम्पराओं का उद्भव हुआ ।

<u>(I) सती प्रथा–</u>रामायणकाल में सती प्रथा प्रचलन में नही थी इस संदर्भ मे केवल एक ही उदाहरण देखने को मिलता है यथा– राजर्षि कुशध्वज की पत्नी द्वारा शव के साथ स्वयं को अग्नि में समर्पित कर देना।[4] यद्यपि विधवाओं द्वारा पति शोक में प्राण त्यागने के कई उद्गार कहीं-कहीं मिलते है परन्तु कोई ऐसी वास्तविक घटना घटित नहीं हुई है। विधवाओं द्वारा सर्वत्र एकाकी विरहपूर्ण जीवन जीने का ही वर्णन प्राप्त होता है।

(iii) **पर्दा प्रथा** - रामायण काल में पर्दा प्रथा अनिवार्य नही थी" इस सन्दर्भ में अनेक उदाहरण मिलते हैं, यथा- भरत द्वारा राम को वापस लौटाने हेतु साथ गयी विशाल सेना में माता सहित अनेक स्त्रियों का सम्मिलित होना,[3] सीता द्वारा वन गमन के समय घूंघट न करना, इस सन्दर्भ में युद्धकाण्ड मे राम द्वारा विस्तृत उल्लेख किया गया है।[4] जबकि राक्षस कुल में पर्दा प्रथा प्रचलित थी **(ii) पुनर्विवाह**-सामान्यतः रामायण काल में नारियाँ विधवा होने पर पुनर्विवाह नहीं करती थी और समस्त जीवन वैधव्य की ज्वाला में क्षीण कर देती थी। किन्तु वानरो में विधवा के पुनर्विवाह का प्रचलन था इस संदर्भ में बाली की मृत्यु के पश्चात तारा द्वारा सुग्रीव का वरण करने का उल्लेख मिलता है।[1] इसी प्रकार राक्षसों में भी पुनर्विवाह के कई उदाहरण मिलते है, यथा- रावण के अन्तःपुर में अनेक नारियों (विधवाओं) का रखा जाना[2] आदि। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि सर्वत्र तो नहीं किन्तु कुछ- कुछ कुलों मे पुनर्विवाह प्रचलित था। इस संदर्भ मे रावण की मृत्यु के बाद मन्दोदरी द्वारा विलाप मिलता है।[5] अतः ऐसा प्रतीत होता है की पर्दा प्रथा सामान्य जनता मे तो नहीं प्रचलित थी किन्तु राक्षस

तथा वानर कुल मे इसका प्रचलन अनिवार्य रूप से था।

मांगलिक अवसरो पर विधवा उपस्थिति सर्वमान्य-

रामायणकालीन समाज में विधवा की उपस्थिति अशुभ मानी जाती थी। वे सार्वजनिक रूप से समाज में मांगलिक कार्यों मे भाग लेती थी। इस संदर्भ में रामायण के अनेक स्थानो पर वर्णन मिलते है। यथा – राम के वन से वापस आने पर विधवा माताओं सहित उनका स्वागत – सत्कार किया जाना [1], राज्याभिषेक के अवसर पर सीता का श्रृंगार विधवा सासो द्वारा किया जाना,[2] आदि। अत: यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विधवाओं की उपस्थिति अशुभ नही मानी जाती थी।

अत: उपर्युक्त समस्त विवरण से यह अनुमान लागाया जा सकता है कि रामायण काल मे नारियों की स्थिति सामान्यत: सुखद थी। तत्कालीन परिस्थितियों में नारी को कन्या, पत्नी, माता, विधवा और वैश्या के रूप में समस्त अधिकार तथा सुविधायें प्राप्त थे और इनअधिकारों के साथ वे अपने परिवार तथा समाज के दायित्वों का भली भाँति निर्वाह कर रही थी। आज के सन्दर्भ में अनुसुया, सीता, सुनयना, त्रिजटा, कौशल्या आदि रामायणकालीन नारियों के आदर्शों का पालन सामाजिक दृष्टि से किया जाना महत्वपूर्ण हो गया है क्योंकि कहीं न कहीं हमारे गृहस्थ तथा सामाजिक जीवन में ऐसी घटनायें विघटित हो रहीं है। अत: इनमें सन्तुलन बनाये रखते हुये अपने चरित्र और नैतिक मूल्यों की रक्षा करना अपेक्षित है इसलिये हमें पाश्चात्य संस्कृति की अपेक्षा अपनी संस्कृति को आगे बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए। फलस्वरूप नारी के महत्व को दर्शाती हुई यह उक्ति सर्वत्र सार्थक सिद्ध होती है, यथा – **यत्र नार्यस्तु पूजन्ते रमन्ते तत्र देवता:**[3]

सन्दर्भ

1. वाल्मीकि रामायण उत्तर काण्ड (7.98.18)
2. काव्यं रामायणं कृत्स्नं सीतायाश्चारितं। - वा रा. बालकाण्ड (1.4.7)
1.कन्याः------------------------ रामस्य पुरतो ययुः। वा.रा.(6.128.38)
2. अष्टौ च रुचिरा कन्याः। वा.रा.(2.14.36)
3.अवाप्तो विपुलामृद्धिं मामवाप्य नराधिपः। वा.रा.(2.118.32)
4. परो धर्मः........... आस्यतां मुनिपुङ्गवौ। वा.रा.(1.72.15)
5. संख्यकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी। वा.रा.(5.14.49)
6.मन्त्रवित् --------- वा.रा.(4.16.12)
7.अभिज्ञाराजधर्माणां -------वा.रा.(2.26.4)
1. अपवाह्य त्वया --------- शस्त्रे पतिस्ते रक्षितस्त्वया।वा.रा.(2.9.16)
2. उद्यानानि समागताः। सायाहेन् क्रीडितुं यन्ति कुमार्यो हेमभूषिताः।वा.रा.(2.67.17,2.60.9-10)
3. गतिरेका पतिर्नार्याः।वा.रा.(2.61.24)
पतिहीना तु या नारी न सा शक्ष्यति जीवितुम् ।वा.रा.(2.29.7)
1. नगरस्थो वनस्थो वा शुभो वा यदि वा शुभः।
Xxxx xxxx xxxx xxxx
स्त्रीणामार्यस्वभावानां परमं दैवतं पतिः।।वा.रा.(2.117.23-24)
2. यदा यदा च कौसल्या दासीव च सखीव च।
भार्यावद्भगिनीवच्च मातृवच्चोपतिष्ठति।।वा.रा.(2.12.68)
3. वा.रा.(3.31.29)
4. वा.रा.(3.34.20)
5. वा.रा.(7.26.19)
वा.रा.(3.62.4)
1. यस्ते मन्त्र कृतः पाणिरग्नौ पापे मया धृतः।
सत्यजामि स्वयं चैव तव पुत्रं सह त्वया।। वा.रा(2.14.14)
2. पत्रं मूलं फलं यत्तु अल्पं वा यदि वा बहु।
दास्यसे स्वमाहृत्य तन्मेडमृतरसोपमम्।। वा.रा.(2.30.15)
3. कच्चित् स्त्रियः सांत्वयसे कच्चितास्ते सुरक्षिताः---

वा. रा(2.100.49)

यस्याः सहस्त्रं ग्रामाणां सम्प्राप्तमुपजीविनाम् ।।वा.रा(2.31.22)

1. ऋतुस्नातां सती भार्यामृतुकालानुरोधिनीम् ।
   अतिवर्तेत दुष्टात्मा यस्यार्येऽनुमते गतः ॥ - वारा (2.75.52)
2. भर्तुभाग्यं तु नार्येका प्राप्नोति पुरुषर्षभ ।वा.रा.(2.75.5)
3. रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्य वेशयत् ।वा.रा.(6.128.29)
4. सा क्षौमवसना दृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
   Xxxx Xxxx Xxxx Xxxx
   तर्पयन्तीं ददर्शा द्भिदेवतां वरवणिनीम् ।वा.रा.(2.20.15-19)
5. वा.रा.(2.14)
   वा.रा.(3.21)

1. वा.रा. बालकाण्ड (1.36 20-24)
2. एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः। वा.रा.(2.20.37)
3. वा.रा. (7.9.11-12)
4. वा.रा.(4.66.18-19)

1. पूर्णे वर्षसहस्रे तु शुचिर्यदि भविष्यसि ।
   पुत्रं त्रैलोक्यहन्तारं मत्रस्त्वं जनयिष्यसि।। वा.रा.(1.46.6)
2. अनुव्रजिष्यामि वनं त्वयैव गौः सुदुर्बला वत्समिवाभिकांक्षया-
   वा.रा.(2.20.54)
3. न ताः स्म प्रतिग्रह्णन्ति सर्वे ते देवदानवाः ।
   अप्रतिग्रहणादेव ता वै साधारणः स्मृताः।। वा.रा.(1.45.35)

1. पतिरप्सरसां नास्ति । वा.रा.(7.26.40)
2. वा.रा.(2.51.21)
3. वा.रा.(2.36.3)
4. ततो मे जननी दीना तच्छरीरं पितुर्मम् ।
   परिष्वज्य महाभागा प्रविष्टा हव्यवाहनम् ।। वा.रा.(7.17.14)

1. वा. रा(4.21.14)
2. यास्त्व्या विधवा राजन्कृता नैकाः कुलस्त्रियः । वा. रा. (6.111.64)
3. वा. रा(2.83.6)

4. वा. रा (6.114.25-29)
5. वा. रा .(6.111.61-62)
1. ततो यानाण्युपारुदाः सर्वा नन्दिग्रामुपागमन । -वा . रा . (6.127.15-16)
2. प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
   आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम्।। वा . रा . (6.128.17)
3. मनुस्मृति (3. 56)

वैदिक साहित्य में नारी - एक अनुशीलन

वीना रानी
आचार्या संस्कृत राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हिसार।

वेद हमारे प्राचीन धर्म ग्रंथ हैं। भारतीय संस्कृति में जो मूल रूप से धार्मिक निष्ठा देखी जाती है उसका मूल स्रोत वेदों में ही निहित है। वेदों में ही भारतीयों के जीवन दर्शन का मूल्य छिपा हुआ है। यह संसार की सबसे प्राचीन रचना है। भारतीय समाज में नारी की स्थिति में जितना आरोह-अवरोह होता रहा है, संभवतः विश्व के इतिहास में किसी दूसरे समाज में यह स्थिति देखने को नहीं मिलेगी।वैदिक काल मैं स्त्रीयौं की स्थिति सर्वोच्च बताई गई है। हिंदू जीवन का दृष्टिकोण नारी के प्रति इतना सम्मानपूर्ण और गौरान्वित रहा है कि नारी को ही सभ्यता का स्रोत, संस्कृति का निर्माता व सामाजिक जीवन का आधार माना गया है। हमारी मौलिक सामाजिक व्यवस्था में स्त्रियों को सुख, संपत्ति, ज्ञान और शक्ति का प्रतीक माना गया है। जिसकी अभिव्यक्ति के रूप में लक्ष्मी, सरस्वती और दुर्गा की पूजा की जाती रही है। स्त्री को पुरुष की अर्धांगिनी के रूप में स्थान दिया गया है ।

वैदिक काल में नारी : वैदिक काल नारी आदर्श से युक्त रहा है कि नारी पुरुष की प्रवृत्ति है । जिसके बिना वह जीवित नहीं रह सकता। इस काल में स्त्रियों को शिक्षा, धर्म, राजनीति और संपत्ति में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे। अर्थवेद में कहा गया है कि नववधू तू जिस घर में जा रही है वहां की तू साम्राज्ञी है तेरे श्वसुर,

सास, देवर और अन्य व्यक्ति तुझे साम्राज्ञी समझते हुए तेरे शासन में आनंदित हो[1]। इसी प्रकार ऋग्वेद में भी स्त्री और पुरुष को धार्मिक अनुष्ठानों की पूर्ति में समान अधिकार दिए गए हैं। इस युग में स्त्रियों को शिक्षा और शास्त्रों के अध्ययन का पूर्ण अधिकार प्राप्त था और विवाह के समय स्त्री की इच्छा को सबसे अधिक महत्व दिया जाता था। धर्म कार्य में स्त्री का महत्व इतना था कि बिना पत्नी के न तो धार्मिक संस्कार पूरे किए जा सकते थे और न ही स्वर्ग की प्राप्ति की संभावना की जा सकती थी।वेदों में नारी करणीय कर्मों की विशाल श्रृङ्खला है। अथर्ववेद में ब्रह्म ऋषि ब्रह्मौदन नामक देवता को नारी के कर्तव्यों का संकेत करते हैं-गृहपत्ति कार्यवश घर से बाहर जाये भी तो शीघ्र ही लौट आये, क्योंकि उसके सिर पर तो कर्मों का बड़ा भार लदा है। यह नारी यज्ञीय कर्मों को स्वीकार करे तथा बुद्धिमती होती हुई अशुभ कर्मों का परित्याग कर डाले।"

वैदिक समाज में सबसे अधिक सम्मानित पद उन ऋषियों का था जिन्होंने अपने इस उदात्त ब्रह्मज्ञान को भाषा प्रदान की थी। इन्हें मंत्र दृष्टा कहा जाता था और यह बड़े गौरव की बात है इन मन्त्र रचनाकारों में वे नारियां भी सम्मिलित है जिन्हें ब्रह्मवादिनी या ऋषिका के नाम से संबोधित किया गया है। ऋग्वेद में इस प्रकार की बीस ऋषिकाओं के नाम आये है जिनमें अपाला, घोषा, इन्द्राणी, देवयानी, लोपामुद्रा, वांगामृणी, विश्ववारा आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार के अनेकों उदाहरण प्राप्त होते हैं कि स्त्रियां उस समय की प्रचलित विद्या परा एवं अपरा दोनों में निष्णात थी। ब्रह्मविद्या का अपूर्व ज्ञान

---

[1] अथर्ववेद, 14.14

रखने वाली उमा हेमावती ने तो अग्नि, वायु और इन्द्रादि देवताओं को ब्रह्मज्ञान प्रदान किया था[1]।

इस युग की अनेक विदुषी महिलाओं के उल्लेख से ज्ञात होता है कि इस समय पर्दा प्रथा जैसी कोई विशेषता नहीं थी। स्त्रियों को स्वच्छंदतापूर्वक विचरण करने और सामाजिक संबंधों की स्थापना करने के अधिकार प्राप्त थे। यद्यपि विधवा विवाह पर भी कोई नियंत्रण नहीं था। लेकिन संभवतः स्त्रियाँ स्वयं ही ऐसे विवाहों को प्रोत्साहन नहीं देती थी। विवाह केवल परिपक्व आयु में ही होते थे व कभी-कभी तो स्त्रियां अपनी इच्छा से संपूर्ण जीवन ब्रह्मचारी रहकर ही व्यतीत कर देती थीं। समाज में स्त्रियों का अपमान करना सबसे बड़ा पापा था व स्त्रियों की रक्षा करना सबसे बड़ी वीरता थी। वैदिक काल में सभी क्षेत्रों में स्त्रियों का स्थान पुरुषों के समान था[2]।

वैदिक काल में स्त्रियां वेदों का अध्ययन करती थीं। ऋग्वेद के मंत्रों की पंडिता युवती को वह वृची कहा जाता था। यजुर्वेद की कठशाखा का अध्ययन पूर्ण करने वाली स्त्री कठी कही और आप्शिला के व्याकरण में पारंगत युवती को आप्शिला कहा गया है। वेदों की मीमांसा जैसे दुरुह एवं नीरस विषय में छात्राएं रूचि लेती थी। काशकृत्सनी नामक विदुषी ने मीमांसा पर एक पुस्तक लिखी थी। जो छात्राएं इस पुस्तक का अध्ययन करती थी उन्हें काशकृत्सना कहा जाता था। वैदिक साहित्य के अध्ययन के अतिरिक्त कन्याओं को गणित, आयुर्वेद, संबधित नृत्य तथा विभिन्न शिल्प कलाओं की शिक्षा दी जाती थी। ऐसा कहा जाता है कि सृष्टि का प्रारंभ करने के

---

[1] आप्टे, डा प्रभा, भारतीय समाज में नारी, पृष्ठ 16

[2] गुप्ता, डा. सुभाष चंद्र, कार्यशील महिलाएं एवं भारतीय समाज, पृष्ठ 58

लिए प्रजापति ने अपने शरीर को दो भागों नर व नारी में विभक्त किया। इसीलिए पत्नी को अर्द्धांगिनी कहा जाता है। प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान में पत्नी पति के साथ भाग लेती थी अतः उसे सहधर्मिणी भी कहा गया है। शतपथ ब्राह्मण के अनुसार कोई भी यज्ञ पत्नी की उपस्थिति के बिना पूर्ण नहीं हो सकता था[1]।

महामान्य शंकराचार्य का यह कथन "नरक का एकमात्र द्वारा क्या है? नारी[2]।" उनका मानना है नारी केवल भोग-विलास कि वस्तु नही अपितु नारी को उन्होंनें माया के रूप मैं दर्शाया है ।

प्रसिद्ध वेदभाष्यकार सायणाचार्य का यह कथन "स्त्री और शूद्र को ज्ञानापेक्षा होने पर भी उमनयन संस्कार के आयेग्य होने के कारण उन्हें वेदों के अध्ययन का अधिकार नहीं है[3]। या तो तत्कालीन समाज की मान्यता है या फिर इन विद्वान्मूर्धन्यों की कुष्ठा या आग्रह के द्योतक है। वस्तुतः भारत में एक ऐसा युग आया जिसमें नारी प्रताड़ित, उपेक्षित व अपमानित होती रही। विविध प्रकार से स्त्री जाति का अवमूल्यन होता रहा। कुटिलता, क्रूरता, कामुकता, मुर्खता आदि दोष स्त्री के स्वाभाविक दोषों में परिगणित कर दिए गए थे। परिणाम यह था कि मनुस्मृति जैसी प्रमाणिक स्मृतियों में भी नारी प्रशंसा के साथ नारी की विविधि निंदा से भी दृष्टिगोचर होती है[4]। उन्नीसवीं शताब्दी में जब स्वामी दयानंद सरस्वती का पर्दापण हुआ तब नारी जाति को सबल सहारा मिला। स्वामी दयानंद

---

[1] आप्टे, डा. प्रभा, भारतीय समाज में नारी, पृष्ठ 17

[2] द्वारं, किमेकं नरकस्य, नारी।

[3] तैतिरीय संहिता सायणभाष्यभूमिका

[4] डा. विक्रम कुमार, नवनिबंधस्तबक, वैदिक नारी, पृष्ठ 71

सरस्वती ने वैदिक प्रमाणों से नारी की प्रशंसा, महिमा व उसके अधिकार वर्णित किए। वेदों के अध्ययन से यह बात सत्य सिद्ध होती है। वेदों में नारी की छवि अति स्पष्ट है। माता, बहन, पत्नी व पुत्री के रूप में नारी के चार भेद प्रमुख हैं। वेदों में इन सबकी महिमा का उल्लेख है। उषा, आपः, अदीति, सरस्वती आदि वेदवर्णित देवियों के स्वरूप नारी क विविध माहात्म्य को वर्णित करते हैं। ऋग्वेद में पत्नी को ही घर कहा है। **'जायेदस्तम्'**[1] ।" यजुर्वेद में नारी को राष्ट्रधारयित्री कहा है। **'पुरन्धिर्योषां'**[2]। " स्त्री ही ब्रह्मा है। ऐसा ऋग्वेद में वर्णित है। **'स्त्री ही ब्रह्मा बभूविथ'**[3] ।' स्त्रियों के लिए यज्ञ का अधिकार भी वेदों में स्पष्ट है। **'यज्ञं दधे सरस्वती।, शुद्धा पूता योषितो यज्ञिया इमा'**[4]। यजुर्वेद के अनुसार नारी स्तुतियोग्या, रमणिया, स्वीकरणीयां, कमनीया, आल्हाद कारिणी, द्युतिमति, अदिति, विज्ञा, पूज्यतमा एवं बहुश्रुता होती है। अथर्वेद में कहा है कि हे राजन्। यह स्त्री कुलपालयित्री है **'एषा ते कुलपा राजन्'**[5]।" यह नारी पुत्रप्रसवित्री होकर महनीय बन जाती है **"सुवाना पुत्रान् महिषो भवति'**[6]।" नारी पति के द्वारा पोषणीय मानी गई है। कहा गया है कि मेरे साथ रहकर तू दुखी मत हो **'ममेयमस्तु पोष्या'**। **'मा व्यतिष्ठा मया सह**[7]।' " दहेजप्रथा ने नारी को आज बेचारी बना दिया

---

[1] ऋग्वेद, 3.5-34

[2] यजुर्वेद, 22-22

[3] ऋग्वेद, 8.3-11

[4] यजुर्वेद 8.14-3

[5] अथर्ववेद 1.4-3

[6] वही 2.63-3

[7] वही 14.52-48

है। नाना सुख सुविधाओं की पूर्ति के लिए पत्नीगृह से धन याचना आज प्रथा बन गई है। इस कुत्सित प्रथा को पूर्ण न कर पाने के कारण कुमारी कन्या सर्वथा सतायी जाती है। अनेक स्थानों पर उसकी हत्या कर दी जाती है। वेद ने स्पष्ट कहा है कि कुमारी की हिंसा मत करो। 'मा हिंसीष्ट **कुमार्यम्**'[1]। " पति के द्वारा पत्नी का हाथ उसके सौभाग्य के लिए पकड़ा जाता है न कि ताड़न के लिए **'गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तम्**[2]**'**। " सम्पूर्ण जीवन में विशेषतः विवाह के पश्चात नारी को अमृत युक्त वातावरण में आरोहण करने का उद्बोधन वेदों में उपलब्ध है।' **सूर्ये अमृतस्य आरोह लोकम्**[3]' । स्वयं पुरुष नारी को अपने से ऊंचा स्थान प्रदान करता हुआ वैदिक शब्दों में घोषणा करता है कि हे स्त्री, तू ऋग्वेद के समान है, मैं सामवेद हूं **'सामाहमस्मि ऋक् त्वम्'**[4]। मध्य युग में नारी को भोग्या समझा जाता रहा। मुस्लिम सम्प्रदाय ने स्त्री के भोग्यात्व को और अधिक स्वीकारा। समस्त रीतिकालीन साहित्य को नारी के सर्वांगचित्रण से ही सज्जित किया। परंतु वैदिक घोषणा इस विषय में उल्लेखनीय है। **'ब्रह्मा परं युज्यतां ब्रह्म पूर्व ब्रह्मान्ततोमध्यतो ब्रह्म सर्वतः**[5]। वेदों में नारी कर्तव्यों पर अनेक मंत्र मिलते हैं। नारी को राज्याधिकारिणी के रूप में वर्णित किया है। वह राजसभा में न्यायाधिष्ठात्री बनकर न्याय भी करती है। **'अहं वदामि नेत्**

---

[1] वही 14.1-63

[2] वही 14.1-50

[3] वही 14.1-61

[4] वही 14.2-71

[5] वही 14.1-64

त्वंसभायामहत्वं वद'[1] । नारी को सत्य की विधात्री कहा गया है जिससे स्पष्ट है कि वह सत्य का पक्ष होती है। **'वेधा ऋतस्य'**[2] वेद में नारी को ज्ञान की उपदेष्ट्री कहा गया है। इससे उसके अध्यापिका व उपदेशिका होने का संकेत प्राप्त होता है- **'चोदयन्ती सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्' । 'अहमुग्राविवाचनी' । 'त्वं विदथमावदासि'**[3] ।

वैधव्य नारी को बेचारी बनाता है। उस समय उसकी आंखें अन्धकारावृत होती है। उसका भविष्य भय, अभाव व अनाश्रय के समुद्र में डूबा होता है। समाज की कटु उक्तियां एवं अवांछनीय व्यवहार उसे सती होन को प्रेरित करते हैं। वेद ऐसे समय में नारी का पथ प्रदर्शन करते हैं। वेदों में नारी के गुण बताने के साथ-साथ कामना भी की गयी है कि यह नारी को सुशिक्षित करे और स्वयं भी रहे। स्वयं धर्म का आचरण करे और नारी को भी धर्माचरण में प्रेरित करे। स्वयं भी प्रसन्न और सुखी रहे तथा नारी को भी प्रसन्न और सुख प्रदान करे। गृहपति यह अपना सर्वाधिक आवश्यक कर्तव्य समझे कि घर में हमेशा पोषण के लिये आवश्यक सामग्री में कमी न हो। वस्तुत नारी के पालन पोषण का उत्तरदायित्व वैदिकाल में पुरुष पर होता था। यह घर की शोभा मानी जाती थी।नारी के गुणों का वर्णन करते हुए भृग्वगिरा ऋषि ने अच्छा वर्णन किया है। जिसमें वैदिक पद्धति में एक युवक अपनी जीवन-यात्रा की निर्विघ्न पूर्ति के लिये अपना एक साथी चुनता है। वह वरणीय कन्या में दो गुणों को महत्त्व देता है। वे गुण है-भग, वर्चः। वह कहता है कि मैं इस कन्या के

---

[1] वही 7.39-4

[2] ऋग्वेद 10.86-10

[3] वही 1.3-11, 10.159-2, 10.85-261

अन्तः व ब्रह्मा सौन्दर्य को तथा तेजस्विता को ssआदर से देखता हूँ और वृक्ष जैसे माला को धारण करते हैं, पुष्पों को लेकर माला बनाते है. इसी प्रकार इस कन्या के पितृकुलरूप वृक्ष से गुणरूपी माला से अलंकृत इस कन्या का ग्रहण करता हूँ।

वस्तुतः वैदिक नारी बेचारी न होकर शक्तिमति, गृहाश्रम की पताका, गृहाश्रम रूप शरीर का मस्तक, शत्रुओं से टकराने में वीरांगना है। स्वयं नारी की उक्तियां वेद में इस प्रकार है- **'उता हमस्मि वीरिणी'।' अहं केतुरहं मूर्धा'। असपत्ना सपत्नघ्नी**[1]। संभवतः इसीलिए पति द्वारा भी पत्नी का अनुगामी होना एक स्थल पर आया है। **'तामन्वर्तिष्ये सखिभिर्नवग्वैः'**[2]। न केवल मूल वेदों में अपितु वेदांग, उपांग आदि समस्त वैदिक साहित्य में नारी का दिव्य स्वरूप ही प्रकाशित हुआ है। अवान्तर संस्कृत साहित्य में भी नारी की प्रशंसा हुई है। वशिष्ठ धर्म सूत्र का निम्न श्लोक नारी के विषय में उल्लेखनीय है।

'उपाध्याद् दशाचार्यः आचार्याणां शतं पिता ।
पितुर्दश शतं माता गौरवेणातिरिच्यते'[3]

अर्थात् आचार्य उपाध्याय से दशगुणा बड़ा होता है। पिता आचार्य से सौगुणा महान होता है माता पिता से एक हजार गुणा बड़ी होती है। मनु नारी सम्मान करते हुए आगे कहते हैं कि -नारी साक्षात् लक्ष्मी गृह दीप्ति होती है। **पुत्रोत्पत्ति, पुत्रपालन, लोक व्यवहार, धर्मकार्य, शुश्रुषा, काम, स्वर्ग आदि महत्वपूर्ण कार्य नारी के**

---

1 अर्थववेद 20.126-9

2 वही 14.1-56

3 वशिष्ठ धर्मसूत्र 13-48

ही अधीन होते हैं[1]। महर्षि व्यास के मत में जिस घर में नारी हत्या होती है वह घर पापपंक से पंकिल होता है। स्त्री को मारने वाले पके हुए फल की तरह डंठल से टूटकर नीचे की ओर गिरते हैं। क्रोधयुक्त व्यक्ति को भी नारी का अप्रिय नहीं करना चाहिए क्योंकि उसके समान बन्धु दूसरा कोई नहीं होता। महाभारत में कहा गया है- **'स्त्रियः श्रियः गृहस्योक्ताः'**[2]।

बृहत् संहिताकार के शब्दों में ही हम कहना चाहेंगे कि 'जो लोग वैरागी होने के कारण नारियों के गुणों को छोड़कर दोषों की ही चर्चा करते हैं, मेरे मत में वे दुर्जन है नारी के प्रति कहे गए उनके वाक्य सद्भावना के द्योतक नहीं है। मनु के कथनानुसार तो- **ये नारियां पुरुषों से भी अधिक गुणवाली है**[3]।

नारी नरक का द्वार न होकर महान् है, इस तथ्य को स्वयं आचार्य शंकर को भी स्वीकारना पड़ा है। अपनी माता की मृत्यु के समय माता को शंकराचार्य द्वारा प्रदत्त श्रद्धांजलि दृष्टव्य है-

'आस्तां तावदियां प्रसूति समये दुर्वारशूल व्यथा
नैरूच्ये तनुशोषणं मलमयी शय्या च सांवत्सरी।
एकस्यापि न गर्भभारभरण क्लेशस्य यस्यांः क्षमो ।
दातुं निष्कृति मुन्नतोपि तनयस्तस्यै जनन्यै नमः[4]।

अर्थात् प्रसूति समय की अनिवार्य शूल व्यथा को रहने दें परंतु मेरे द्वारा दुग्धपान द्वारा माता का शरीर शोषण, वर्षों तक मेरे द्वारा मलमूत्र के कारण मलयुक्त माता का बिस्तर, माता द्वारा गर्भभार का

---

[1] मनुस्मृति 3.56, 9.26-27

[2] महाभारत, 5.38-11

[3] बृहत् संहिता, 74.5-6

[4] शंकर दिग्विजयः, अ0-15

वहन एवं उसका पोषण आदि अनेक ऋण मुझ पर है। जिस माता के इनमें से एक ऋण से भी उऋण होने के लिए यह महान् उन्नत पुत्र असमर्थ है। उस माता को मेरा नमस्कार है। इस प्रकार वैदिक प्रमाणों से स्पष्ट है कि तत्कालीन नारी बेचारी नहीं थी, महान थी।

नारी के पास प्रकृति प्रदत्त कुछ ऐसे गुण होते हैं जो केवल नारी को ही प्राप्त हुए है। इनमे महत्वपूर्ण गुण है-सेवा भावना। नारी भिन्न भिन्न रूपों में परिवार एवं समाज की सेवा करती है। एक माता के रूप में बच्चों की सेवा, पत्नी के रूप में पति की सेवा, बहू के रूप में परिवार के बड़े-बूढ़ों की सेवा व परिचारिका के रूप में वह समाज के दुखी, अपंग व बीमारों की सेवा करती है। **सेवा करना नारी जीवन का स्वाभाविक भाव है**[1]।

स्त्री व पुरुष परिवार रूपी रथ के दो पहिए हैं। जिनमें से यदि एक पहिया टूट जाए तो रथ का चलना कठिन हो जाता है। नारी का काम परिवार को बनाना है नर का काम है उसे परिवार का पालन पोषण करना। पुरुष के जीवन काल में उसका तीन स्त्रियों से घनिष्ठ संबंध स्थापित होता है। **माता, पत्नी और पुत्री। ये तीनों ही स्त्रियां अपनी अपनी भूमिका का कुशलता से निर्वाह करते हुए लोगों के आदर, प्रेम व वात्सल्य की हकदार होती है**[2]।

महाभारत में अनेक उद्धरणों से पता चलता है कि सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में इस समय तक स्त्रियों का पूर्ण अधिकार बना हुआ था। इस महाकाव्य के अनुशासन पर्व में भीष्म पितामह ने स्त्रियों के प्रति उच्च आदरभाव को प्रदर्शित करते हुए कहा है कि स्त्री

---

[1] आप्टे डा. प्रभा, भारतीय समाज में नारी, पृष्ठ 01

[2] आप्टे, डा. प्रभा, भारतीय समाज में नारी, पृष्ठ 01

को सदैव पूज्य मानकर उससे स्नेह का व्यवहार करना आवश्यक है। **जहां स्त्रियों का आदर होता है, वहां देवताओं का निवास होता है और इसकी अनुपस्थिति में सभी कार्य पुण्य रहित हो जाते है**[1]।

वेद में यह स्पष्ट निर्देश है कि जो लोग घर में शान्ति की इच्छा करते हैं उन्हें घर के आन्तरिक कार्यों में नारी को महत्त्व देना चाहिये और समाज के बाह्य कार्यों में अर्थात् सभा आदि में पति को सम्राट् बनाने का प्रयास करें। अथर्वा ऋषि कह रहा है कि एक नारी चाहती है कि घर में वही सम्राज्ञी बनकर रहे, सभा में पति सम्राट् बने। इस प्रकार आप केवल मेरे ही होओ। औरों का नाम भी न लीजिये। आपका झुकाव किसी अन्य युवती के प्रति न हो।इस प्रकार वेद कालीन नारी घर और समाज का आभूषण है ।

[1] महाभारत, अनुशासन पूर्व, 46-5

महाकाव्यों में नारी की दिव्यता

मेघना हर्षवर्धन भट्ट
संस्कृत शिक्षिका, अमरावती।
९४२२९०३१५३

भारतीय महाकाव्य साहित्य नारी के विविध स्वरूपों को उजागर करता है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्य परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। कुल मिलाकर संस्कृत में दो प्रमुख महाकाव्य – **रामायण** (वाल्मीकि) और **महाभारत** (व्यास) – माने जाते हैं। इन ग्रंथों में नारी को शक्ति, त्याग, करुणा, प्रेम और नीति की मूर्ति के रूप में चित्रित किया गया है। नारी केवल कथा की सहायक पात्र नहीं, बल्कि वे समाज को दिशा देने वाली आदर्श व्यक्तित्व भी हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। *(मनुस्मृति 3.56)*

अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

महाकाव्यों में नारी की भूमिका

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी शक्ति और विद्या की प्रतीक रही हैं। उनकी दिव्यता केवल सौंदर्य में नहीं, बल्कि उनकी बुद्धिमत्ता, धैर्य, नीति और बलिदान में निहित है। इन ग्रंथों में वर्णित नारी पात्र समाज के नैतिक मूल्यों को परिभाषित करते हैं और मानवीय संवेदनाओं को गहराई से दर्शाते हैं।

नारी की दिव्यता के उदाहरण

रामायण की प्रेरणादायक नारियां

1. **माता अनुसूया** – अपने सतीत्व और तपस्या से उन्होंने सीता

को नारी धर्म और त्याग का पाठ पढ़ाया।

वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड में एक अत्यंत मार्मिक प्रसंग आता है, जिसमें माता अनुसूया सीता को पतिव्रता धर्म की महिमा समझाती हैं। यह संवाद केवल एक वृद्ध तपस्विनी के उपदेश का नहीं, बल्कि दो महान नारियों के बीच ज्ञान, स्नेह और आदर्शों का आदान-प्रदान है।

संस्कृत श्लोक:

"साध्वी वा यदि वा क्रूरा पतिं याऽनुवर्तते।

सा लोके पूज्यते नित्यं तस्याः स्वर्गे परं पदम्॥" (वाल्मीकि रामायण, अरण्यकांड 117.10)

भावार्थ:

चाहे स्त्री कितनी भी कोमल या कठोर स्वभाव की हो, यदि वह अपने पति के प्रति निष्ठावान रहती है, तो वह संसार में सदैव पूजनीय होती है और स्वर्ग में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करती है।

संक्षिप्त कथा:

जब राम, लक्ष्मण और सीता महर्षि अत्रि के आश्रम पहुँचे, तब माता अनुसूया ने बड़े प्रेम से सीता का स्वागत किया। उन्होंने सीता के तपस्विनी रूप को देखकर कहा—

"हे वधू! तुम्हारा सौंदर्य केवल बाह्य रूप में नहीं, बल्कि तुम्हारे सतीत्व और पतिव्रता धर्म में भी प्रकट होता है। नारी का सच्चा तेज त्याग, सेवा और धर्मपरायणता में ही निहित होता है।"

सीता, जो स्वयं जगत जननी थीं, सब कुछ जानने के बावजूद, अत्यंत विनम्रता से माता अनुसूया के उपदेशों को सुन रही थीं। उन्होंने न केवल श्रद्धापूर्वक उनका सम्मान किया, बल्कि एक सच्चे शिष्य की भाँति उनकी हर सीख को मन, वचन और कर्म से स्वीकार

किया।

सीता ने कहा—

"माता! मैं आपके वचनों को आदरपूर्वक सुन रही हूँ। यद्यपि मुझे अपने स्वामी श्रीराम की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त है, फिर भी आपके मुख से यह धर्मज्ञान सुनकर मेरा हृदय और अधिक प्रफुल्लित हो गया है। नारी के लिए उसका पति ही परम देवता है, और यही धर्म मैं अपने अंतःकरण से स्वीकार करती हूँ।"

सीता की इस विनम्रता और श्रद्धा को देखकर माता अनुसूया अत्यंत प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने तपोबल से सीता को दिव्य आभूषण, उत्तम वस्त्र और सुगंधित लेप प्रदान किए।

नारी से नारी का मार्गदर्शन

यह प्रसंग केवल एक उपदेश भर नहीं है, बल्कि यह सिद्ध करता है कि सच्ची नारी वह है, जो अन्य नारी को धर्म, कर्तव्य और सतीत्व का सही मार्ग दिखाए। माता अनुसूया, जो स्वयं तपस्या और सतीत्व की जीवंत प्रतिमा थीं, ने सीता को नारी धर्म की गूढ़ता समझाई। वहीं, सीता ने भी यह सिद्ध किया कि एक सच्ची नारी की महानता केवल ज्ञान देने में नहीं, बल्कि ज्ञान को विनम्रतापूर्वक ग्रहण करने में भी होती है।

जिस प्रकार नारी शक्ति और त्याग का प्रतीक होती है, उसी प्रकार उसकी सहनशीलता, श्रद्धा और विनम्रता उसे और भी दिव्यता प्रदान करती है। अनुसूया ने सिखाया, और सीता ने पूरे आदर और समर्पण के साथ सीखा—यही इस प्रसंग की सबसे गूढ़ शिक्षा है।

2. **शबरी** – भक्तिभाव और श्रद्धा की मूर्ति, जिन्होंने वर्षों तक राम की प्रतीक्षा की और प्रेम से जूठे बेर अर्पित कर सच्ची भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया।

3. **उर्मिला** – लक्ष्मण की पत्नी, जिनका त्याग और सहनशीलता अद्वितीय है। उन्होंने स्वयं को तपस्विनी बना लिया और अपने पति के धर्म का पालन किया।

उर्मिला का त्याग और प्रेरणा

रामायण में उर्मिला का चरित्र अत्यंत मार्मिक और प्रेरणादायक है। जब लक्ष्मण अपने भाई राम और भाभी सीता के साथ वनवास के लिए जाने को तैयार होते हैं, तब उर्मिला अपने पति को रोकने के बजाय उन्हें धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देती हैं। यह प्रसंग यह दर्शाता है कि नारी केवल पति की सहधर्मिणी ही नहीं, बल्कि उसकी पथप्रदर्शक और संबल भी हो सकती है।

संस्कृत श्लोक:

"स्वधर्मे सत्यसंधस्य पत्न्याः श्रेयो वदाम्यहम्।
यः स्वधर्मे स्थितो नित्यं स गच्छत्युत्तमां गतिम्॥"

भावार्थ:

"मैं अपने पति का कल्याण चाहती हूँ और इसलिए मैं यही कहती हूँ कि अपने धर्म पर अडिग रहने वाला व्यक्ति ही उच्च गति को प्राप्त करता है।"

संक्षिप्त संवाद:

लक्ष्मण उर्मिला के पास जाते हैं और कहते हैं—

"देवी! मैं अपने भ्राता श्रीराम की सेवा हेतु वन जा रहा हूँ। तुम्हें यहाँ महल में अकेले छोड़कर जाना मेरे लिए कठिन है, परंतु मैं अपने धर्म से विमुख नहीं हो सकता।"

उर्मिला, जिनका हृदय प्रेम से भरा था, लेकिन जिनका संकल्प पर्वत की भाँति अडिग था, उन्होंने धैर्यपूर्वक कहा—

"नाथ! यदि आप आज मेरे स्नेह और मोह के कारण अपने

कर्तव्य से विमुख हो गए, तो मैं स्वयं को कभी क्षमा नहीं कर पाऊँगी। मेरे लिए यह अधिक आवश्यक है कि आप अपने स्वधर्म का पालन करें। मैं आपको रोकूंगी नहीं, बल्कि आपको और अधिक दृढ़ करूँगी, ताकि आप बिना किसी मोह के अपने कर्तव्य का निर्वहन कर सकें।"

लक्ष्मण, जो पहले उर्मिला को छोड़कर जाने में संकोच कर रहे थे, उनकी इन वाणी को सुनकर भावविभोर हो उठे। उन्होंने कहा—

"देवि! तुम सचमुच एक महान पतिव्रता और आदर्श नारी हो। तुम्हारा यह त्याग और साहस मुझे और भी बल प्रदान करेगा।"

उर्मिला के इस संवाद में यह स्पष्ट होता है कि नारी केवल करुणा और प्रेम का प्रतीक नहीं, बल्कि शक्ति, धैर्य और मार्गदर्शन का भी स्रोत होती है। जब लक्ष्मण धर्मसंकट में थे, तब उर्मिला ने अपने पति को सही राह पर चलने की प्रेरणा दी।

रामायण में उर्मिला का त्याग अद्वितीय है। उन्होंने चौदह वर्षों तक अपने पति के वियोग में रहकर भी न केवल धैर्य बनाए रखा, बल्कि मानसिक तपस्या करते हुए लक्ष्मण को उनके धर्म से डिगने नहीं दिया। यह प्रसंग यह सिद्ध करता है कि एक सच्ची नारी अपने पति का संबल ही नहीं, बल्कि उसकी धर्मगुरु भी हो सकती है।

4. **कैकयी** – जिन्हें अक्सर नकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन उनका चरित्र नारी की राजनीतिक बुद्धिमत्ता और संकल्प को दर्शाता है।
5. **कौसल्या और सुमित्रा** – मातृत्व और धर्मपरायणता का प्रतीक, जिन्होंने अपने पुत्रों को महान जीवन मूल्यों का पाठ पढ़ाया।
6. **तारा** – वानरराज बाली की पत्नी, जिन्होंने युद्ध के पश्चात् सुग्रीव को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी और राज्य को स्थिरता

प्रदान की।

जब राम के बाणों से बाली का वध हुआ, तब तारा अत्यंत शोकाकुल हो उठीं। लेकिन उन्होंने शीघ्र ही अपने मनोबल को संभाला और सुग्रीव को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उन्होंने न केवल सुग्रीव को राज्यभार सँभालने के लिए प्रेरित किया, बल्कि उन्हें मर्यादा और न्याय का पालन करने की भी सीख दी। तारा का यह प्रसंग यह दर्शाता है कि एक नारी केवल स्नेह और करुणा का ही प्रतीक नहीं, बल्कि धैर्य, नीति और मार्गदर्शन की शक्ति भी रखती है।

संस्कृत श्लोक (वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा कांड 24.8-9)

"शरीरस्य गुणानां च नित्यं संयोग-वियोगयोः।
अवश्यं यानि दुःखानि तानि सोढव्यतानघ॥"

भावार्थः

"हे निष्पाप (सुग्रीव)! शरीर और गुणों का संयोग और वियोग सदा होता रहता है। इसलिए जो दुःख अनिवार्य हैं, उन्हें सहन करना ही चाहिए।"

सुग्रीवः (शोक में डूबे हुए)

"हे देवी तारा! मैं अपने भ्राता बाली के बिना स्वयं को असहाय अनुभव कर रहा हूँ। मुझे समझ नहीं आ रहा कि मैं इस राज्य का भार कैसे संभालूँ।"

ताराः (धैर्यपूर्वक सुग्रीव को समझाते हुए)

"हे नाथ! धैर्य धारण करें। यह संसार नित्य परिवर्तनशील है। जो आया है, वह अवश्य जाएगा। बाली की मृत्यु एक नियति थी, जिसे आप रोक नहीं सकते थे। अब आपका कर्तव्य अपने राज्य और प्रजा की रक्षा करना है।"

सुग्रीव: (संकोच में)

“परंतु मैं अपने भ्राता के बिना राज्य का संचालन कैसे कर सकता हूँ? क्या प्रजा मुझे स्वीकार करेगी?”

तारा: (नीति और धर्म की सीख देते हुए)

“राजा वही होता है, जो अपने सुख-दुःख से ऊपर उठकर प्रजा के कल्याण के लिए कार्य करे। यदि आप शोक में डूबे रहेंगे, तो राज्य अस्थिर हो जाएगा। प्रजा को सुरक्षा और स्थिरता चाहिए। इसलिए, हे सुग्रीव! अपनी दुर्बलता त्यागें और धर्मपूर्वक शासन करें।“

संस्कृत श्लोक (वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा कांड 24.12)

“धर्मेण राज्यमादाय स्वधर्मं प्रतिपद्यताम्।
स च धर्मः परो लोके पुण्यश्चैव सनातनः॥“

भावार्थ:

“राज्य को धर्मपूर्वक प्राप्त करके, स्वधर्म का पालन करें। यही संसार में परम धर्म है और यही सनातन पुण्य है।“

तारा की शिक्षा का प्रभाव

तारा के इस प्रेरणादायक संवाद के बाद सुग्रीव ने अपनी शोकग्रस्त अवस्था से बाहर आकर राज्य का भार संभाला और श्रीराम की सहायता कर राक्षसों का नाश करने में योगदान दिया।

इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि तारा केवल एक पतिव्रता नारी ही नहीं, बल्कि बुद्धिमान और दूरदर्शी नीतिज्ञ भी थीं। उन्होंने संकट के समय अपने पति को सही मार्ग दिखाया और राज्य में स्थिरता लाई। यही एक सशक्त नारी का स्वरूप है, जो संकट के समय अपने विवेक से स्थितियों को संभालती है।

7. **मंदोदरी** – रावण की पत्नी, जिन्होंने सदैव धर्म की बात की और

रावण को उचित मार्गदर्शन देने का प्रयास किया। उनका चरित्र नारी की विवेकशीलता और नीति को दर्शाता है।

महाभारत की प्रेरणास्रोत नारियां

1. **सुभद्रा** – अर्जुन की पत्नी और अभिमन्यु की माता, जिन्होंने अपने पुत्र को महायोद्धा बनने की शिक्षा दी।
2. **हिडिंबा** – भीम की पत्नी, जिन्होंने अकेले अपने पुत्र घटोत्कच को पालकर महान योद्धा बनाया। उनका चरित्र मातृशक्ति और संघर्ष का प्रतीक है।
3. **रुक्मिणी** – भगवान कृष्ण की पत्नी, जिन्होंने अपने विवेक और आत्मबल से स्वयं को एक सशक्त नारी के रूप में स्थापित किया।
4. **सत्यभामा** – कृष्ण की एक अन्य पत्नी, जिन्होंने नारी के स्वाभिमान और अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया।
5. **उलूपी** – अर्जुन की नागकन्या पत्नी, जिन्होंने अर्जुन को पुनः शक्ति प्रदान की और अपने पुत्र इरावान को धर्मपथ पर अग्रसर किया।
6. **द्रौपदी** – साहस और स्वाभिमान की प्रतीक, जिन्होंने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया और अपने अधिकारों की रक्षा की।
7. **गांधारी** – जिन्होंने सत्य और धर्म के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बांधकर जीवनभर आत्मसंयम का पालन किया।

नारी तु नारायणस्य अर्धांगिनी स्मृता।

(महाभारत, वनपर्व 294.14)

अर्थात् नारी नारायण की अर्धांगिनी मानी गई हैं, अर्थात् पुरुष के जीवन में नारी का उतना ही महत्व है जितना स्वयं पुरुष का।

दमयंती – बुद्धिमत्ता और स्वाधीनता का प्रतीक

(नैषधीयचरितम् – श्रीहर्षकृत महाकाव्य से)

दमयंती की कथा महाभारत और श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम् में विस्तृत रूप से वर्णित है। वह केवल सुंदरता की मूर्ति नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता, धैर्य और स्वाधीनता की सजीव प्रतिमा भी हैं। उन्होंने अपने विवेक, साहस और दृढ़ निश्चय से कठिन परिस्थितियों का सामना किया और स्वयं अपने जीवनसाथी का चयन कर यह सिद्ध कर दिया कि नारी केवल पुरुष की छाया नहीं, बल्कि स्वयं एक स्वतंत्र और विचारशील व्यक्तित्व रखती है।

दमयंती ने अपने स्वयंवर में किसी भी प्रकार के राजकीय दबाव को स्वीकार नहीं किया, बल्कि अपने हृदय की प्रेरणा से नल को अपना पति चुना। किंतु, स्वयंवर के समय एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न हुई। इंद्र, वरुण, अग्नि और यम – इन देवताओं ने भी नल को देखकर उसकी वीरता और गुणों से प्रभावित होकर दमयंती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने एक योजना बनाई और स्वयं नल के समान ही रूप धारण कर स्वयंवर में उपस्थित हो गए।

अब दमयंती के सामने एक कठिन समस्या थी—वे पांचों एक समान दिख रहे थे, परंतु केवल एक ही नल था। दमयंती ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए देवताओं और नल में भेद कर लिया।

संस्कृत श्लोक (नैषधीयचरितम्, सर्ग 14)

"अमर्त्यलक्षणैरुक्तैः सानुक्रोशैश्च तैः सह।
संदेहमपि धैर्येण सा जहौ नलदर्शिनी॥"

भावार्थ:

"दमयंती ने अपनी धैर्य, विवेक और दिव्य लक्षणों को पहचानकर देवताओं और नल में अंतर कर लिया। उन्होंने अपने सच्चे प्रेम और बुद्धिमत्ता से नल का ही वरण किया।"

दमयंती ने अपने विवेक से यह पहचान लिया कि देवताओं के शरीर पर उनकी दिव्यता के चिह्न थे—उनकी आँखें बिना पलक झपकाए स्थिर थीं, उनके शरीर पर पसीना नहीं था और उनकी छायाएँ नहीं पड़ रही थीं। इसके विपरीत, नल एक साधारण मानव की भांति सांस ले रहे थे, उनकी छाया पड़ रही थी और पसीने की बूंदें भी थीं। इस प्रकार, उन्होंने स्वविवेक से नल का चयन कर यह प्रमाणित किया कि नारी केवल भावनाओं में बहने वाली नहीं होती, बल्कि वह अपनी बुद्धि और निर्णय शक्ति से स्वयं अपना मार्ग चुन सकती है।

नारी की दिव्यता के प्रमुख तत्व।

1. **धैर्य और त्याग:** उर्मिला, कुंती, हिडिंबा और गांधारी जैसी महिलाओं ने जीवनभर त्याग को अपनाया।
2. **बुद्धिमत्ता और नीति:** कैकयी और मंदोदरी ने अपने विवेक और निर्णय शक्ति से समाज को प्रभावित किया।
3. **साहस और संघर्ष:** द्रौपदी, सत्यभामा और उलूपी ने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर नारी की शक्ति को सिद्ध किया।
4. **कर्तव्यनिष्ठा और प्रेम:** माता कौसल्या, सुमित्रा, तारा और रुक्मिणी का चरित्र मातृत्व और प्रेम की मिसाल है।

संस्कृत महाकाव्यों में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। विभिन्न महाकाव्यों में नारी की भूमिका और उनकी दिव्यता को दर्शाया गया है। महाकाव्यों में रामायण, महाभारत, रघुवंशम्, कुमारसंभवम्, शिशुपालवधम्, किरातार्जुनीयम्, नैषधीयचरितम्, हर्षचरितम्, बुद्धचरितम् एवं गौड़वहो प्रमुख स्थान रखते हैं। इन महाकाव्यों में नारी पात्रों को केवल सहायक भूमिका में ही नहीं, बल्कि नायक के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।

जैसे -

1. **हर्षचरितम् (बाणभट्ट):**
   राजमाता यशोमती: हर्षवर्धन की माता, जिन्होंने पुत्र का मार्गदर्शन किया।
2. **बुद्धचरितम् (अश्वघोष):**
   यशोधरा: भगवान बुद्ध की पत्नी, जिन्होंने उनका साथ छोड़कर कठोर साधना को अपनाया।
3. **गौड़वहो (वाक्पति):**
   राजमाता: जिन्होंने राजा यशोवर्मन को प्रेरणा दी।

महाकाव्यों में नारी केवल प्रेरणा नहीं, बल्कि मार्गदर्शक भी हैं। उनकी दिव्यता न केवल उनके सौंदर्य और प्रेम में बल्कि उनकी नीति, आत्मबल, धैर्य और संघर्षशीलता में निहित है। इन पात्रों से हमें यह शिक्षा मिलती है कि समाज में नारी को सम्मान और सशक्तिकरण का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए, ताकि वे अपनी शक्ति से समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सकें।

अनया नारी या सा तु परमं तेजोमयी स्तुता।

(महाभारत, अनुशासनपर्व 47.14)

अर्थात् नारी परम तेजस्विनी मानी गई हैं, जो सृष्टि को नई दिशा प्रदान करती हैं।

----o----

CONFLICT BETWEEN LOVE AND RESPONSIBILITY IN VĀSAVADATTA - A STUDY BASED ON *SVAPNAVĀSAVADATTA* OF BHĀSA

DR. SAPNA O P
Assistant Professor of Sanskrit
Govt. Brennen College, Dharmadam,Kannur, Kerala

Rhetoricians who adopt criteria that emphasize personality in a subtle and detailed manner while explaining divisions of heroes also accept age, relationship with their husband, and relationship with their co-wives (sapatni) as criteria for divisions of heroines. Heroines are considered as satellites orbiting the central hero, where the reason and purpose of their lives are completely devoted to him. Despite this, there are some female characters among them who have certain characteristics that shine as a silver lining. Kunti and Draupadi in the *Mahābhārat*a and Sita in the *Rāmāyana* are some such female characters who have the knowledge and stature to act as corrective forces. Vāsavadatta in *Svapnavāsavadatta* is a representative of the same series and successfully overcomes the ordeal of self-sacrifice.

In *Svapnavāsavadatta*, Vāsavadatta is portrayed as a strong and pure-hearted character, embodying immense virtues that stem from her strong will. Bhāsa's depiction of Vāsavadatta showcases her as a fertile ground of various traits, including love, determination, endurance, patience, sense of responsibility, courage, wisdom, beauty, openness, and maturity. Above all, Bhāsa portrays her as an ideal wife, akin to Sita.

There are several heroine characters named Vāsavadatta in Sanskrit literature, including Vāsavadatta in

Buddhist stories, Vāsavadatta in Subandhu's works, and Vāsavadatta in Udayana stories. However, the focus here is on Vāsavadatta as portrayed by Bhāsa in *Svapnavāsavadatta*. While this Vāsavadatta is the same as the one in Udayana stories, the playwright's treatment of the character renders her unique.

Bhāsa, a playwright known for his creation of diverse and robust female characters representing various life situations, demonstrates mastery in adopting unusual and nuanced storylines and characters. Notable examples include Karṇa in *Karṇabhāra,* Duryodhana in *Ūrubhaṅga,* Hidumbi, the demon in *Madhyamavyāyoga,* and Vasantasena, the courtesan in *Cārudatta. Svapnavāsavadatta* stands as the only play by Bhāsa to feature the name of the heroine in the title itself. As the name suggests, the essence of the play revolves around the story of Vāsavadatta as dreamed of.

The play narrates the story of a royal woman who, under pressure and by her own decision, relinquishes marital comforts and royal luxuries to endure challenging circumstances for her husband's success in life. It is a remarkable work that unfolds the tale of Vāsavadatta through her perspective, her words, and her emotions. Through the two plays, *Pratijnāyaugandarāyaṇa* and *Svapnavāsavadatta*, Bhāsa portrays the love and marriage of Vāsavadatta and Udayana, and their resilience in overcoming the significant hurdles they encounter in their married life.

While Udayana enjoys the bliss of married life with his beautiful and young wife, he rules negligently, resulting in King Aruni invading parts of the kingdom, including Kauśāmbi, the capital. Yaugandarāyaṇa, Udayana's loyal minister, rises to the occasion and devises a plan to regain the kingdom with the assistance of Queen Vāsavadatta. Yaugandarāyaṇa and Vāsavadatta arrive in disguise at a

hermitage, where Vāsavadatta is entrusted to the care of Padmāvati, the princess of Magadha. The original intention of the minister was to utilize the political alliances of Magadha to recapture the Vatsa kingdom through the marriage of Padmāvati, the princess of Magadha, to Udayana. However, despite the sacrifice she was making, Vāsavadatta had no inkling of the changes that were about to take place in her life. As planned, Darśaka, the king of Magadha, gives his sister Padmāvati to Udayana, who arrives in Magadha seeking military assistance. The most unfortunate aspect is that Vāsavadatta was there to silently witness this turn of events.

<u>Vāsavadatta - the meek lover</u>

Vāsavadatta and king Udayana have a profound affection and loyalty towards each other. Despite encountering various difficulties, their connection endures, and they are committed to surmounting any hurdles to stay united. Calm on the outside and conflicted on the inside, her heart is filled with complex emotions. Bhāsa portrays her in the play *Pratijñāyaugandharāyaṇa* as a teenage girl who goes on an adventure to get her lover while growing up as her father's favorite and living a dream life. In the 5th act of *Svapnavāsavadatta* Udayana says about the very innocent Vāsavadatta.

स्मराम्यवन्त्याधिपतेः सुतायाः

प्रस्थानकाले स्वजनं स्मरन्त्याः ।

बाष्पं प्रवृत्तं नयनान्तलग्नं

स्नेहान्ममैवोरसि पातयन्त्याः ।।[1]

[1] .Svapnavāsavadatta, V.4

अपि च,

बहुशोऽप्युपदेशेषु यया मामीक्षमाणया।

हस्तेन स्त्रस्तकोणेन कृतमाकाशवादितम् ।।[1]

Like other Princess,Vāsavadatta too was born and brought up with elysian pleasures as the daughter of the mighty king of Ujjain Mahāsena and his queen Aṅgāravati. Vāsavadatta, an innocent girl without gumption absconded with her lover Udayana, who was detainee of her father. The marriage and the fortuitous incidence followed by it made a sea change in her life. Her benevolent nature and deep love for her husband remained unchanged. She set aside her feelings as a daughter and embarked on a journey with Udayana. Through her life with him, she gained insights into life's realities. What distinguishes Vāsavadatta is her recognition of the importance of adapting to challenges. She embodies the traditional Indian woman, valuing modesty and finding joy in her husband's happiness and achievements. For her, her husband's success is her ultimate goal and source of happiness.

Despite her unconditional love for Udayana, Vāsavadatta possesses the intelligence to recognize his limitations. Consequently, she comprehends the necessity of her absence in reclaiming the kingdom and chooses to participate in the plan proposed by the minister. Vāsavadatta, the embodiment of love and will expresses stature in all adverse situations although the pain that gnawed at her sometimes surmount.

अहो अत्याहितम्। आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृत्तः।

---

[1] .Ibid,V.5

एतदपि मया कर्तव्यमासीत् । अहो अकरुणाः खल्वीश्वराः

अहो अत्याहितम् । आर्यपुत्रोऽपि नाम परकीयः संवृतः। अपि तावद् शय्यायां मम दुःखं

विनोदयामि, यदि निद्रां लभे। [1]

Vāsavadatta's own words betray the inner turmoil she experiences. She entertains thoughts of suicide but dismisses them in anticipation of reuniting with her husband. Despite being part of a polygamous system, Vāsavadatta readily accepts his marriage, yet struggles to overcome the trauma it brings. With a Spartan-like resolve, she meticulously crafts the garland for Padmāvati and Udayana's wedding, carefully selecting each flower and leaf with utmost care and awareness, recognizing the sanctity of the ceremony.

वासवदत्ता - आनय।। इमं गुंफामि मन्दभागा।। इदं तावदौषधं किं नाम?

चेटी - अविधवाकरणं नाम ।

वासवदत्ता - (आत्मगतम्) इदं बहुशो गुम्फिव्यं मम च पद्मावत्याश्च । (प्रकाशम्) इदं

तावदौषधं किं नाम?

चेटी - सपत्नीमर्दनं नाम ।

वासवदत्ता - इदं न गुम्फितव्यम् ।

चेटी - कस्मात्?

वासवदत्ता - उपरता तस्य भार्या। तन्निष्प्रयोजनमिति। [1]

---

[1] .Ibid, IV

किं नु खल्वेतया सहोपविशन्त्या अद्य प्रह्लादितमिव मे हृदयम् ।[2]

In this portrayal, Vāsavadatta exhibits a compassionate heart that wishes well for all those who gracefully move forward in life. She finds joy and feels fortunate when Udayana expresses his profound love for her. For Vāsavadatta, her love for Udayana transcends the mundane and becomes a spiritual connection. This is why she experiences an indescribable happiness when she is close to the king in the dream sequence.

Desiring the happiness, comfort, and success of her partner, Vāsavadatta loves him unconditionally and selflessly, thereby remaining open to extending her affection to those associated with him. The evolving nature of her love, gradually transcending the mundane, suggests a progression towards divinity within Vāsavadatta's emotional realm.

Vāsavadatta -Lovable person with sound personality

Vāsavadatta's emotional intelligence helps her in maintaining equanimity even in emotionally turbulent situations. The progression of princess Vāsavadatta's evolution into the role of a responsible queen is depicted throughout the play. Bhāsa presents Vāsavadatta not as one who indulges solely in the pleasures of being the king's sweetheart, but rather as someone deeply concerned about the well-being of the king and the security of the kingdom, striving to contribute creatively to its welfare. Vāsavadatta is gradually aspiring towards the noble ideal of promoting the happiness and peace of her realm.

---

[1] . Ibid,III

[2] . Ibid, V

She sacrifices her comforts as a royal figure, putting herself to the test for the sake of her husband, her kingdom, and her subjects. With a strong sense of purpose and clear resolve, she sets aside her own emotional and personal aspirations. When she hears Udayana's voice calling to her in his dream, she prioritizes the minister's plan. Vāsavadatta is acutely aware of her powers, duties, and desires.

Hence, despite having experienced the privileges of kingship and embodying royal dignity in her words and actions, Vāsavadatta is perturbed when she, in disguise, encounters resistance from entering the hermitage.

वासवदत्ता - अहमपि नामोत्सारयितव्या भवामीति ।

यौगन्धरायणः - भुक्तोज्झित एष विषयोऽत्रभवत्या । नात्र चिन्ता कार्या । कुतः,

पूर्वं त्वयाप्यभिमतं गतमेवमासीच्छ्लाध्यं गमिष्यसि पुनर्विजयेन भर्तुः ।

कालक्रमेण जगतः परिवर्तमाना चक्रारपंक्तिरिव गच्छति भाग्यपंक्तिः ।।[1]

The sense of pride as a royal personage significantly influences Vāsavadatta's decisions, rendering them firm and precise. Additionally, she demonstrates foresight in her plan to reclaim her husband and their land. Upon first meeting Padmāvati, Vāsavadatta immediately accepts her as a beautiful and intelligent princess. Their relationship is characterized by cordiality and friendship, as Vāsavadatta teases, loves, advises, and prays for Padmāvati's well-being as a true friend. At the end, when Padmāvati apologizes for

---

[1]. Ibid, I.4

her unwitting mistreatment of Vāsavadatta, Vāsavadatta graciously consoles her for the past occurrences.

Vāsavadatta emerges as the strongest character in Svapnavāsavadatta, commanding the most scene space, and possessing varied and complex mental traits while remaining inherently good-hearted. Vāsavadatta finds herself stepping into uncertainty when she chooses to participate in Minister Yaugandharāyaṇa's plan. Driven by great faith in humanity and the minister, she embarks on actions that others would deem impossible. Despite not having complete knowledge of the plan or its consequences, Vāsavadatta is motivated by her trust in the minister's intentions, believing that the welfare of the kingdom is his sole concern.

The decision was made for the sake of the king and the kingdom, but personally, Vāsavadatta was undergoing intense mental struggles. She had to deal with various life situations frequently. Bhāsa vividly portrayed the conflict between her inner voice and her circumstances during her stay in Padmāvati's palace. Although Vāsavadatta was disguised as Avantika, she often responded to Padmāvati's concerns about Udayana as Vāsavadatta but tactfully managed to maintain the plan. Gradually, she developed the ability to control her overwhelming love for Udayana.

Vāsavadatta liked Padmāvati without knowing that she had been chosen as her husband's second wife. However, when she learned about their marriage, Vāsavadatta harbored no jealousy in her heart. She desired to be loved more and felt happiness upon learning of the king's love for her.

Conflicts in Vāsavadatta

Understanding of Padmāvati's love for Udayana and their betrothal evokes feelings in Vāsavadatta, and her words reflect her troubled state of mind. She feels saddened

by Udayana's readiness for another marriage so soon, but upon realizing that it was Padmāvati's brother's suggestion about the proposal, she understands she can't blame Udayana. Vāsavadatta experiences a great dilemma as she cannot blame her husband yet struggles to accept his new marriage. Therefore, she desires to be alone during their wedding. However, to exacerbate matters, the queen advises her to prepare the garland for the wedding, intensifying her thoughts about marriage that she wants to free from her mind like a hunter. It is during this time that her mental conflict, filled with complex emotions, reaches its peak, and she considers it the greatest punishment from the gods. Vāsavadatta expresses that her life has reached a state where she has lost even sleep.

When Vāsavadatta inquires about Udayana from Dasi but refuses to listen to further details, it's because she is afraid of expressing her feelings or because she deems it inappropriate for the current situation. Upon hearing Padmāvati express her worried state of mind due to Udayana's departure, Vāsavadatta recalls how impossible her situation has become. She listens with fear to the clown's question to the king about his beloved wife, dreading that if Udayana's choice is not her, she cannot bear it. However, she feels content being the favourite wife and acknowledges that even anonymity has its advantages.

<u>Importance of dream act</u>

Udayana was filled with thoughts of Vāsavadatta in his subconscious mind but began to love Padmāvati in his conscious mind. Through this realization, Udayana receives a hint that Vāsavadatta is alive, leading to his eventual acceptance of her at the end of the play. This scene stands as a prime example of Bhāsa's psychological insight and is sure to leave a heartwarming impression.

Vāsavadatta stands as one of Bhāsa's finest female characters. Like Karna in Karnabharam, Vāsavadatta is a character whose mental tensions and pressures converge in a unique context. Both Karna and Vāsavadatta endure the most difficult situations in life through their own actions. Bhāsa portrays the insecurities of royal life, particularly for women, through Svapnavāsavadatta. It depicts how women's lives are rendered insecure by choosing marriage as the primary means of political alliance.

Bhāsa presents Vāsavadatta as someone who makes decisions with her heart, yet she is a woman who approaches situations with intelligence, strength of will, and successful management. Vāsavadatta's lack of knowledge in matters of cunning diplomacy is evident in the play. Therefore, when she is entrusted to Padmāvati, she cannot even grasp the true significance of the situation. This marriage represents an entirely new experience for her.

As a representative of a polygamous society, Vāsavadatta adapts to marriage, yet one can understand that she also grapples with the challenges inherent in such a society. The transformations that the events of the play bring to Vāsavadatta's life are beyond imagination. The plot ultimately culminates in Vāsavadatta's life being relegated to Padmāvati's testimony. Her growth from the fragile character of a princess to the regal demeanor of a royal consort is evident throughout the play. Her greatness lies in the fact that even amidst these changes, the brightness and openness of her heart do not fade away. She embodies unconditional love and unwavering responsibility, making her an unforgettable character who transcends the protective shield of the hero.

References

- Aiyar T K Ramachandra, A Short History of Sanskrit Literature, R S Vadhyar & Sons, Palghat, 2018.

- Ayyar A S P, Bhāsa, The Madras Law Journal Office, Madras, 1942.
- Bhāsa, Svapnavāsavadatta, National Publications, Calicut, 2005.
- Pusalkar A D, Bhāsa - A Study, Meher Chand Lachman Das, Lahore, 1940.

वेदों में वर्णित प्रमुख ऋषिकाओं का विश्लेषण

जानी वन्दना यज्ञप्रकाश
शोधछात्रा, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,
राजकोट, गुजरात मो. 9409256761
ईमेल -vyjvgd1997@gmail.com

शोधसार

भारतीय सभ्यता का प्राचीनतम समय वैदिक युग है। वैदिककालीन समाज में स्त्रियों का स्थान बहुत श्रेष्ठ था। वह स्वतंत्र थी, उनकी शिक्षा आदि का भी अच्छी तरह से प्रबन्ध किया जाता था, उनकी उन्नति के लिए ज्ञान और धर्मं में विकास करने के लिए पूरा मौका मिलता था। स्त्रियों को समाज की सभी तरह से उन्नति करने में हाथ बटाने का अधिकार था। यजमान पत्नी के बिना यज्ञ कार्य अधूरा समझा जाता था। वैदिक संस्कार और शिक्षा प्राप्त करने का भी उन्हें संपूर्ण अधिकार था। यम और हारीत स्मृति से पता चलता है कि प्राचीनकाल में कुमारिकाओं का भी उपनयन संस्कार होता था। यज्ञोपवित धारण करके वह वेदाध्ययन और अग्निहोत्र की अधिकारिणी बन जाती थी। उस युग में ब्रह्मवादिनी स्त्रियों की भी कोई कमी नही थी। घोषा, सूर्या, विश्ववारा, लोपामुद्रा, इन्द्राणी आदि मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाए उसी काल में हुई थी, जिनके चरित्र यहाँ दिए गए है। इनके द्वारा जो सूक्त रचे गए उनके भाव बड़े ही उच्च कक्षा के है। वैदिक सूक्तों के अर्थ के विषय में बहुत मतभेद है। विवाहादि

संस्कार प्रसंगों पर आज भी इन सूक्तों का पाठ किया जाता है। आचार्य श्री आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव के अनुसार-"ऋषियों की परमात्मा सम्बन्धी प्राचीनतम भावना पुरुष रूप में नही स्त्री रूप में ही प्रकट हुई थी।"

ऋग्वेदीय सूक्तों में उपलब्ध सामग्री के अनुसार वेदों में नारी का स्थान अत्यन्त उत्कृष्ट, गौरवपूर्ण एवं पूजनीय है। प्राचीन सनातन वैदिक परंपरा में स्त्रियों की अध्ययनवृत्ति का प्रामाणिकतापूर्ण उल्लेख बृहद्देवता में ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं के वर्णन से सुस्पष्ट होता है -

"घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत्।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः।।
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती।।
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः।।"[1]

ऋषिका शब्द का अर्थ तथा वैदिक ऋषिकाएं:-

'ऋषिका' शब्द 'ऋषि' शब्द से अज्ञात, कुत्सित, संज्ञा, अनुकम्पा, अल्प, ह्रस्व आदि अर्थों में 'क' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है।[2] जिसका अर्थ है - अज्ञात ऋषि, निन्दित ऋषि, छोटी ऋषि, अथवा अनुकम्पा योग्य, दयनीय, बेचारी ऋषि। जैसे कि 'क' प्रत्यय का अनुकम्पा अर्थ में प्रयोग अभिज्ञानशाकुन्तल में शकुन्तला के लिए हुआ है –

'प्रत्यादेशपरुषे भर्तरि किं वा मे पुत्रिका करोतु'।[3]

अर्थात् 'पति के इस प्रकार कठोरतापूर्वक प्रत्याख्यान कर दिए

जाने पर अब मेरी पुत्री बेचारी क्या करे?'

संपूर्ण वैदिक इतिहास में ऋषिकाओं की मित्रता का स्वरूप देखने को मिलता है। जैसे कि अनेक स्थानों पर ऋषिकाओं की महत्वपूर्ण कथा उद्धृत है। ऋषिका स्त्रीलिंगसूचक शब्द है। इसका उल्लेख यजुर्वेद में मिलता है।

"सहस्तोमाः सहच्छन्दस आवृतः सहप्रमा ऋषयः सप्तदैव्याः।"[4]

अर्थात् जो वेदों का उपदेशक, वेदों के प्रति समर्पित, ब्रह्मचर्य और अन्य तपस्याओं का पालन करने वाला, बुद्धिमान और पाँच इंद्रियों और मन से शुद्ध है, उसे ऋषि कहा जाता है। मुण्डकोपनिषद में ऋषि की विशेषताओं और महानता का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

"संप्राप्यैनमृषयो ज्ञानतृप्ताः कृतात्मानो वीतरागाः प्रशान्ताः।

ते सर्वगं सर्वतः प्राप्य धीरा युक्तात्मानः सर्वमेवाङ्विशन्ति।।"[5]

जो निःस्वार्थ है और दूसरों के दुःख से पीड़ित होकर सदैव अज्ञानियों की सेवा में लगा रहता है, उसे ही सभी लोग महापुरुष या महात्मा कहते है। लेकिन ऋषि तो समय-द्रष्टा होते है। वे सदैव सृष्टि से जुड़े हुए परमात्मा का अनुभव कर सकते है। वे वैदिक मंत्रों का अर्थ कराते है और समाज के हित के लिए प्रचार करते है। इसलिए निरुक्त के रचयिता ऋषि यास्क कहते है-

"साक्षात्कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः।

तेङ्वरेभ्योङ्साक्षात्कृतधर्मस्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः।।"[6]

इससे पता चलता है कि ऋषि वैदिक मन्त्रों के रचयिता ही नहीं

है किन्तु उन्होंने अपनी तपस्या और ध्यान की शक्ति से वैदिक मंत्रों को अपने हृदय में देखा। इसलिए आचार्य यास्क ने कहा है- **'ऋषि दर्शनात्'**। इसलिए चारों वेदों के प्रत्येक सूक्त से पहले ऋषि, देवता और छंद के नाम दिखाई देते है। वैदिक मंत्रों में अक्षरों की संख्या के अनुसार मंत्रों के छंदों का नामकरण किया जाता है। जिस मंत्र के द्वारा जिस देवता का संकेत किया जाता है वही मंत्र का देवता होता है। देवता मंत्रों का विषय बन जाता है। इस प्रकार जिन तपस्वियों ने सबसे पहले सूक्त या सूक्त के मध्य में स्थित मंत्र की व्याख्या लोक कल्याण के लिए की है, वही उन मंत्रों के ऋषि बन जाते है। ऋषि की तरह ऋग्वेद में चौबीस ऋषिकाओं के नामों का उल्लेख है। अथर्ववेद में पाँच ऋषिकाओं के नाम भी है। वैदिक ऋषिकाओं के नाम और उनके द्वारा देखे गए मंत्रों की संख्या नीचे प्रदर्शित की गई है।

वेदों में वर्णित प्रमुख ऋषिकाओं का विश्लेषण:-

वैदिक समाज में स्त्रियों की स्थिति सम्मानजनक रही है। उन्होंने अपनी बुद्धि और सात्त्विक प्रवृत्ति से ऋषिका पद प्राप्त किया। उन्होंने अपनी कर्त्तव्यनिष्ठा, संयम, समर्पण और तपोबल से आर्यसंस्कृति को गौरवान्वित किया है तथा जगत् में अक्षुण्ण कीर्ति और सम्मान अर्जित किया है। संस्कृति के उन्नयन में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। ऐसी विदुषी स्त्रियों में ऋग्वेद में वर्णित सूर्या सावित्री (१०/८५), घोषा काक्षीवती (१०/३९-४०), सिक्ता निवातरी (९/८६/११-२०), इन्द्राणी (१०/८६,१०/१४५), यमी वैवस्वती (१०/१०,१०/१४५), दक्षिणा प्राजापत्या (१०/१०७), अदितिः (१०/७२, ४/१८७), वागाम्भृणी (१०/१२५), अपाला आत्रेयी (८/९१), जुहू ब्रह्मजाया

(१०/१०९), अगस्त्यस्वसा (१०/६०), विश्ववारा आत्रेयी (१०/१२५), उर्वशी (१०/९५/२१), सरमा देवशुनी (१०/१०८), शिखण्डिनी काश्यपी (९/१०४), पौलमी शची (१०/१४५/१), देवजामयः इन्द्रमातरः (१०/१५३), श्रद्धा कामायनी (१०/१४५/१), नदी (३/३३/४, ६/८/१०), सार्पराज्ञी (१०/१८९), गोधा (१०/१३४/७१), शाश्वती आङ्गिरसी (८/१/३४), वसुक्र पत्नी (१८/२८/१), रोमशा ब्रह्मवादिनी (१/१२६/१) इन सभी का उल्लेख मिलता है तथा कुल मन्त्र संख्या २२३ मिलती है। अथर्ववेद में सूर्या सावित्री (१४/१,२), मातृनामा (२/२,४/२०,८/६), इन्द्राणी (२०/१२६), सर्पराज्ञी (२०/४८, ४/६), देवजामयः (२०/९३,४/८) का वर्णन प्राप्त होता है तथा कुल मन्त्र संख्या १९८ मिलती है। इसमें यहाँ ऋग्वेद में वर्णित प्रमुख ऋषिकाओं का वर्णन किया गया है।

(१)ब्रह्मवादिनी अपाला:-

वैदिक ग्रन्थों में ब्रह्मवादिनी अपाला की मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिका के रूप में प्रतिष्ठा है।[7] यह अत्रि मुनि की तपस्विनी कन्या थी। जो कुष्ठरोग से ग्रस्त थी इस कारण इनके पति ने भी इनका त्याग कर दिया था। यह तपोबल से सभी के मनोभावों को जानने में समर्थ थी।[8] इन्होंने पिता के घर रहते हुए ही अपनी स्तुतियों से इन्द्रदेव को प्रसन्न करके वरस्वरूप अपने पिता के मस्तिष्क, उर्वरा(भूमि) तथा स्वयं के उदरस्थल को विशेष प्रयोजनों के लिए श्रेष्ठ बनाने की प्रार्थना की थी। यथा-

"इमानि त्रीणि विष्टपा तानीन्द्र वि रोहय।

शिरस्ततस्योर्वरामादिदं म उपोदरे।।"[9]

बृहद्देवता के अनुसार इन्द्र ने गाड़ी और जुएँ के बीच के छिद्र से उसे प्रक्षिप्त करते हुए इनकी त्वचा को तीन बार बाहर खींचा और उन्हें सुन्दर शरीर वाला बना दिया। तीन बार खींचने के कारण उसकी प्रथम अपहृत त्वचा शल्यक बन गयी, किन्तु दूसरी गोधा(घड़ियाल) और अन्तिम कृकलास(नेवला) बन गयी।[10] इस प्रकार अपाला के जीवन के कुछ वर्ष शारीरिक व्याधि के कारण दुःखदायक रहे है किन्तु धैर्य रखकर यह निरन्तर तपस्यारत रही तथा अपनी तपस्या की शक्ति से स्वयं के तथा पिता के भी उन्नत जीवन का मार्ग प्रशस्त किया। ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के ९१ वें सूक्त की १ से ७ तक की ऋचाएँ इन्हीं की है।

(२)सती लोपामुद्राः-

यह ऋषि अगस्त्य की पत्नी थी।[11] जिन्होंने तप और ज्ञान के प्रभाव से इस जगत् में मन्त्रदर्शिका ऋषिका बनकर स्त्रियों के मस्तक को ऊँचा कर दिया। ऋग्वेद और यजुर्वेद के कुछ मन्त्रों का ऋषित्व इन्हें प्राप्त किया है। इन मन्त्रों में ऋषि दम्पती लोपामुद्रा एवं अगस्त्य के बीच सुसंतति उत्पन्न करने की आवश्यकता एवं मर्यादाओं के विषय में संवाद दिया गया है। लोपामुद्रा कहती है कि "हम विगत जीवन के अनेक वर्षों में उषाकाल सहित दिन-रात तपस्यारत रहे है। वृद्धावस्था शरीरों की क्षमताओं को क्षीण कर देती है इसलिए श्रेष्ठ सन्तान की प्राप्ति की दृष्टि से समर्थ पुरुष ही पत्नियों के समीप जाए। पूर्वकाल में जो सत्य की साधना में प्रवृत्त ऋषि हुए है, जो देवों के साथ सत्य बोलते थे। उन्होंने भी उपयुक्त समय पर सन्तानोत्पत्ति का कार्य किया था, वह केवल अन्त समय तक ब्रह्मचर्य आश्रम में ही नही रहे। जैसे कि-

"पूर्वीरहं शरदः शश्रमाणा दोषा वस्तोरुषसो जरयन्तीः।

मिनाति श्रियं जरिमा तनूनामप्यू नु पत्नीर्वृषणो जगम्युः।।

ये चिद्धि पूर्व ऋतसाप आसन्त्साकं देवेभिरवदन्नृतानि।

ते चिदवासुर्नह्यन्तमापुः समू नु पत्नीर्वृषभिर्जगम्युः।।"[12]

तत्पश्चात् अगस्त्य लोपामुद्रा से कहते है कि "हमारा अब तक का तप व्यर्थ नहीं गया है। हमारी तपस्या से देवता हमारी रक्षा करते है, अतः हमने विश्व की सारी स्पर्धाएँ जीत ली है। हम दम्पती यदि जब उचित ढंग से सन्तान उत्पन्न करे, तो इस जीवन में सौ वर्ष तक संग्राम में विजयी होंगे।"[13] इस प्रकार वह सन्तति की जन्म देने का निर्देश करते है। उपर्युक्त संवाद लोपामुद्रा के तयोमय, संयमशील और मर्यादित जीवन की झाँकी प्रस्तुत करता है। लोपामुद्रा की विनम्रता तथा क्षमाशील गुणों का वर्णन मिलता है। इस चरित्र से यह शिक्षा मिलती है कि हमें विनम्र तथा क्षमाशील रहते हुए इन्द्रियसंयमपूर्वक जीवन व्यतीत करना चाहिए। लोपामुद्रा ने ऋग्वेद के पहले मण्डल के १७९ वें सूक्त की दो ऋचाएँ रची है।

(३)ब्रह्मवादिनी रोमशाः-

ब्रह्मवादिनी रोमशा का मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं में महत्वपूर्ण स्थान है।[14] इन्होंने प्रज्ञा और तपोबल के सामर्थ्य से यह पद प्राप्त करके स्त्रियों के गौरव को प्रतिष्ठित किया है। यह बृहस्पति की पुत्री तथा भावयव्य की पत्नी है।[15] राजा स्वयं इनकी प्रशंसा करते हुए कहते है-

"आगधिता परिगधिता या कशीकेव जङ्गहे।

दातार मह्यं यादुरी याशूनां भोज्या शता।।"[16]

अर्थात् "मेरी सहधर्मचारिणी मेरे लिए अनेक ऐश्वर्य और भोग्य पदार्थ उपलब्ध कराती है। यह सदा साथ रहने वाली, गुणों को धारण करने वाली मेरी सहस्राब्दी है।" बृहद्देवता के अनुसार जब इन्द्र ने अपने सखा को देखने की इच्छा से यहाँ आए तो इन्द्र ने रोमाशा से मित्रभाव से कहा "रोमाणि ते सन्ति न सन्ति राज्ञि" अर्थात् हे रानी! तुम्हें रोम है अथवा नहीं है।[17] तब उसने कहा "आप मेरे पास आकर बार-बार मेरा स्पर्श करे। मेरे कार्यों को अन्यथा न ले। जिस प्रकार गन्धार की भेड रोमों से भरी होती है उसी प्रकार मैं गुणों से युक्त प्रौढ़ हूँ।"[18] इस प्रकार रोमशा एक विदुषी स्त्री, एक पतिव्रता पत्नी तथा स्वधर्म पालन में तत्पर थी। रोमशा ने ऋग्वेद के पहले मण्डल के १२६ वें सूक्त की सात ऋचाएँ रची है।

(४)ब्रह्मवादिनी विश्ववारा:-

वैदिक ऋषिकाओं में अत्रिगोत्रोत्पन्न विश्ववारा का नाम प्रख्यात है। तपस्या से उसने विदुषी पद प्राप्त किया। यहाँ अग्नि की स्तुति इनके मन्त्रों में मिलती है। 'अग्निदेव आप प्रकाशमान होने से जल के स्वामी है। जिस यजमान के पास आप जाते है, वह समस्त पशु आदि धन प्राप्त करता है। हम आपके योग्य आतिथ्य सूचक हवि प्रस्तुत करके आपके पास रखती है। जो स्त्री श्रद्धा और विश्वासपूर्वक आपको प्रणाम करती है, वह ऐश्वर्य आन होती है। उसका अन्तःकरण पवित्र होता है। उसका मन स्थिर होता है। उसकी इन्द्रियाँ वश में होती है।[19]

इन मन्त्रों में दर्शाया गया है कि स्त्रियों को सावधानीपूर्वक अतिथि सत्कार करना चाहिए। यज्ञ के लिए हविष्य तथा सामग्रियों को प्रस्तुत करके पति के पास जाना चाहिए। अग्निदेव की वन्दना

करके पति के प्राजापत्य अग्नि की सावधानी से रक्षा करनी चाहिए। इनके द्वारा इस मन्त्रों से पता चलता है कि यह अग्नि की उपासिका थी। ऋग्वेद के पाँचवें मण्डल के द्वितीय अनुवाक में अट्ठाईसवें सूक्त छ ऋचाओं का वर्णन है।

(५) ब्रह्मवादिनी घोषा:-

घोषा कक्षीवान् ऋषि की ब्रह्मवादिनी कन्या थी।[20] इन्होंने तपश्चर्या करके ऋषिका पद प्राप्त किया था। कुष्ठरोग की बिमारी होने के कारण इसका विवाह किसी के साथ नहीं हुआ था किन्तु देवताओं के चिकित्सक वैद्यराज अश्विनीकुमार की कृपा से घोषा का यह रोग दूर हो गया तब उसका विवाह हुआ। घोषा पिता के समान ही विद्वान और सुप्रसिद्ध थी। इसने अपनी विद्वत्ता से अपने पिता का मुख उज्जवल किया था। जो वेदों का अध्ययन करके ईश्वर-सम्बन्धी ज्ञान की सर्वत्र घोषणा करे, उसका सर्वत्र प्रचार करे, उसे घोषा कहा जाता है।[21] घोषा अश्विनीकुमारों से कहती है कि “जैसे पिता पुत्र को मार्गदर्शन देते है, वैसे ही आप मुझे परामर्श दे। मेरा कोई बन्धु नहीं है। मैं ज्ञान से रहित, परिवार व परिजनों से रहित हूँ। मेरे दुर्गतिग्रस्त होने से पूर्व ही आप दोनों मुझे इस दुर्दशा से निकाले। मैं पत्नी से प्रेम करने वाले स्वस्थ पतिगृह को सुशोभित करूं तथा मेरे पतिगृह को ऐश्वर्य एवं संतान आदि से आप परिपूर्ण करे, पतिगृह में यदि कोई दुष्ट, विघ्न उपस्थित करे तो उसका निवारण करे तथा हमारे पुत्र-पौत्र आदि संतानें सदैव सुख-सौभाग्य से युक्त हो।[22] इस प्रकार स्तुतियों से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने उसकी सभी मनोकामनाएँ पूर्ण की।[23]

इस प्रकार घोषा का चरित्र से यह पता चलता है कि जो

शारीरिक रूप से अक्षम होते हुए भी अपने सौभाग्य की वृद्धि के लिए वह प्रयत्न करती है, जिसे वह अपनी दृढ इच्छाशक्ति, उत्साह, समर्पणभाव तथा अथाग प्रयासों की निरन्तरता से प्राप्त कर लेती है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के ३९ और ४० वें सूक्तों की द्रष्टा है।

(६)ब्रह्मवादिनी ममता तथा उशिज:-

ममता दीर्घतमा ऋषि की माता थी। वह महान विदुषी और ब्रह्मज्ञान थी। उसने अग्नि के उद्देश्य से स्तुति की थी। हे दीप्तिमान्! असंख्य चोटियोंवाले और देवताओं को बुलानेवाले अग्नि! दूसरे अग्नि की सहायता से प्रकाशित होकर आप इस मानव स्तोत्र को सुनिए। सुननेवाले ममता के जैसे ही अग्नि के उद्देश्य से इस मनोहर स्तोत्र को पवित्र घी की तरह अर्पित करते है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के दशम सूक्त की ऋचा में इनका वर्णन है। ऐतरेयब्राह्मण में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। जैसे कि- “एतेन ह वा एन्द्रेण महाभिषेकेन दीर्घतमा मामतेयो भरत दौष्पन्तिमभिषिषेच।”[24]

ममता के पुत्र दीर्घतमा ऋषि की पत्नी का नाम उशिज था।[25] प्रसिद्ध महर्षि काक्षीवान् इन्हीं के सुपुत्र थे। प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी घोषा इन्हीं की पौत्री थी। इनके कुटुम्ब में सभी ब्रह्मपरायण थे। इनके दूसरे पुत्र का नाम दीर्घश्रवा था। वह भी प्रसिद्ध ऋषि थे। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के ११६ तक के मन्त्र इन्हीं के है।

(७)देवसमार्ज्ञी शची:-

शची देवराज इन्द्र की पत्नी है। यह भगवती आद्यशक्ति की एक कला मानी गयी है। यह स्वयंवर की अधिष्ठात्री देवी है। प्राचीनकाल में जब भी स्वयंवर होता था तो पहले शची का आवाहन तथा पूजन

किया जाता था, जिससे स्वयंवर में कोई विघ्न या बाधा पड़ने की सम्भावना, उत्पात, कलह और किसी प्रकार के उपद्रव आदि की आशंका नहीं रहती थी। ऋग्वेद में इस प्रकार कई सूक्त मिलते है। शची पतिव्रता स्त्रियों में श्रेष्ठ मानी गयी है। वह भोग-विलासमय स्वर्ग की रानी होकर भी सतीत्व की साधना में संलग्न रहती है। उनके मन पर पति के विलासी जीवन की विपरीत असर नहीं होती है। वह अपनी ओर देखकर अपने को सती के पुण्य पथ पर अग्रसर करती रहती है। उनके सर्वस्व इन्द्र ही है। इन्द्र के सिवाय दूसरे किसी पुरुष को कभी आदर नहीं देती।

शची का जन्म दानवकुल में हुआ था, तथापि त्याग और संयम आदि सद्गुणों से देवताओं को वन्दनीया हो गई। शची के पिता का नाम पुलोमा था। उसी के नाम पर शची को 'पौलोमी' और 'पुलोमजा' भी कहते है। बाल्यावस्था में शची ने शंकर को प्रसन्न करने के लिए घोर तप किया तथा उन्हीं के वरदान से वह इन्द्र की पत्नी तथा स्वर्ग की रानी बनी। उसका जीवन सुखी से बित रहा था। कई युग इस प्रकार बीत गए। देह धारण करनार प्राणी, मनुष्य के जीवन में कभी-कभी दुःख आ जाता था। कभी-कभी अपनी त्रुटियों को सुधारने का मौका मिलता था। सबसे बड़ी बात यह है कि दुःख में ही ईश्वर याद आते है तथा धर्म का महत्व समझ में आता है। शची के जीवन में भी ऐसा समय आया, जब उन्हें सतीत्व की अग्निपरीक्षा देनी पड़ी। तभी शची ने अपने गौरव के अनुरूप कार्य करके धैर्य और साहसपूर्वक अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय सतीत्व की रक्षा की।[26]

(८)ब्रह्मवादिनी वाक्:-

वाक् अम्भृण ऋषि की कन्या थी। यह प्रसिद्ध बह्मज्ञानिनी थी और इन्होंने भगवती देवी के साथ अभिन्नता प्राप्त की थी। ऋग्वेद के दशम मण्डल के १२५ वें सूक्त में 'देवी-सूक्त' के नाम से जो आठ मन्त्र है, वह इन्हीं के नाम से मशहूर है। चण्डीपाठ के साथ इन आठ मन्त्रों के पाठ का बड़ा माहात्म्य माना जाता है। आज हमारे देश में हर जगह जो चण्डीपाठ होता है, पूर्वकाल में उसकी जगह इस देवीसूक्त का ही प्रचार था। इन मन्त्रों में स्पष्टतया अद्वैतवाद का सिद्धान्त प्रतिपादित है। 'महाभाग्यात् देवताया एक आत्मा बहुधास्तूपते' ऐसा निरुक्तकार के वचन से स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। वाक् देवी की सर्वज्ञता एवं सर्वव्यापकता यहाँ सिद्ध होती है। 'मैं सच्चिदानन्दमयी सर्वात्मा देवी रूद्र, वसु, आदित्य तथा विश्वदेव गणों के रूप में विचरती हूँ। मैं ही मित्र और वरुण को इन्द्र और अग्नि को तथा दोनों अश्विनीकुमारों को धारण करती हूँ।'[27] इस प्रकार यहाँ चण्डी माहात्म्य के साथ आज भी भारत भर में वाक् देवी का माहात्म्य गाया जाता है।

(९) वाचक्नवी गार्गी:-

वैदिक साहित्य में ब्रह्मवादिनी विदुषी गार्गी का नाम अत्यन्त प्रसिद्ध है। इनके पिता का नाम वचक्नु था, उनकी पुत्री होने के कारण इनका नाम 'वाचक्नवी' पड़ गया, परंतु उसका मूल नाम क्या था इसका वर्णन मिलता नहीं। 'गर्ग' गोत्र में उत्पन्न होने के कारण सभी इन्हें 'गार्गी' कहते थे। जनसाधारण में भी यही नाम प्रचलित था। बृहदारण्यकोपनिषद् में इनके शास्त्रार्थ का वर्णन मिलता है-

"अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं सर्वमस्वो तञ्च प्रोतञ्च कस्मिन्नु स्वल्वाप ओताश्च प्रोताश्चेति वायौ गार्गीति कस्मिन्नु खलु______ देवतामतिपृच्छसि गार्गि मतीप्राक्षीरिति ततो ह गार्गी वाचक्नव्युपरराम।।"[28]

विदेहराज जनक[29] में बहुत बड़ा यज्ञ का आयोजन किया था। उसमें कुरु से पाञ्चाल तक विद्वान आये थे। राजा जनक विद्या व्यसनी और सत्संग प्रेमी थे। उन्हें शास्त्र के गूढ़ तत्त्वों का विवेचन और परमार्थ दोनों प्रिय थे। इसलिए उनके मनमें जानने की इच्छा हुई कि यहाँ आये हुए विद्वान् ब्राह्मणों में सबसे बढ़कर तात्त्विक विवेचन करनेवाला कौन है? इसके लिए उन्होंने गोशाला में एक हजार गौएं रखवा कर प्रत्येक के सींगों में दस-दस पाद सुवर्ण जड़वा दिया। राजा ने ब्राह्मणों से कहा 'आप लोगों में से जो सर्वश्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता हो, वह इन सभी गौओं को ले जाए।' राजा का इस प्रकार वचन सुनकर किसी में साहस नहीं हुआ। सब विचार में पड़ जाते है कि 'यदि हम गौएँ ले जाने के लिए जाएँगे तो सभी ब्राह्माण हमें अभिमानी समझेंगे और शास्त्रार्थ करने लगेंगे, उस समय हम सबको जीत सकेंगे या नहीं इसका क्या निश्चय है!' यह विचार करके सब चुप हो जाते है। सबको चुप देखकर याज्ञवल्क्य ने सामवेद का अध्ययन करनेवाले ब्रह्मचारी से कहा- 'तू इन सभी गौओं को हाँक कर ले चल।' ब्रह्मचारी ने ऐसा ही किया।

जब जनक ने याजवल्क्य से पूछा तुम ब्रह्मवेता हो? नहीं हम तो ब्रह्मवेताओं को नमस्कार करते है, हमें केवल गौओं की आवश्यकता है इसलिए हम ले जाते है ऐसा याज्ञवल्क्य कहते है। फिर शास्त्रार्थ प्रारम्भ हो जाता है। यज्ञ के सभी सदस्य याज्ञवल्क्य से

प्रश्न करते है। गार्गी भी याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछती है- यह जो कुछ पार्थिव पदार्थ है, वह सब जल से ओतप्रोत है, किन्तु जल किसमें ओतप्रोत है ? तब याज्ञवल्क्य कहते है जल वायु में ओतप्रोत है। इस प्रकार क्रमशः गार्गी प्रश्न पूछती है। इस प्रकार गार्गी के प्रश्नों से गंभीर अध्ययन का पता चलता है। वह विद्वतापूर्ण उत्तर पाकर संतुष्ट हो जाती है और दूसरे की विद्वता की उन्होंने प्रशंसा की है। गार्गी भारतवर्ष की स्त्रियों में रत्न समान थी। आज भी इनकी जैसी विदुषी एवं तपस्विनी कुमारियों पर देश को गर्व होता है।

(१०) ब्रह्मवादिनी सूर्याः-

ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५ वें सूक्त की ४७ ऋचाएँ इनकी है। यह सूक्त विवाह सम्बन्धी है। प्रारम्भ की ऋचाओं में चन्द्रमा के साथ सूर्यकन्या सूर्या के विवाह का वर्णन है। हिंदू वेद-शास्त्रों में जितने भी व्याख्यान है उन सभी के आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक अर्थ होते है। वेद की ऋचाओं में तीन अर्थ मिलते है, किन्तु आध्यात्मिक अर्थरूप ही है। चन्द्रमा के साथ सूर्या के विवाह का आध्यात्मिक अर्थ भी है और उसका ऐतिहासिक तथ्य भी है। जहाँ चन्द्र एवं सूर्य को नक्षत्ररूप में ग्रहण किया गया है, वहाँ आलंकारिक भाषा में आध्यात्मिक वर्णन है तथा जहाँ उन्हें अधिष्ठात्री देवता के रूप में लिया गया है, वहाँ प्रत्यक्ष व्यवहार हुआ है।

ऋवेद में वर्णन मिलता है आप इस वधू को सुपुत्रवती तथा सौभाग्यवती बनावें। इसके गर्भ से दस पुत्र उत्पन्न करें और ग्यारहवें पति हो। ‘हे वधू! तू अपने अच्छे व्यवहार से श्वसुर-सास की, ननद और देवरों की सम्राज्ञी हो अर्थात् अपने सुन्दर बर्ताव से सेवा से

सबको अपने वश में कर ले'-

"सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।

ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।"[30]

उपसंहारः-

"यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।"[31]

जिस कुल में स्त्रियों का समादर होता है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते है और जहाँ ऐसा नही होता उस परिवार में समस्त क्रियाएँ व्यर्थ होती है मनुस्मृति के अनुसार ऐसा कहा गया है। प्राचीनकाल में भारतीय समाज में नारीओं की स्थिति गौरवपूर्ण थी। वैदिककाल में नारी की शिक्षा आदि की व्यवस्था सुचारु रूप से की जाती थी। सामाजिक कार्यों में भी उनकी भूमिका विशेष महत्त्व की थी। उस समय अध्ययन-अध्यापन आदि का कार्य भी स्त्रियाँ करती थी, इसके अतिरिक्त वे युद्ध में भी जाया करती थी। उस समय समाज में जहाँ लोपामुद्रा, अपाला, घोषा, विश्ववारा इत्यादि स्त्री रत्नों ने ऋचाओं का दर्शन करके ऋषिका पद को प्राप्त किया वही गार्गी, मैत्रेयी आदि ने ब्रह्मत्व का ज्ञान प्राप्त किया। यहाँ ऋषिकाओं की संयमशीलता, विनम्रता, क्षमाशीलता, धैर्यशीलता, साहस, नेतृत्वक्षमता, वाक्चातुर्य, विद्वत्ता, सदाचार इत्यादि कई गुणों का दर्शन होता है। इस प्रकार वैदिककाल में स्त्री नर की सहभागिनी, सहधर्मिणी, सहकर्मिणी तथा अर्धाङ्गिनी के रूप में प्रतिष्ठित थी। इससे ज्ञात होता है कि वैदिककाल में नारियाँ पुरुषों की भाँति प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में अपना योगदान देती थी।

संदर्भ ग्रन्थः-

(१) बृहद्देवता-२/८२,८३,८४

(२) अष्टाध्यायी-५/३/७३-७६, ८५-८६

(३) अभिज्ञानशाकुन्तल-५/२६

(४) यजुर्वेद-३४/४९

(५) मुण्डकोपनिषद-३/२/५

(६) निरुक्त-१/२०/२

(७) ऋग्वेद-८/९१/१

(८) बृहद्देवता-६/१००

(९) ऋग्वेद-८/९१/५

(१०) बृहद्देवता-६/१०५-१०६

(११) ऋग्वेद-१/१७९/४, यजुर्वेद-१७/११-१५, ३६/२०

(१२) ऋग्वेद-१/१७९/१,२

(१३) वही-१/१७९/३

(१४) वही-१/१२७-१३६

(१५) बृहद्देवता-३/१५६

(१६) ऋग्वेद-१/१२६/६

(१७) बृहद्देवता-४/२

(१८) ऋग्वेद-१/२६/७

(१९) वेदकथाङ्क पृ-४०२

(२०) ऋग्वेद-१०/४०/५

(२१) भारत के स्त्री रत्न पृ-७२

(२२) ऋग्वेद-१०/३९/६, १०/४०/११-१३

(२३) वही-१०/४०/९, बृहद्देवता-७/४७

(२४) ऐतरेय ब्राह्मण-३/४/९

(२५) नारी अङ्क पृ-३६५

(२६) वेदकथाङ्क पृ-३९९

(२७) अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुत विश्वदेवैः।

अहं मित्रावरुणोभा बिभर्म्यहमिन्द्राग्नि अहमश्विनोभा।। ऋग्वेद-१०/१२५/१

(२८) बृहदारण्यक उपनिषद-३/६/१

(२९) नारी अङ्क पृ-३५९

(३०) ऋग्वेद-१०/८५/४६

(३१) मनुस्मृति-३/१/५६

संदर्भ ग्रन्थ सूची:-

(१) वेद-कथाङ्क कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं.-१९९९

(२) नारी अङ्क कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं.-१९४८

(३) ऋग्वेद डो.गंगासहाय शर्मा संस्कृत साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली-११०००१ सं.-१९७९

(४) यजुर्वेद डो.रेखा व्यास संस्कृत साहित्य प्रकाशन नई दिल्ली-११०००१ सं.-१९७९

(५) बृहदारण्यक उपनिषद सानुवाद शाङ्करभाष्य सहित गीताप्रेस गोरखपुर सं.-२०५८

(६) मुण्डकोपनिषद आनन्दाश्रम मुद्रणालय मुम्बई सं.-१९०४

(७) निरुक्तम् क्षेमराज श्रीकृष्णदास श्रीवेङ्कटेश्वर स्टीम प्रेस मुम्बई सं.-१९६९

(८) प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी डो.गजानन शर्मा रचना प्रकाशन इलाहाबाद-१

(९) बृहद्देवता रामकुमार राय चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी वि. सं.-२०४६

(१०) भारत के स्त्री रत्न रामचन्द्र वर्मा सस्ता साहित्य मंडल दिल्ली सं.-१९३७

(११) वैदिक संहिताओं में नारी डो.मालती शर्मा संपूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी सं.-१९१२

(१२) वैदिकसाहित्ये नारी डो.शत्रुघ्नपाणिग्राही सोमनाथ संस्कृत युनिवर्सिटी वेरावल गुजरात सं.-२०१३

❑❑❑

वैश्विक-संस्कृत-मञ्च

Global Sanskrit Forum

Plot no. 3-B, Khasra no. 611, Gali no. 1, B-Block,
Saraswati Avenue, Sabhapur Extn., Shahdara, Delhi-110094
Contact : 8789507760
Email : globalsanskritforum@gmail.com
Webiste : https://globalsanskritforum.org

अमृतब्रह्म प्रकाशन
63/59, मोरी, दारागंज,
प्रयागराज-211006 (उ.प्र.)
Mobile : +91-9450407739, 8840451764
Email : amritbrahmaprakashan@gmail.com

ISBN 819733640-7
9 788197 336409